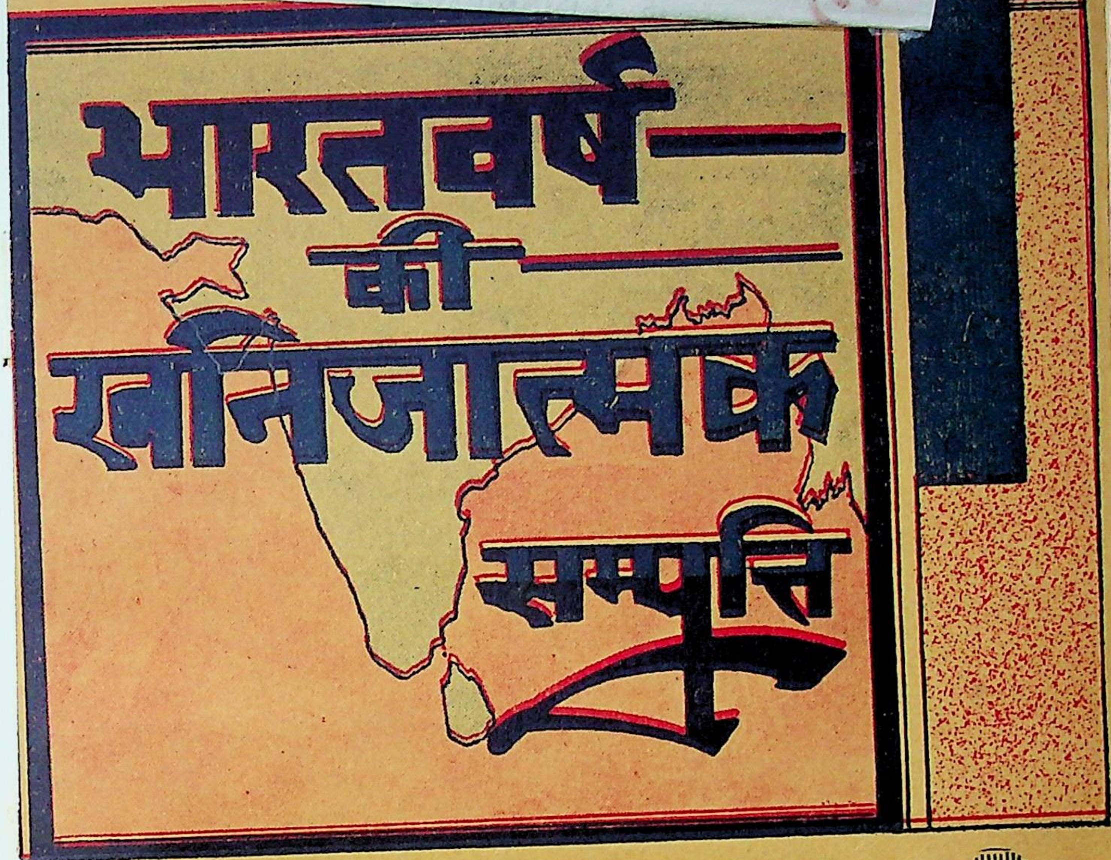
esophagus were
y disorders.
serum vitamin
d. There was
s performed on
e I). Only
or treatment of
ive of the 92
with thyro-
disorder and
ean of 15
s, one had
elly Syndrome.
ontrol group of
Although iron
had a history
in the upper
gastric anti-
series rev-
to other
been said to
ble for tumour
ric contents

EN
RY
OUR

प्रथम वृत्ति] १६३८ [मूल्य १)



भारतवर्ष की खनिजात्मक सम्पत्ति

लेखक

निरंजनलाल शर्मा एम० एस-सी० (बनारस), एफ० ए० एस-सी०

लेक्चरर-डिमोंस्ट्रेटर, ज्योलाजी डिपार्टमेन्ट,

इण्डियन स्कूल आव् माइनस, धानबाद

प्रकाशक

"भूगोल"-कार्यालय, प्रयाग

प्रथम वृत्ति] १९३८ [मूल्य १)

विषय-सूची

तृतीय खण्ड

चतुर्थ खण्ड

परिशिष्ट १

परिशिष्ट २

भारतवर्ष की खनिजात्मक सम्पत्ति

लेखक

निरंजनलाल शर्मा एम० एस-सी० (लिवरपूल, इंगलैंड और बनारस),

एफ० ए० एस-सी०

लेक्चरर-डिमोंस्ट्रेटर, ज्योलाजी डिपार्टमेन्ट, इण्डियन स्कूल

आंव् माइनस्, धानबाद

प्रकाशक

"भूगोल"-कार्यालय, प्रयाग

प्रथमावृत्ति] १९३८ [मूल्य १)



लेखक के गुरु,
तथा
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूगर्भशास्त्र के प्रधान
अध्यापक, स्वर्गीय प्रोफेसर कृष्णकुमार माथुर
की पुण्य स्मृति में
"भूगोल" में प्रकाशित यह लेखमाला हिन्दी
जनता को भेंट की जाती है।

प्रस्तावना

भारतवर्ष केवल कृषी प्रधान ही देश नहीं है परन्तु खनिजात्मिक पदार्थों में भी वह किसी देश से पीछे नहीं है। मुख्य मुख्य रत्नों और धातुओं के लिये भारतवर्ष सैकड़ों शताब्दियों से प्रसिद्ध है। प्रायः सभी ऐतहासिक हीरों का जन्म-स्थान भारत ही था। अभी हाल में जो महनजोदारो (सिन्ध) में इतिहास-चिन्ह मिले हैं उन से पता चलता है कि ईसा से कम से कम ५००० वर्ष पूर्व भारतवासी सोना, तांबा इत्यादि धातुओं का सदुपयोग जानते थे। इस स्थान के उस समय के खंडहरों का निरीक्षण करने से यह भी विदित हुआ है कि हरसोठ (gypsum) खनिज से वे सीमेन्ट बनाना भी जानते थे। इसके पश्चात् मैगस्थनीज़ के समय का अर्थात् ईसा से ३०० वर्ष पूर्व का लिखा हुआ प्रमाण मिलता है कि उस समय भारतवर्ष में सब प्रकार की धातुएँ बहुत अधिक मात्रा में निकाली जाती थीं। सोना, तांबा, लोहा इत्यादि अनेक धातुओं के विषय में यह कहा जा सकता है कि इन के स्थानों का पता आधुनिक भूगर्भवेत्ताओं को प्रथम पुरानी खदानों से ही लगा था जो किसी समय भारतवासियों द्वारा खोदी गई थीं। उदाहरण के लिये मैसूर राज्य के सोने का स्थान प्राचीन खदानों को ही देख कर योरुपियन कम्पनी ने पाया था।

आरम्भ में लोगों का विचार था कि भारतवर्ष में यद्यपि अनेक खनिज पदार्थ मिलते हैं परन्तु आधुनिक समय में उनको निकालने में लाभ होना असम्भव है। प्राचीन समय में जब अन्य देशों ने खनिज सम्बन्धी विद्या में उन्नति नहीं की थी तब भारतवर्ष अपनी निजी आवश्यकता खनिजों के छोटे छोटे कारखाने स्थापित करके पूर्ण कर लेता रहा होगा परन्तु आधुनिक खनिजात्मिक युग में पुराने ढंग से खनिज निकालना लाभदायक कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ भारत के प्रत्येक पथरीले स्थान पर प्रमाण मिलते हैं कि किसी समय वहां लोहार लोग अपने यहाँ की लोहे की स्थानीय आवश्यकता किसी भी लोहे की खनिज वाले पत्थर को छोटी छोटी भट्टियों में शोध कर पूर्ण कर लेते थे। ये खनिज आजकल किसी भी काम की नहीं समझी जाती क्योंकि इनमें लोहे का अंश बहुत कम है। परन्तु यह विचार निरा भ्रम था। भूगर्भवेत्ताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि आधुनिक युग में भी जिन जिन खनिजों की आवश्यकता किसी सभ्य देश को हो सकती है वे सब खनिज पदार्थ इस देश में वर्तमान हैं। यदि अन्य देशों के मुकाबिले में भारत के खनिजात्मिक व्यापार की सरकार द्वारा तथा जनता द्वारा उचित रक्षा की जाय तो कदाचित ही कोई खनिज इस देश को बाहर से मंगानी पड़े। इस देश में बिहार और उड़ीसा प्रान्तों के लोहे की खनिजों का जमाव संसार में सब से बड़ा माना जाता है। कोयले की उपज में भारतवर्ष का स्थान बृटिश उपनिवेशों में प्रथम है। सोने की उपज में भारतवर्ष का संसार में आठवाँ नम्बर है। मैङ्गनीज़ की उपज में रूस के बाद भारत

का ही स्थान है । स्टील बनाने में मैङ्गनीज़ धातु अत्यन्त आवश्यक है । अबरक, सीसा, चांदी, एल्यूमीनम और अन्य खनिजों के लिये भी भारतवर्ष प्रसिद्ध है । अस्तु ।

भारतवर्ष के आधुनिक खनिजात्मिक तथा भौगर्भिक अनुसन्धानों का मुख्य श्रेय सरकार के "ज्योलाजीकल सर्वेआफ् इन्डिया" विभाग को है । यह विभाग लगभग ८० वर्ष से भारतवर्ष में भौगर्भिक कार्य कर रहा है । पाठकों ने कलकत्ता के अजायबघर के पत्थरों, फासिल (मृतक जन्तुओं के पत्थरों में पाये जाने वाले चिन्ह) तथा खनिजों के भाग को देखा होगा । भारतवर्ष का सबसे उत्तम खनिजात्मिक संग्रह यहीं है । यह सब ज्यालाजीकल सर्वे विभाग के ही परिश्रम का फल है । कहा जाता है कि जब श्रीयुत टी० ओल्डहम इस विभाग के प्रथम डाइरेक्टर नियुक्त हो कर कलकत्ता आये थे उस समय उनको आफिस के लिये केवल एक छोटा सा कमरा दिया गया था परन्तु आज लगभग ८० वर्ष पश्चात् इस विभाग के लिये अजायबघर के पीछे एक विशाल भवन स्थापित है जिस में १ डाइरेक्टर, ४ सुपरिन्टेन्डेन्ट, १२ असिस्टेन्ट-सुपरिन्टेन्डेन्ट ८ सब असिस्टेन्ट कार्य करते हैं जिनका वेतन २५०) रु० से २५००) रु० प्रतिमास तक है । इन के अतिरिक्त और भी अन्य कर्मचारी हैं । हर्ष का विषय है कि इस विभाग में अब कई भारतीय सज्जन भी उच्च स्थानों पर नियुक्त हो गये हैं और भविष्य में इस विभाग में प्रायः भारतीयों को ही नियुक्त किये जाने की सम्भावना है ।

यह हमारा दुर्भाग्य था कि इस देश के लिए भौगर्भिक और खनिजात्मिक ज्ञान इतना आवश्यक होते हुये भी हमारे विश्वविद्यालयों ने बहुत समय तक इन शास्त्रों की शिक्षा की ओर ध्यान ही नहीं दिया । ज्यालाजीकल सर्वे विभाग के प्रशंसनीय कार्य के अतिरिक्त इस ओर भारतीयों द्वारा कुछ भी कार्य नहीं हुआ । परन्तु अब कई विद्यालयों में भूगर्भ शास्त्र की उच्च शिक्षा दी जाने लगी है और प्रति वर्ष दो एक विद्यार्थी विदेशों में भी इस शास्त्र की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाने लगे हैं । भूगर्भ शास्त्र की शिक्षा भारत के निम्नलिखित कालिजों में दी जाती है :—

प्रेसीडेन्सी कालिज कलकत्ता, प्रेसीडेन्सी कालिज मद्रास, महाराजा कालिज मैसूर, महाराजा कालिज जम्मू (काश्मीर), बम्बई विश्वविद्यालय, रंगून विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, तथा गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया द्वारा स्थापित इन्डियन स्कूल आफ माइनूस धानबाद (बिहार) ।

उपर्युक्त स्थानों में से खनिज विद्या (mining) की उच्च शिक्षा हिन्दू विश्वविद्यालय और इन्डियन स्कूल आफ माइनूस में हो दी जाती है और धातुशोधन विद्या (metallurgy) की उच्च शिक्षा केवल हिन्दू विश्वविद्यालय में ही ।

यद्यपि ज्यालाजीकल सर्वे विभाग करीब ८० वर्ष से कार्य कर रहा है और उसके द्वारा भारत भर का प्रथम निरीक्षण प्रायः समाप्त हो चुका है परन्तु हमारा देश इतना विशाल है कि अभी इस ओर अनुसन्धान करने का बृहत् क्षेत्र पड़ा हुआ है । उदाहरणतः कई देशी राज्य ऐसे हैं जहां अभी तक किसी भूगर्भवेत्ता के पैर नहीं पड़े । आशा है उपर्युक्त विद्यालयों से निकले हुये छात्र शीघ्र ही देश में ज्यालाजिस्ट तथा माइनिङ्ग-इन्जीनीअर की कमी को पूरा करेंगे और इन का मण्डल देश के भौगर्भिक तथा खनिजात्मिक सर्वे में अत्यन्त सहायक

प्रमाणित होगा। भारतवर्ष को स्वराज्य मिलने पर जितनी खनिजों के जानने वालों की आवश्यकता होगी उतनी कदाचित ही किसी अन्य पेशे वालों की हो। मनुष्य के लिये दो ही प्रकार की चीज़ों की आवश्यकता होती है, एक खाद्यपदार्थ जो कृषी द्वारा उसको प्राप्त होते हैं और दूसरे खनिजपदार्थ जिनके द्वारा वह आधुनिक सभ्य जीवन व्यतीत करने के लिये अनेक सामग्री और द्रव्य एकत्रित करता है। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो किसी देश के लिये खनिजों से पैदा होने वाले पदार्थों का ज्ञान जितना आवश्यक है उतना आवश्यक कृषी सम्बन्धी ज्ञान नहीं है। कारण कि कृषि में यदि एक वर्ष कुछ त्रुटि भी हो जाय तो दूसरी बार उसको सुधारा जा सकता है परन्तु खनिज बनस्पतियों के समान बार बार नहीं उपजते यदि एक बार देश का कोई भी खनिज व्यय कर दिया जाय तो वह देश सदा के लिये उस खनिज से वंचित हो जाता है। उदाहरण के लिये आज यदि हम अपने यहां के कोयले को ठीक प्रकार से न निकालें जिससे उसका अधिक भाग खोदने में ही नष्ट हो जाय अथवा जो कोयला लोहे और फौलाद के बनाने के लिये उपयुक्त हो उसे हम साधारण एञ्जनों द्वारा भाप बनाने में व्यय कर दें तो एक समय ऐसा आ सकता है कि जब भारत के पास लोहे के खनिज तो प्रर्याप्त मात्रा में हों परन्तु उत्तम कोयला न होने के कारण वह लोहा व फौलाद जैसी परमावश्यक धातु न बना सकें। ऐसे समय में भारत को दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ेगा और उनसे कोयला चाहे जिस मूल्य पर लेना होगा।

संक्षेप में तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष को अपने खनिज पदार्थों की रक्षा की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है और प्रत्येक भारतवासी को खनिज पदार्थों का तथा उनके उपयोग का थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य होना चाहिये। अंग्रेजी भाषा में तो ज्यालाजीकल सर्वे विभाग द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तकें हैं जिनमें उस विभाग के भौगर्भिक अनुसन्धानों का पूरा पूरा विवरण दिया हुआ है। कई वर्षों से इस विभाग ने भारत के खनिज पदार्थों की उपज का ब्यौरा भी प्रति पांच वर्ष बाद प्रकाशित करना आरम्भ किया है। भूगर्भ शास्त्र का साधारण ज्ञान भी हम लोगों को न होने के कारण हम लोग इस विभाग के परिश्रमों का उतना फल नहीं पाते जितना पाना चाहिये। अत्यन्त खेद का विषय है कि हिन्दी में आज तक एक भी ऐसी पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई जिससे हिन्दी जनता को भूगर्भशास्त्र का कुछ ज्ञान हो अथवा भारतीय खनिज पदार्थों पर उसका ध्यान जाय और इस ओर उसकी रुचि हो। इसका एक कारण यह भी है हिन्दी प्रान्तों के विद्यार्थी जो भूगर्भ शास्त्र की शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं उनको अभाग्यवश या तो मातृ भाषा का इतना ज्ञान नहीं कि वह टूटी फूटी भाषा में भी अपने विचार प्रकट कर सकें अथवा वे हिन्दी साहित्य की इस त्रुटि पर विचार ही नहीं करते। दूसरा कारण यह है कि भूगर्भ शास्त्र अन्य विज्ञान की शाखाओं (रसायन शास्त्र, प्राणिशास्त्र इत्यादि) से कहीं नवीन है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी वैज्ञानिक कोष में भी भौगर्भिक और खनिजात्मिक शब्द थोड़े ही मिलते हैं इससे भौगर्भिक शास्त्र पर कोई भी पुस्तक लिखते समय अंग्रेज़ी शब्दों के लिये हिन्दी भाषा में हम जैसे कच्चे लेखकों के लिये ठीक शब्द मिलना कठिन हो जाता है। फिर हज़ारों खनिज पदार्थों के नामों के लिये हिन्दी में शब्द कैसे गढ़ें। खनिज पदार्थों तथा शिलाओं के वैज्ञानिक नाम अन्तर्राष्ट्रीय हैं इस लिये क्या यह आवश्यक है कि जब सब संसार एक खनिज को

एक नाम से पुकारे तो भारतवासी उसको भिन्न २ नामों से पुकारें। आखिर हिन्दी में भी तो नये नाम खनिजों के लिये आविष्कार करने पड़ेंगे फिर क्यों न हम अन्तर्राष्ट्रीय नामों को ही स्वीकार कर लें क्योंकि विज्ञान शास्त्र प्रति दिन उन्नति करता है प्रति मास दो तीन नये खनिज पदार्थों का आविष्कार होता है। इतने नाम हिन्दी भाषा कहां तक बना सकेगी इस में सन्देह है। हां जिन धातुओं तथा खनिजों और रत्नों के नाम हमारी भाषा में पहले से ही प्रचलित हैं उनको अवश्य प्रयोग में लाना चाहिये परन्तु लाखों नये खनिजों, शिलाओं तथा फासिलों के नाम हिन्दी में गढ़ने का प्रयत्न करना सरासर भूल होगी। अंग्रेज़ी के नाम ही रखने से एक लाभ यह भी है कि हम इस विषय का अंग्रेज़ी साहित्य सरलता से समझ सकेंगे।

लेखक ने इस लेखमाला द्वारा भूगर्भ शास्त्र की प्रथम हिन्दी पुस्तक लिखने का साहस किया है। पता नहीं वह इस कार्य में कहाँ तक सफल हुआ है। भारतवर्ष के मुख्य मुख्य खनिज पदार्थों का यह विवरण लेखक ने अपने अंग्रेज़ी के उन लेक्चरों में से लिया है जो वह प्रति वर्ष माइनिङ्ग कालिज की दूसरी श्रेणी के विद्यार्थियों को दिया करता है। इन लेक्चरों का बहुत सा मसाला, विशेषतः भारतीय खनिजों के स्थानों का वृत्तान्त, ज्यालाजीकल सर्वे आफ् इन्डिया की पुस्तकों से ही लिया हुआ होता है जिसके लिये लेखक उस विभाग का अत्यन्त कृतज्ञ है।

इस लेखमाला को सचित्र बनाने के लिये लेखक को प्रोफेसर एस० के० राय से तथा अपने कई विद्यार्थियों और कई कारखानों के मैनेजरों से बड़ी सहायता मिली है जिसके लिये वह उन सब का कृतज्ञ है।

अन्त में लेखक 'भूगोल कार्यालय के सम्पादक, पं० राम नारायण मिश्र जी का बड़ा कृतज्ञ है जिन्होंने आरम्भ से ही इस लेखमाला में बहुत दिलचस्पी ली थी और अब वे इसको पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने को सहर्ष तय्यार हो गये हैं। आशा है इस पुस्तक से हिन्दी जनता को कुछ लाभ अवश्य होगा।

निरंजनलाल शर्मा

———

भारतवर्ष की खनिजात्मक सम्पत्ति

धातुएँ और असंस्कृत धातु-पदार्थ

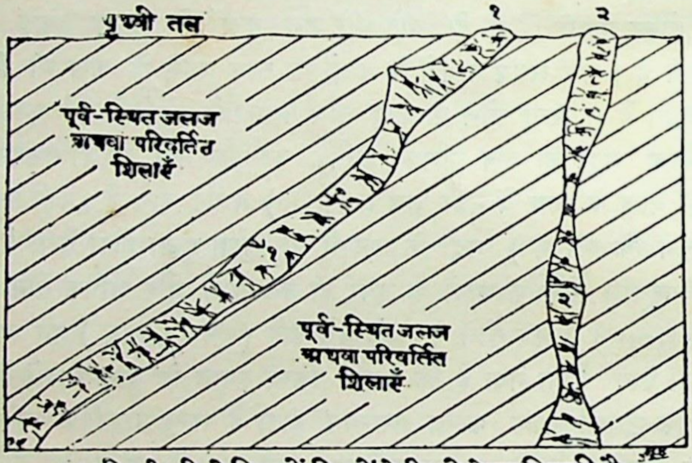
(१) सोना

अधिकतः धातुएँ अन्य मूलतत्वों से सम्मिलित खनिज के रूप में पाई जाती हैं। इन सम्मेलनों को शोधकर ही धातु निकाली जाती है। परन्तु सोना प्रायः मूलतत्व के रूप में ही पाया जाता है। सोने के छोटे छोटे कण या तो (गर्मी तथा दवाव से) परिवर्तित शिलाओं की तहों में बहुत थोड़ी मात्रा में बिखरे हुए मिलते हैं अथवा स्वर्ण-मिश्रित विल्लोर (Quartz) की धारियों[1] (Veins) में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सोना बहुत सी नदियों की बालू में भी पाया जाता है। नदियाँ जब सोने के कणों वाले पत्थरों से बनी हुई भूमि में होकर बहती हैं तो वे धीरे धीरे उन पत्थरों के टुकड़े टुकड़े करके बहाना आरम्भ कर देती हैं। उस समय पत्थरों के कणों के साथ सोने के कण भी मिल कर नदी की बालू बन जाते हैं। परन्तु सोने के कण अन्य पत्थरों के कणों से कई गुना अधिक भारी होते हैं इस कारण नदी का जल उनको अधिक दूर तक नहीं ले जा सकता और विशेष स्थानों पर मोटे बालू के साथ वे नदी पात्र (Bed) में बैठ जाते हैं। कहीं कहीं कुछ सोना (किसी सम्मेलन के रूप में) नदी के जल में भी घुला हुआ होता है। ऐसी नदियों में नदी पात्र के बालूवाले सोने के कणों के ऊपर ही जल द्वारा और अधिक सोने का अवक्षेपन (Precipitation) होकर सोने के बड़े बड़े ढेले (Nuggets) बन जाते हैं। इस प्रकार कहीं कहीं ऐसा देखा गया है कि यद्यपि किसी स्थान के ठोस पत्थरों में सोना इतना कम होता है कि उसको पृथक करना असम्भव होता है परन्तु प्राकृतिक नदियों द्वारा जब वही सोना मूल पत्थरों में से निकल कर नदी पात्र की बालू में एकत्रित हो जाता है तो उसे निकालना अधिक सरल और आर्थिक दृष्टि से लाभदायक सिद्ध होता है।

---

१. पृथ्वी के अन्तस्तल में घुले हुए पत्थरों के किसी पिण्ड से निकल कर जलवाष्प के साथ धातुओं तथा खनिजों के वाष्प पृथ्वी की दरारों में ठण्डे होकर ठोस बन जाते हैं। इनको धारियों के पत्थर कहते हैं। इन धारियों की मुख्य शिला सफेद विल्लोरी पत्थर (quartz) है और उसके साथ कहीं कहीं पर धातुओं के खनिज मिले हुए होते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि विल्लोर की धारी में सदा कोई मूल्यवान खनिज ही हो। ये धारियां सीधी या झुकी हुई दीवार के समान अन्दर धंसी हुई मीलों तक चली जाती हैं। चौड़ाई में कुछ इंच से कई फुट तक होती हैं।—लेखक

भारतवर्ष में सोने के क्षेत्रः—सन् १९२७ से सोने की उपज में भारतवर्ष का स्थान संसार में दसवां रहा है। यहाँ पर थोड़ा सोना तो अनेक स्थानों में मिलता है। परन्तु इस समय भारतवर्ष में जितना सोना उत्पन्न होता है उसका ९९·७ प्रतिशत मैसूर राज्य में निकाला जाता है। प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि दक्षिण भारत बहुत काल से सोने के लिये प्रसिद्ध है। ईसवी सन् ७७ में ही प्लानी (Pliny) ने लिखा था कि नायरों के देश में (अर्थात् मलाबार प्रान्त में) सोने और चांदी की अनेक खानें हैं। उसने यह भी लिखा है कि ईसा के संवत् से कहीं पहले भारतवासी सोने के कणों को पारे द्वारा पृथक करके निकालना जानते थे। तंजौर शहर के एक प्राचीन मन्दिर के लेख से विदित होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत सोने का एक प्रचुर भण्डार कहा जाता था। तात्पर्य यह है कि यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि प्राचीन समय में सोना भारत में कहीं अधिक मात्रा में और अनेक स्थानों पर निकाला जाता था। आधुनिक युग खानों और मशीनों का युग है। इस समय करोड़ों रुपये की पूंजी से आरम्भ की हुई सोने की खानों के मुकाबले में केवल हाथों से सोना निकालने वाला थोड़ी पूंजी वाला व्यवसाय जीवित नहीं रह सकता। इसी कारण भारत के कुछ स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर सोना निकालना अब असम्भव सा हो गया है।



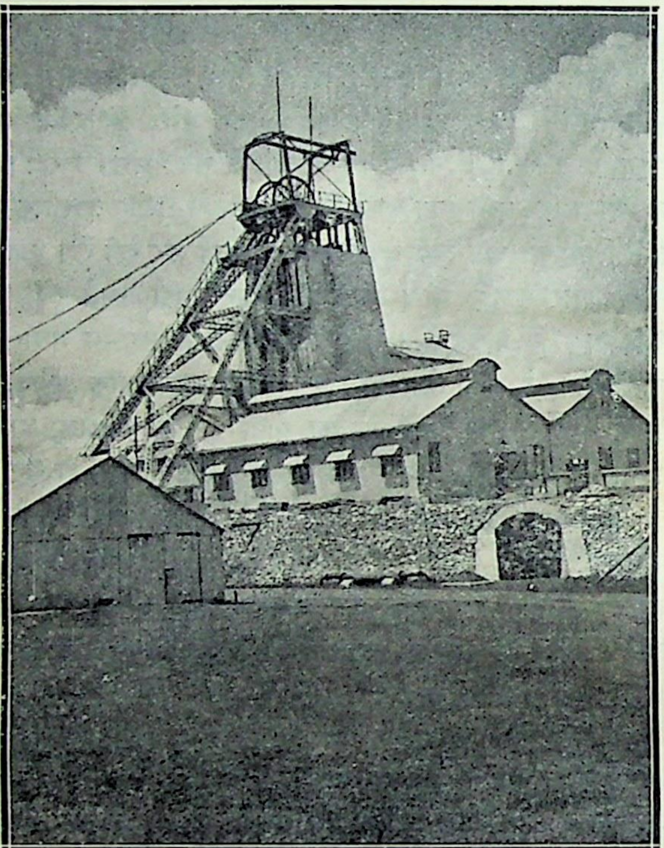
१ झुकी हुई धारी जो शिलाओं की तहों के बीच से होकर निकली है।
२ सीधी धारी जो शिलाओं की तहों को काट कर ऊपर निकली है।

कोलार (मैसूर) की सोने की खानें:—मैसूर का सोना मुख्यतः कोलार नामक ज़िले में उत्पन्न होता है। यहाँ पर सोना बिल्लोर पत्थरकी धारियों में मिलता है। यहाँ के बिल्लोर का रंग काला (कुछ नीलिमा लिये हुए) है और उसमें सोने के छोटे छोटे कण मिले हुए होते हैं। इस पत्थर में ये कण साधारणतः दिखाई नहीं देते और उनके साथ अन्य खनिजों—लोहा, ताँबा, सीसा तथा जस्ता की गंधकदार खनिजों—के कण भी मिले हुए पाये जाते हैं। कोलार क्षेत्र के पत्थर प्राचीनकाल की अत्यन्त परिवर्तित शिलाएँ (मुख्यतः 'शिस्ट' नामक शिलाएँ) हैं। बिल्लोर की धारियाँ इन्हीं शिलाओं को बेधती हुई दूर तक उत्तर-दक्षिण दिशा में चली गई हैं। इन धारियों की मोटाई बराबर एक सी नहीं

रहती। परन्तु ये कहीं कहीं मोटी और कहीं कहीं पतली होती हुई चली गई हैं। इन धारियों में मुख्य धारी एक ही है और इसी पर कई खानें कार्य कर रही हैं। इस धारी की मोटाई क़रीब ४ फुट है और पृथ्वी तल पर यह पांच मील से अधिक दूर तक दिखाई देती है। प्राचीन समय में हिन्दुओं ने यहाँ से बहुत सोना निकाला था जिसके प्रमाण स्वरूप यहाँ अनेक पुरानी खदानें वर्तमान हैं जिनको देखकर ही योरूपियन लोगों का ध्यान इस क्षेत्र की ओर आकर्षित हुआ था। सोने की यह धारी बड़ी टेढ़ी है इस कारण इसके आकार का पता लगा कर इसमें से सोना निकालने के लिये खनिज विद्या के अधिक ज्ञान की आवश्यकता है। प्राचीन हिन्दुओं ने इसी धारी में से बहुत दूर तक ३०० फुट गहराई तक का सोना निकाल लिया था। इससे विदित होता है उस समय वे खनिज विद्या का बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। सन् १८७२ से १८८० तक अनेक मालदार कम्पनियों ने यहाँ सोना निकालने का ठेका लिया। परन्तु कई कारणों से सब असफल रहीं। सन् १८८० में कोलार क्षेत्र का सोना निकालने का ठेका मैसूर राज्य से 'जोनटेलर एण्ड सन्स' नामक विदेशी कम्पनी ने लिया जो अब तक सफलता पूर्वक कार्य कर रही है। यह कम्पनी करोड़ों रुपयों की पूंजी से आरम्भ हुई थी। वहाँ की सबसे गहरी खानें 'चेम्पियन रीफ और 'ओरेगाम रीफ' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन दोनों खानों में लगभग अठारह हजार मनुष्य प्रतिदिन कार्य करते हैं। ये खानें डेढ़ मील से अधिक गहराई तक पहुँच चुकी हैं अर्थात् बिल्लोर की धारी में से डेढ़ मील नीचे तक का सोना यहाँ पर निकाला जा चुका है। इस समय इन दोनों खानों में ७६०० फीट से अधिक गहराई पर कार्य हो रहा है। इन खानों की गणना संसार की सबसे गहरी खानों में की जाती है। पृथ्वीतल से इतना नीचो होने के कारण इन खानों की तह में १२६० (फारेनहाइट) तक तापक्रम पहुँच गया है जिससे वहाँ के पत्थर हर समय तपते रहते हैं। इस कारण मज़दूरों को इस गहराई पर कार्य करने में बड़ी कठिनाई होती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि बेचारे किसी भट्टी के सामने काम कर रहे हों। इस गर्मी को कम करने के लिये इन खानों में बड़ी बड़ी चानकों (Shafts) में होकर बिजली के बड़े बड़े पंखों द्वारा वायु का संचार किया जाता है। ओरेगाम की एक चानक ४६८० फुट गहरी है जो संसार की सब से गहरी चानक मानी जाती है। इसकी चौड़ाई १८ फीट है। इस चानक के आकार का अनुमान पाठक यह विचार कर कर सकते हैं कि वे एक ऐसे कुंए के किनारे खड़े हैं जिसका व्यास ६ गज़ हो और गहराई क़रीब एक मील के हो।

स्वर्ण मिश्रित धारियों के अन्य स्थान—कोलार क्षेत्र के अतिरिक्त हैदराबाद (दक्खिन) में हट्टी नामक क्षेत्र में भी सोना कुछ समय पहले तक निकाला जाता था। यह स्थान हैदराबाद के लिङ्गसागर ज़िले में हैं। यहाँ भी प्राचीन खदानों के चिह्न मिलते हैं जिनके विषय में एक आश्चर्यजनक बात यह है कि यहाँ की बिल्लोर की धारी में से सोना निकालने के लिये पुराने निवासियों ने ६२० फुट गहरी एक चानक खोदी थी। इस गहराई से वे यदि सोना निकालते थे तो खान का पानी वे किस प्रकार ऊपर फेंकते होंगे यह विचारणीय विषय है क्योंकि अब तक वैज्ञानिकों का यह मत था कि पुराने समय में भारतवासी कलों द्वारा जल ऊपर को खींचना या चढ़ाना न जानते थे इसी कारण वे प्रायः खानों को अधोभौमिक (अभ्यन्तर) जल तक पहुँच जाने पर त्याग देते थे।

बम्बई के धारवाड़ ज़िले तथा उसके पास की सांगली रियासत में, मद्रास प्रान्त के अनन्तपुर जिले और नीलगिरी पर्वत पर भी सोना मिलता है। बिहार उड़ीसा और मध्य प्रान्त की सीमा पर जाशपुर नामक रियासत में भी सोना पाया गया है। इन सभी स्थानों पर सोना स्फटिक (बिल्लोर) की धारियों में ही पाया जाता है। सोने की खानों में धारी का पत्थर पहले मशीनों से कूटा और पीसा जाता है। उस बुरादे में से (बहते हुए जल द्वारा) पत्थर के बड़े बड़े कण और सोने के भारी कण एक ओर एकत्रित कर लिये जाते हैं।



ऑरेगाम नामक सोने की खान की मुख्य चानक (करीब ४७०० फुट गहरी)

इनमें से अधिकतः सोना पारे द्वारा निकाल लिया जाता है क्योंकि पारा और सोना मिलकर एक प्रकार का धातुमेल (Alloy) बन जाता है जिसमें से अग्नि द्वारा तपाकर सोना फिर प्राप्त हो सकता है। शेष सोना जो पत्थरों के कणों में अन्य धातुओं के खनिजों में मिला रह जाता है, क्लोरीन गैस अथवा पोटेशियम साइनाइड इत्यादि रसायनिक सम्मेलनों द्वारा पृथक कर लिया जाता है।

भारत की स्वर्ण मिश्रित बालू वाली नदियाँ:—धारियों के अतिरिक्त भारतवर्ष की अनेक नदियों के बालू में भी सोना पाया जाता है। कुछ नदियों के तो नाम मात्र से ही उसमें सोना मिलने की सम्भावना का पता चलता है। उदाहरणतः आसाम में ब्रह्मपुत्र

की एक शाखा नदी का नाम "स्वर्ण-सीरो" है। इसी प्रकार बिहार उड़ीसा के सिंघभूमि, मानभूमि ज़िलों में "स्वर्ण-रेखा" नाम की एक प्रसिद्ध नदी है जिसकी बालू में से सोना पुराने समय से ही निकाला जाता है परन्तु इस धंधे में आज कल दो तीन आने प्रतिदिन से अधिक नहीं मिलते। स्थानीय कारीगर नदी की बालू में से सोना बड़ी कुशलता पूर्वक निकाल लेते हैं। इसके लिये एक अण्डाकार तश्तरी का प्रयोग होता है जिसकी लम्बाई २८ इंच और चौड़ाई १८ इंच होती है परन्तु गहराई केवल २½ इंच होती है। स्वर्ण-मिश्रित बालू को तश्तरी में लेकर और उसको बालू के ऊपर तक बार बार जल से भर कर कारीगर उसको इस प्रकार हिलाता है कि बारीक मिट्टी बालू में से शीघ्र ही निकल जाती है और फिर केवल स्वच्छ बालू के कण और भारी धातुओं के कण ही रह जाते हैं। फिर उस तश्तरी का एक किनारा थोड़ा झुका हुआ रख कर उसमें जल ले लेकर इस प्रकार हिलाया जाता है कि बालू के भारी भारी अवयव तो तश्तरी के एक कोने में रह जाते हैं और शेष हल्के पदार्थों के कण जल द्वारा निकल जाते हैं। अन्त में काले रंग का भारी बालू रह जाता है जिसमें से पारा डालकर सोने के कण पृथक कर लिये जाते हैं। निम्नलिखित स्थानों पर भी नदियों की बालू से सोना निकाला जाता है :—

ब्रह्मदेश :—यहाँ पर इरावदी और उसकी सहायक नदियों की बालू से सोना निकाला जाता है। इरावदी नदी की बालू में से बड़े पैमाने पर सोना निकालने का प्रयत्न किया गया था परन्तु उसमें अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई।

काश्मीर :—यहाँ पर बाल्तिस्तान और लद्दाख प्रान्तों में सिन्धु नदी की घाटी में सोना निकाला जाता है।

पंजाब :—इस प्रान्त में अटक, अम्बाला और झेलम ज़िलों में सिन्धु और उसकी सहायक नदियों की बालू से सोना प्राप्त होता है।

संयुक्त प्रान्त :—यू० पी० में बिजनौर ज़िले की नगीना तहसील में "सोना" नामक नदी की बालू में सोना मिलता है। जहाँ यह नदी बृटिश गढ़वाल की दक्षिणी पश्चिमी सीमा को पार करके बिजनौर ज़िले में प्रवेश करती है उस स्थान पर सोना स्थानीय कारीगरों द्वारा निकाला जाता है। ऐसा सुना जाता है कि सन् १९०४ में इस स्थान पर १०० मज़दूर प्रतिदिन काम किया करते थे। पिछले वर्षों में नैनीताल ज़िले से भी कुछ सोना उत्पन्न हुआ है।

इन स्थानों के अतिरिक्त मध्यप्रान्त, मैसूर और अन्य अनेक स्थानों की नदियों की बालू में सोना पाया जाता है। दुर्भाग्यवश भारत की अनेक नदियाँ ऐसी हैं जिनमें वर्ष भर जल का उतार चढ़ाव रहता है अर्थात् वे एक गति से नहीं बहतीं। इसलिये उन नदियों का वेग अधिक होने से बालू में सोने के कणों को अधिक मात्रा में एकत्रित होने का अवकाश ही नहीं मिलता और सोना इतने कम परिमाण में मिलता है कि आधुनिक प्रयोगों द्वारा निकालने में कुछ लाभ नहीं हो सकता। हाँ, स्थानीय लोगों के लिये अवकाश समय में बालू से सोना निकालने और कुछ द्रव्य प्राप्त करने का व्यवसाय अवश्य हो सकता है। परन्तु बहुत सम्भव है कि किसी किसी नदी से सोना अब लाभपूर्वक निकाला जा सके क्योंकि आजकल अनेक ऐसी मशीनों का आविष्कार हुआ है जो बालू में से सोने को अन्य भारी

खनिजों के साथ केवल पृथक ही नहीं करतीं परन्तु उसमें से सोने को पारे से शोधकर निकाल भी लेती हैं। इन मशीनों को चलाने में बहुत थोड़े मनुष्यों की आवश्यकता होती है और ये एक दिन में १०० टन तक बालू में से सोना निकाल सकती हैं। इन मशीनों द्वारा उन स्वर्ण मिश्रित बालुओं का जो अब तक लाभदायक नहीं समझी जाती थीं उपयोग हो सकता है।

भारतवर्ष में सन् १९३४ ई० में सोने की जो उत्पत्ति हुई उसका व्यौरा इस प्रकार था:—

मैसूर राज्य—	२,९१,६६,०७५ रु० का सोना
बिहार और उड़ीसा—	८,३२३ " "
संयुक्त प्रान्त—	३९० " "
पञ्जाब—	८५ " "
ब्रह्मदेश—	६३,२५७ " "
कुल	२,९२,७१,१३० रु०

(२-४) चाँदी, सीसा तथा जस्ता

चाँदी सीसा तथा जस्ता की मुख्य खनिज प्रायः गंधक और धातु के सम्मेलन के रूप में पाई जाती है। चाँदी की मुख्य खनिज "अर्जेन्टाइट", (Argentite) सीसा की "गैलेना" (Galena) और जस्ता की "स्फेलेराइट" (Sphalerite) कहलाती हैं। गैलेना और अर्जेन्टाइट दोनों खनिज सीसा के समान काले रंग की और चमकदार होती हैं। गैलेना के साथ अर्जेन्टाइट का थोड़ा सा अंश अक्सर पाया जाता है। परन्तु चूंकि यह दोनों खनिज देखने में एक समान हैं इस कारण चाँदी का अनुमान गैलेना पर रासायनिक प्रयोग किये बिना नहीं हो सकता। स्फेलेराइट का रंग इन दोनों ही खनिजों से भिन्न है। यह खनिज कुछ पीली मिली हुई भूरी या काली होती है। इस कारण गैलेना के साथ इसको सरलता से पहचान लेते हैं। चाँदी और सीसा की खनिज तथा कहीं-कहीं पर जस्ता की भी खनिज एक ही साथ मिलती है। कई स्थानों पर इनके साथ ताँबे की भी खनिज पाई जाती है। ये सब खनिज अधिकतर बिल्लोर पत्थर की धारियों में मिलती हैं। अथवा कई प्रकार के आग्नेय शिला या जलज शिलाओं की तहों में मिलती हैं। जहाँ वे किसी समय आन्तरिक जलवाष्प द्वारा जमाई गई होंगी। इन धातुओं की खनिजों के साथ प्रायः बिल्लोर, बेराइट (बेरियम की खनिज) केल्साइट (चूने की स्वच्छ खनिज) इत्यादि साधारण खनिजें और मिली रहती हैं।

कुछ चाँदी, सोने में मिली हुई, मूलतत्व के रूप में भी पाई जाती है। कोलार के सोने में चाँदी का अंश मिलता है। मद्रास प्रान्त के अनन्तपुर ज़िले के सोने में से चाँदी सन् १९२७ ई० तक पृथक की जाती थी। परन्तु अब यह कार्य अधिक लाभदायक न होने से त्याग दिया गया है। भारतवर्ष में सोने तथा गैलेना से चाँदी बहुत प्राचीन समय से ही निकाली जाती थी। प्लानी इत्यादि प्राचीन लेखकों ने उल्लेख किया है कि दक्षिण भारत

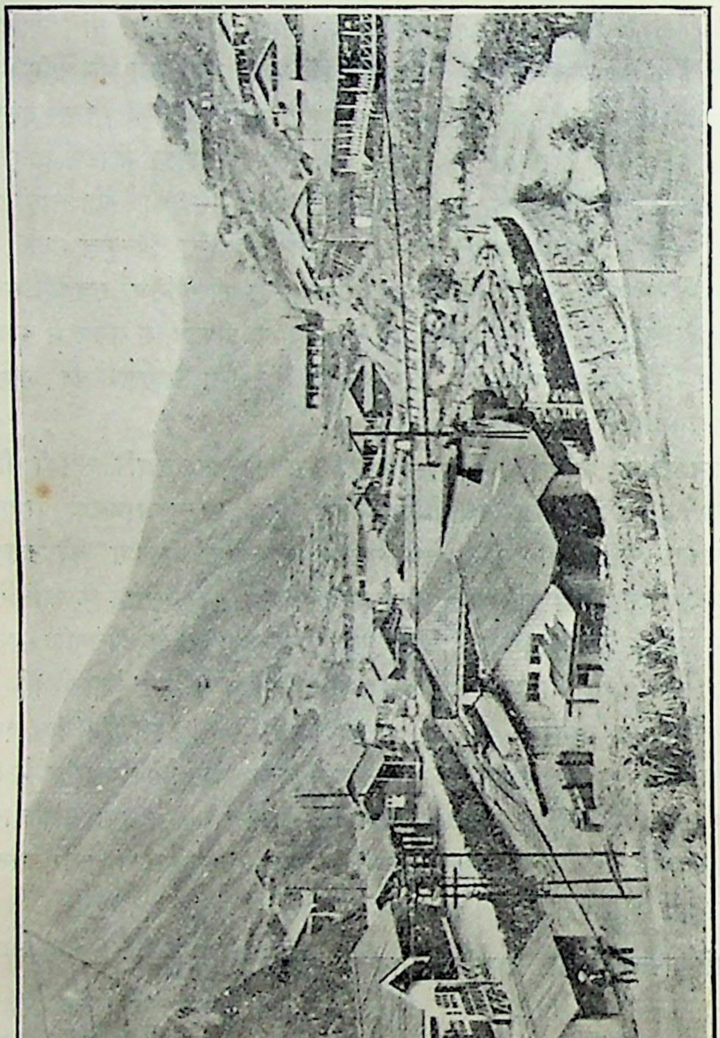
के मलाबार प्रान्त में तथा हिमालय के कुलू राज्य में उस समय भी चाँदी की बहुत खानें वर्तमान थीं। लोहे के बाद सीसा की ही खनिज प्राचीन समय में अधिक मात्रा में निकाली गयी प्रतीत होती है। राजपूताना, बिहार, मद्रास, ग्वालियर, दतिया, बलूचिस्तान इत्यादि अनेक स्थानों में सीसा की पुरानी खदानों के चिन्ह मिलते हैं। कदाचित् इन खानों से सीसा की खनिज को केवल उसमें से चाँदी पाने के ही हेतु निकाला गया होगा। बिहार के भागलपुर ज़िले में अनेक पहाड़ियों और नदियों के नामों में 'चन्द' या 'चान्दन' शब्द इत्यादि लगे हुए हैं। यह इस बात का द्योतक है कि वहाँ की सीसा की खनिज से चाँदी निकाली जाती थी। जस्ता का व्यवसाय भारत में बहुत पुराना नहीं है। जिस वस्तु को हम टिन कह कर अपने मकानों इत्यादि में प्रयोग करते हैं वह वास्तव में टिन धातु नहीं है। वे चद्दरें लोहे की होती हैं जिनके ऊपर जस्ता अथवा रांगे की तह चढ़ी होती है जिससे लोहे पर मुर्चा न लगे। सन् १९१२ तक भारत में जस्ता बिल्कुल नहीं पैदा होता था। हाँ, उदयपुर राज्य के जावर स्थान पर सीसा-जस्ता की खनिज सत्रहवीं शताब्दी में बहुत निकाली गई थी। यहाँ की खान सन् १८१२ ई० के अकाल के समय में बन्द कर दी गई। टाड साहब ने अपने राजस्थान में इस खान में से राँगा निकालने का उल्लेख किया है। परन्तु वास्तव में यहाँ जस्ता ही मिलता है।

इन धातुओं के भारतीय क्षेत्रः—ऊपर लिखे अनुसार यद्यपि चाँदी सीसा और जस्ता की खनिज भारत में अनेक स्थानों पर मिलती हैं। परन्तु आजकल भारतवर्ष की प्रायः ९९.८ प्रतिशत चाँदी और सीसा तथा सब का सब जस्ता ब्रह्मदेश की उत्तरी शान नामक राज्य के बाडविन स्थान की खानों से ही प्राप्त होता है। इस स्थान के अतिरिक्त कुछ चाँदी कोलार के सोने में से निकलती है और कुछ सीसा ब्रह्मदेश के दक्षिणी शान राज्य से तथा जैपुर राज्य में सवाई माधोपुर के पिंजोरी नामक स्थान से प्राप्त होता है।

चाँदी की खपत संसार में सब से अधिक भारत में ही होती है। सन् १९२७ में चाँदी की उत्पत्ति में भारत का स्थान संसार में छठा था। जस्ता की उत्पत्ति में इस देश का नम्बर सन् १९२६ में नवाँ था। यद्यपि सीसा की खनिज गैलेना तथा चाँदीदार गैलेना भारत में अनेक स्थानों पर मिलती है। परन्तु आजकल सीसा, चाँदी और जस्ता केवल ब्रह्मदेश में ही उत्पन्न होते हैं।

चाँदी-सीसा-जस्ता की बाडविन नामक खानों का वृत्तान्तः—ये खानें ब्रह्मदेश के उत्तरी शान राज्य में वर्तमान हैं। मिट्टी के तेल के कारखानों के बाद ब्रह्मदेश में ये ही खानें सब से प्रसिद्ध हैं। इन खानों के इधर उधर प्राचीन काल की जलज शिलाएँ—बालू तथा मिट्टी के पत्थर—मिलते हैं। बाडविन स्थान पर इन शिलाओं के नीचे आग्नेय ज्वालामुखीय 'रायोलाइट' (Rhyolite) नामक शिलाओं तथा उनकी राख से बनी हुई जलज शिलाओं की तहें मिलती हैं। चाँदीदार गैलेना तथा जस्ता की खनिज (स्फेलेराइट) कुछ ताँबे की खनिज के साथ मुख्यतः रायोलाइट की राख से बने पत्थरों में ही मिलती हैं। बाडविन की खानें बहुत प्राचीन हैं। यहाँ पर यनान के चीनियों द्वारा सैकड़ों वर्षों तक खनिज निकाली गई थी। सन् १४१२ ई० में यहां पर कार्य होने का ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है। सन् १८६० ई० में उन चीनियों ने इन खानों का कार्य

वन्द कर दिया जिसका कारण यह बताया जाता है कि उस समय इन खानों की सुरंगें अभ्यन्तर (अधोभौमिक) जल तक पहुंच चुकी थीं और वे लोग उस जल को खान से बाहर न निकाल सकते थे। उस समय यनान देश की राजनैतिक परिस्थिति के कारण वहाँ के निवासियों की जानें ब्रह्मदेश में संकट में पड़ी रहती थीं। खानों के वन्द हो जाने का



चांदी-सीसा की 'बाडविन' नामक खान की बस्ती का एक दृश्य
(श्री० प्री० एस० के० राय की कृपा से)

यह भी एक कारण होगा। सन् १९०२ में योरुपीय लोगों का ध्यान इस स्थान की ओर उन धातुमैल (slag) के ढेरों से आकर्षित हुआ जिसको चीनियों ने अपनी भट्ठियों से बाहर चाँदी निकाल कर फेंक दिया था। ब्रह्मा माइन्स लिमिटेड नामक योरुपीय कम्पनी ने पहले पहल सन् १९०६ ई० में इन्हीं ढेरों से सीसा और चाँदी निकालना आरम्भ किया। सन् १९१९ ई० में यह कम्पनी ब्रह्मा कार्पोरेशन लिमिटेड नामक कम्पनी परिवर्तित हो गई और

उसका दफ़्तर लन्दन की जगह रंगून में बनाया गया। इस कम्पनी ने अपनी पूंजी के लिये दस दस रुपये के दो करोड़ शेअर रक्खे हैं।

भौगर्भिक अनुसन्धानों से पता चला है कि बाडविन का चाँदी-सीसा और जस्ता का जमाव संसार में सब से बड़ा और उत्तम जमाव है। इस जमाव के दो भाग बहुत प्रसिद्ध हैं एक को चीनी वाला जमाव और दूसरे को 'शान का जमाव' कहते हैं। इनमें पहला जमाव अधिक बड़ा है। उसमें चाँदी-सीसा और जस्ता की खनिजों का ठोस जमाव ५० फीट से १०० फीट तक चौड़ा और १००० फीट लम्बा है। इस जमाव में किनारों की ओर उपर्युक्त खनिजों के साथ ताँबे की भी खनिज मिली हुई पाई जाती है। इस जमाव से लगभग १००० फीट की गहराई तक की सब खनिज निकाली जा चुकी है। इस खान में 'टाइगर' नामक सुरंग सब से बड़ी है। इस सुरंग की खुदाई अप्रैल सन् १९१४ ई० में आरम्भ हुई थी और सितम्बर सन् १९१६ में समाप्त हुई। सुरंग की चौड़ाई ९ फुट और ऊँचाई ८ फुट है। इसमें दो ट्राली-लाइनें हैं जिन पर होकर खनिजों से भरी हुई ट्रालियाँ बिजली के इञ्जिन से फौलाद की रस्सी द्वारा खींची जाती हैं। सुरंग की लम्बाई दो मील है और यह पृथ्वीतल से ६५३ फीट नीचे है। जून १९३४ ई० में बाडविन की कुल खनिजों का परिमाण ४०६२५११ टन अनुमान किया गया था जिसमें धातुएँ लगभग २४.६ प्रतिशत सीसा, १४.८ प्रतिशत जस्ता, ०.८४ प्रतिशत ताँबा और १८.९ औंस चाँदी (प्रति टन सीसा) के हिसाब से होंगी। इस मात्रा में (३७०००) सैंतीस हज़ार टन ताँबे की खनिज सम्मिलित है।

सन् १९३४ ई० में बाडविन की खान में एक करोड़ रुपये से अधिक का सीसा और ७४ लाख रुपये से अधिक की चाँदी उत्पन्न हुई थी।

---

(५) ताँबा

ताँबे की खनिजें अधिकतः गंधकदार सम्मेलन (सम्मिश्रण) होती हैं। उसकी मुख्य खनिज सोनामाखी (Chalcopyrite or copper pyrite) है जो ताँबा, गंधक और लोहे का सम्मेलन है। यह सोने के समान पीली होती है। परन्तु इसके पाउडर का रंग काला होता है। या तो यह खनिज बिल्लोर की धारियों में अन्य धातु खनिजों के साथ मिलती है अथवा परिवर्तित शिलाओं में इसका जमाव पाया जाता है। प्रत्येक दशा में यह खनिज पृथ्वी के अन्दर से अत्यन्त गरम जल या घोल द्वारा लाकर जमा की गई होगी। ये गर्म जल या घोल प्रायः उन आग्नेय पिण्डों से निकले थे जो पृथ्वी के अन्तस्थल में ठंडे पड़ते जा रहे थे। सोनामाखी से ताँबा भट्ठियों में अनेक प्रयोगों के पश्चात् प्राप्त होता है। पहिले इस खनिज को खूब तपाया जाता है जिससे इसमें से गंधक का बहुत सा अंश निकल जाय। उस समय ताँबे, लोहे और गंधक का एक निविष्ट (concentrated) सम्मेलन रह जाता है जिसको मेट (matte) कहते हैं। इसको भट्ठियों में गलाकर लोहा और शेष गंधक दोनों को पृथक कर दिया जाता है और इस प्रकार तांबा प्राप्त होता है। आधुनिक युग में ताँबे का मुख्य प्रयोग बिजली के तार

इत्यादि के लिये होता है। परन्तु भारत में इसका तथा पीतल (ताँबा-जस्ता मिला हुआ धातु-मेल) और कांसे (ताँबा-राँगा मिला हुआ धातु-मेल) का प्रयोग अति प्राचीन समय से चला आता है। इन धातुओं के बर्तन हिन्दू गृहस्थी के एक आवश्यक अंग बने हुये हैं।



दान्ता राज्य का 'अम्बा जी' नगर जहां तांबे (अथवा सीसा) के एक प्राचीन कारखाने से निकाला हुआ धातु-मैल (slag) मिलता है। (श्री०प्रो०के०के० माथुर की कृपा से)

भारत के अनेक स्थानों पर लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व की ताँबा निकालने की प्राचीन खदानें मिलती हैं।

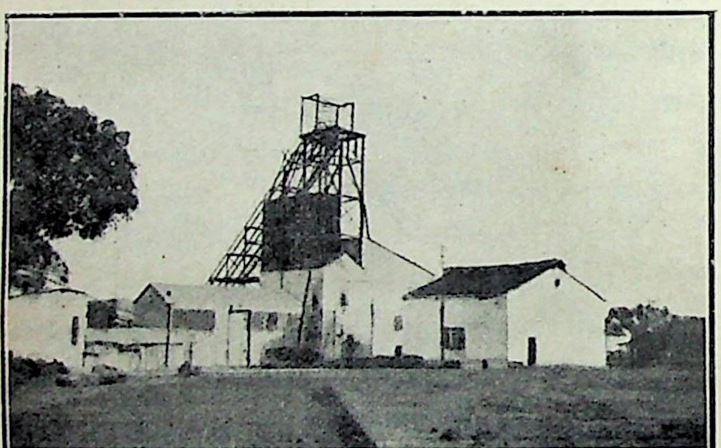
ऐसा अनुमान किया जाता है कि पुराने समय में राजपूताना तथा गढ़वाल, नैपाल, सिकिम इत्यादि हिमालय के पर्वतीय स्थानों में ताँबा बहुत मात्रा में निकाला जाता था। यू० पी० के कमायूँ ज़िले में १८ वीं शताब्दी के आरम्भ में गुरखा राज्यकाल में ताँबे

का व्यवसाय बड़ी उन्नति पर था। अलवर, भरतपुर, बूँदी, उदयपुर, बीकानेर, जैपुर, तथा दान्ता इत्यादि अनेक देशी राज्यों में ताँबे के खनिज मिलते हैं जहाँ पर प्राचीन समय में ताँबा निकाला जाता था। दान्ता राज्य में लेखक को भौगर्भिक अनुसन्धान करने का अवसर मिला था। इस रियासत में गुजराती हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ-स्थान "अम्बाजी" प्रसिद्ध है। इस स्थान के पास एक मील लम्बी एक छोटी सी पहाड़ी में ताँबे की खनिज का जमाव है। यद्यपि ताँबे की मुख्य खनिज सोनामाखी इस पहाड़ी के पृथ्वीतल पर कहीं नहीं मिलती तथापि इस पहाड़ी के अनेक पत्थरों में हरे अथवा नीले रंग के दाग़ (ताँबे के कारबोनेट खनिज पदार्थ के कण) लगे हुये मिलते हैं। ताँबे की खनिज पृथ्वीतल पर वायु तथा जल के प्रभाव से प्रायः कारबोनेट या सल्फेट के रूप में परिवर्तित हो जाती है। हरे कारबोनेट को मेलेकाइट (malachite) और नीले को एज़ूराइट (Azurite) कहते हैं। ताँबे का सल्फेट नीला थोथा है। खनिज शास्त्र में ऐसे चिह्न नीचे के ताँबे की ठोस खनिजों के द्योतक माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस पहाड़ी पर अनेक गड्ढे खुदे हुये हैं और अम्बाजी नगर के आस पास प्राचीन भट्टियों में से फेंके हुये धातु-मेल के ढेर मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि प्राचीन समय में शायद एक हज़ार वर्ष पूर्व यहाँ पर ताँबे का एक बड़ा कारखाना रहा होगा। सम्भव है ताँबे के साथ सीसा भी निकाला जाता हो क्योंकि इस स्थान के पास सीसा की खनिज भी मिली है।

भारतवर्ष में तांबे की उत्पत्ति—उपरोक्त वृत्तान्त के अनुसार यद्यपि थोड़ा थोड़ा ताँबा अनेक स्थानों पर मिलता है तथापि आधुनिक युग में उसको निकाल कर विदेशी ताँबे से मुकाबिला करना असम्भव हो गया है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग १ करोड़ ६८ लाख रूपये का ताँबा तथा २ करोड़ ६६ लाख की पीतल विदेशों से आती है। भारत का अधिकतर ताँबा बिहार उड़ीसा प्रान्त के सिंघभूमि ज़िले की खानों तथा बाडविन की सीसा-चाँदी की खानों से उत्पन्न होता है। मद्रास के नेलोर ज़िले में तथा मैसूर राज्य में भी कुछ ताँबा निकाला गया है। हिमालय के दक्षिणी भाग के सिकिम, भूटान तथा नैपाल और दार्जिलिंग स्थानों में तांबे की खनिज मिलती तो बहुत है परन्तु अभी तक तांबा निकालने में सफलता नहीं मिली है। सन् १९३४ ई० में सिंघभूमि ज़िले की खानों से ३२८६७६ टन खनिज निकाली गई थी, जिसका मूल्य ३४१६८६६ रुपये हुए। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा की बाडविन की खानों में करीब २२ लाख रुपये के ताँबे का मेट (matte) चाँदी सीसा की खनिज में से निकला। सन् १९३२ ई० में लगभग ७ हज़ार रुपये की खनिज मद्रास के नेलोर ज़िले से भी निकाली गई।

बिहार-उड़ीसा प्रान्त का तांबे का क्षेत्र—इस प्रान्त में ताँबे की खनिज सिंघभूमि और मानभूमि ज़िलों में मिलती है। मुख्य क्षेत्र सिंघभूमि ज़िले में लगभग ८० मील तक केरा, खरसावाँ, सेरीकोल इत्यादि रियासतों में होकर पश्चिम से पूर्व अर्थात् दक्षिण पूर्व दिशा में चला गया है। यहाँ की मुख्य खनिज सोनामाखी ही है परन्तु उसके साथ ताँबे, लोहे और निकिल के गंधक दार सम्मेलन भी मिलते हैं। यहाँ की खनिज परिवर्तित शिलाओं की तहों में अनियमित रूप से मिलती है। कहीं कहीं पर निकाले जाने योग्य

मात्रा में मिलती है। परन्तु अधिकतः खनिज के कण शिला में इस प्रकार बिखरे हुये पाये जाते हैं कि उनको निकालना निरर्थक होता है। जहाँ पर ताँबे की खनिजें निविष्ट होगई हैं (उदाहरणार्थ माटीगारा और मोसाबानी नामक खानों में) वहाँ पर वे खानें स्थापित करके निकाली जा रही हैं। इस सारे क्षेत्र में प्राचीन खदानों के चिन्ह मिलते हैं। इन खदानों में कुछ २००० वर्ष पूर्व की बताई जाती हैं। अंग्रेज़ों को इस क्षेत्र का पता पहले पहल १८३३ ई० में लगा। गत ५० वर्षों में इस क्षेत्र में अनेक योरोपियन कम्पनियों ने ताँबे का कार्य आरम्भ किया। परन्तु वे सब विफल रहीं। कारण, या तो उनको कहीं पर ताँबे का अच्छा जमाव न मिला अथवा अच्छा जमाव पाने के पूर्व ही कुछ कम्पनियों ने लाखों रुपये की पूंजी केवल मशीनों और कारखाने बनाने में व्यय कर दी। इसका फल यह हुआ कि कुछ समय के लिये कम्पनियों ने सिंघभूमि की खानों का ठेका ही लेना छोड़ दिया। तब सन् १९०६ से ९६०८ तक भारतीय ज्यालोजीकल सर्वे विभाग ने यहाँ के जमाव की उत्तमता प्रमाणित करने के लिये इस क्षेत्र में कई स्थानों पर बोरिङ्ग (boring) कराया जिससे केप-कौपर नामक कम्पनी का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उसने माटीगारा नामक स्थान का ठेका लिया। इस कम्पनी की मुख्य खान "राखा" नाम की प्रसिद्ध थी। इस स्थान की ताँबे की खनिज साधारण श्रेणी की है और बिल्लोर के पत्थर के साथ मिली हुई पाई जाती है। खान में सन् १९१८ से सन् १९३३ तक कार्य खूब हुआ परन्तु अब प्रायः बन्द सा है।



मोसाबनी की खान का एक दृश्य।

ताँबे के इस क्षेत्र में अधिक लाभदायक और प्रसिद्ध खान "मोसाबानी" है। जहाँ पर इण्डियन कौपर कार्पोरेशन नाम की एक लिमिटेड कम्पनी कार्य कर रही है। इस कम्पनी की मुख्य खानें और कारखाना घाटसिला नामक स्थान के पास हैं। यह स्थान खड़गपुर से चक्रधरपुर जाने वाली बी० एन० लाइन पर है। सिंघभूमि ताँबे का मुख्य क्षेत्र इसी लाइन के आस पास चला गया है। मोसाबानी की खान में लगभग ६५० फुट की गहराई पर कार्य हो रहा है। लाखों रुपये लगाने के बाद इस कम्पनी को अब सफलता

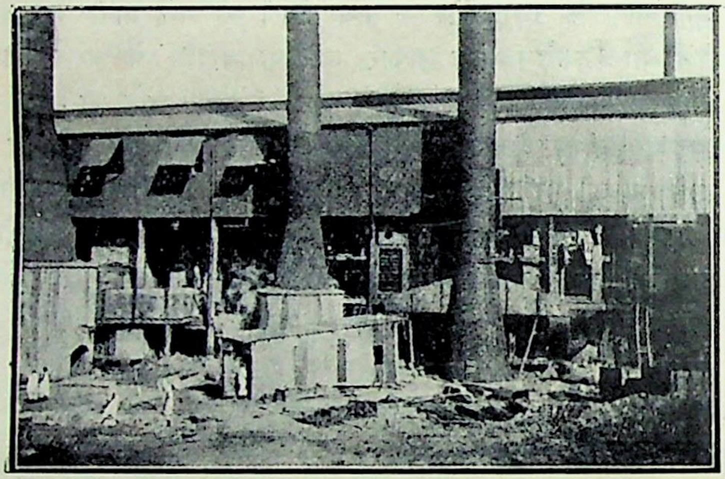
प्राप्त हुई है। घाटसिला के समीप ही कम्पनी ने मौभण्डार नामक स्थान पर एक विशाल कारखाना तांबे की खनिजों को शोधने के लिये तथा तांबा तय्यार करने के लिये स्थापित किया है। भारत में तांबे की खनिज से तांबा निकालने का यह ही मुख्य कारखाना है। सन् १६३४ में यहाँ पर ६३०० टन ताँबा निकाला गया । आज कल इस ताँबे का अधिकांश पीतल बनाने में खप जाता है। सन् १६३४ ई० में इस कारखाने में क़रीब हज़ार टन पीतल बनाई गई जो इसी देश में ५८४) रु० प्रति टन के हिसाब से बिकी, भारत में पीतल बनाने का यह कारखाना देखने योग्य है। मोसाबानी खान में ताँबे की खनिज का कुल परिमाण सन् १९३४ में ६३२१४३ टन (छोटे) था जिसमें ३·०६ प्रतिशत ताँबे का अंश है।

(६) एल्यूमीनम

एल्यूमीनम धातु की मुख्य खनिज 'बाक्साइट' (Bauxite) है जो धातु की उज्जमय भस्म (Hydrated oxide) है। बाक्साइट मिट्टी के रंग की होती है और प्रायः लाल या पीले लोहे के उज्जमय गेरू के साथ मिली हुई पाई जाती है। बाक्साइट और गेरू के गोल गोल टुकड़े जिनका आकार मटर या बादाम के बराबर होता है। परस्पर सटे हुए बाक्साइट खनिज के पत्थर में दिखाई देते हैं। लोहे का अंश कम होने पर ही बाक्साइट एल्यूमीनम निकालने के उपयुक्त होती है वरना गेरू का अंश बहुत अधिक होने पर उस पत्थर को "लैटेराइट" (Laterite) के नाम से पुकारते हैं जिसको सडकों के मोरम के काम में अन्य पत्थर और कंकड़ के स्थान पर प्रयोग करते हैं। लैटेराइट भारत में मुख्यत: मध्य प्रान्त और मध्य भारत में बहुत मिलता है । यह पत्थर भारत के जैसे जलवायु वाले देशों में ही पाया जाता है और प्रायः काले 'बेसाल्ट' नामक आग्नेय ज्वालामुखी ठोस पत्थर (तथा अन्य प्रकार के एल्यूमीनम के अवयवों वाले पत्थर) के जल और वायु के परिवर्तन से बनता है। वर्षा काल में जो जल ऐसे पत्थरों की पहाड़ियों (विशेषतः समतल चोटी वाली और ढलवां) पर गिरता है वह पत्थरों में से एल्यूमीनम और लोहे के अवयवों को गोल कर नीचे ले जाता है । और किसी उपयुक्त स्थान पर उनको पृथक पृथक अवक्षेपन (Precipitation) कर देता है। मध्य प्रान्त और मध्य भारत में गांवों के लोग प्रायः लेटेराइट से मकान बनाते हैं। इसका कारण यह है कि यह पत्थर खोदते समय तो मुलायम होता है परन्तु पृथ्वी तल पर आकर वायु से सूखकर कड़ा हो जाता है इस से मकान की दीवार स्वयं पुख़्ता हो जाती है। सीमेन्ट या गारे की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है।

अन्य धातुओं से एल्यूमीनम धातु कहीं नई है। सन् १६०५ ई० में ही यह प्रमाणित हुआ कि भारतवर्ष के लैटेराइट के पत्थर के साथ उत्तम श्रेणी की बाक्साइट भी अधिक मात्रा में मिलती है जो एल्यूमीनम धातु निकालने के लिए अति उत्तम है। इसके लिये बिजली द्वारा भारी तप्त की जाने वाली भट्टियों की आवश्यकता होती है। दुर्भाग्यवश अभी हमारे देश में बिजली इतनी सस्ती नहीं है जिससे ऐसे ऐसे कारख़ाने स्थापित हो सकें। परन्तु इस देश में बाक्साइट से एल्यूमीनम निकालने का प्रयत्न अब

हो रहा है। एल्यूमीनम निकालने के अतिरिक्त बाक्साइट के और भी कई प्रयोग हैं। इस खनिज से फिटकरी तथा एल्यूमीनम के अन्य लवण बनाये जा सकते हैं। बाक्साइट की ईंटें बनायी जाती हैं जिनका उपयोग धातु शोधने की भट्टियों में किया जाता है। ऐसी भट्टियों में साधारण मिट्टी की ईंटें पिघल जाती हैं। परन्तु बाक्साइट की ईंटें नहीं पिघलतीं। इसके अतिरिक्त यह खनिज उत्तम सीमेन्ट तय्यार करने में तथा पत्थरों को घिसने, काटने और उन पर पालिश करने वाले पदार्थों के बनाने में भी काम आती है। मिट्टी के तेल इत्यादि द्रव्य पदार्थों को स्वच्छ करने और उनको रंगहीन करने में भी बाक्साइट की आवश्यकता होती है। संसार में बाक्साइट की उत्पत्ति लगभग १५ लाख टन प्रति वर्ष है। इस उपज का ७० प्रतिशत अंश एल्यूमीनम निकालने में, १५ प्रतिशत रसायन द्रव्य बनाने में, ८ प्रतिशत पत्थर काटने और घिसने के पदार्थों के लिये तथा ७ प्रतिशत अंश भट्टियों की ईंटें और मिट्टी के तेल को साफ करने के काम आता है।



तांबे के कारखाने का भीतरी दृश्य।

भारत में एल्यूमीनम की उपज—इस समय संसार की एल्यूमीनम धातु का व्यवसाय प्रायः फ्रांस, संयुक्त राज्य (अमरीका) हङ्गारी, गाइना, चेकोस्लोवेकिया तथा इटली देशों के ही हाथ में है। संसार की कुल बाक्साइट की उपज का आधा भाग केवल फ्रांस और संयुक्त राज्य (अमरीका) से ही आता है। भारतवर्ष में यद्यपि बाक्साइट का जमाव इन उपरोक्त देशों में से किसी भी देश से कम नहीं है तथापि इन देशों के मुकाबिले में यहाँ की पैदावार आज कल कुछ भी नहीं है। इस देश में जितनी बाक्साइट निकाली जाती है उसको वैसे ही बाहर भेजने का भी प्रयत्न किया गया परन्तु अधिक सफलता न हुई। कारण कि आज कल जो अन्य देशों में एल्यूमीनम बनाने के कारखाने हैं वे संसार की आज कल की मांग से कहीं अधिक एल्यूमीनम बनाने के लिये पर्याप्त हैं और उनके पास आवश्यकता से अधिक बाक्साइट उपरोक्त देशों से

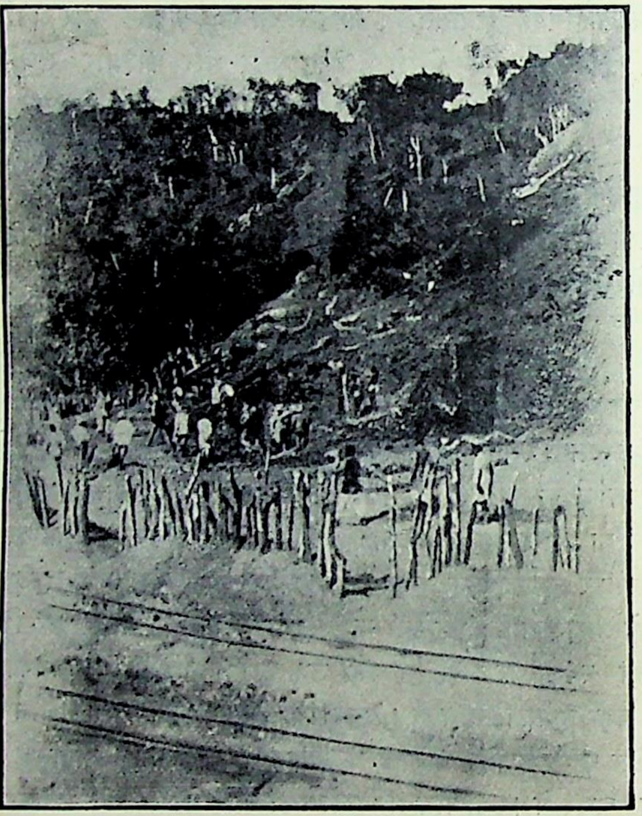
आ रहा है। एल्यूमीनम धातु निकालने के लिये कारख़ाना स्थापित करने के लिये बहुत पूँजी की आवश्यकता होती है और उस स्थान पर सस्ती बिजली का प्राप्त होना आवश्यक है। उपर्युक्त सुविधाएँ अभी तक न होने के कारण भारत में एल्यूमीनम की खनिज बहुत कम निकाली गई है वह भी कच्ची ही दशा में बाहर भेज दी गई है। मद्रास प्रान्त तथा कोल्हापुर राज्य में एल्यूमीनम बनाने के कारखाने स्थापित हो रहे हैं।

भारतवर्ष में अव्वल नम्बर की बाक्साइट मध्य प्रान्त के बालाघाट जिले के बेहर पहाड़ को तथा जबलपुर जिले के कटनी स्थान की है। मध्यप्रान्त के सिउनी, मण्डला ज़िलों और सरगुजा तथा जाशपुर रियासतों में, बिहार उड़ीसा प्रान्त के छोटा नागपुर डिवीज़न और कालाहाण्डी रियासत में, मध्य भारत की भूपाल और रीवाँ रियासतों में, बम्बई के सितारा, खेड़ा और अन्य ज़िलों में तथा मैसूर और काश्मीर राज्यों में उत्तम प्रकार की बाक्साइट पाई जाती है। लेखक को मध्य भारत की सोहावल रियासत में भी अच्छी बाक्साइट मिली है। आजकल कटनी (जबलपुर) तथा कपदवंज (खेड़ा गुजरात) नामक स्थानों में बाक्साइट अधिक निकाली जाती है। इनमें से पहले स्थान की खनिज एल्यूमीनम का रसायन द्रव्य (सल्फेट) बनाने तथा दूसरे स्थान की खनिज मिट्टी के तेल को स्वच्छ करने में प्रयोग की गई है।

(७) लोहा

लोहे का व्यवसाय भारतवर्ष में अति प्राचीनकाल में भी होता था। पत्थरों का लाल या पीला रंग प्रायः लोहे की किसी खनिज के अवयवों के कारण होता है। इस रंग के लिये यह आवश्यक नहीं है कि पत्थरों में लोहा अधिक मात्रा में ही हो। प्राचीन समय में ऐसे लाल या पीले रंग के किसी भी पत्थर में से स्थानीय लोहार सरलता पूर्वक छोटी सी भट्टी बनाकर लोहा निकाल लेते थे। इस प्रकार प्रत्येक स्थान की लोहे की आवश्यकता इन छोटे-छोटे कारखानों द्वारा पूरी की जाती थी। यही कारण है कि भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक पहाड़ी स्थान पर कहीं न कहीं उन पुरानी भट्ठियों में से निकाला हुआ धातु-मैल (Slag) पड़ा हुआ मिलता है। आधुनिक विज्ञानवेत्ता उन प्राचीन कारीगरों के विषय में व्यंग सहित कहते हैं कि वे लोहे के विज्ञान को कुछ नहीं जानते थे, केवल हाथ के कार्य में वे चतुर थे। प्राचीन हिन्दुओं की लोहे की कारीगरी का एक प्रसिद्ध नमूना देहली की कुतुबमीनार का लोहे का लट्ठा है। इस बीसवीं शताब्दी में संसार में लोहे के बहुत थोड़े कारखाने ऐसे हैं जो इतना बड़ा लट्ठा तय्यार कर सकें। यह लट्ठा पृथ्वीतल से २२ फीट ऊँचा है और करीब १ फीट ८ इंच पृथ्वी के अन्दर है। पृथ्वीतल के नीचे इसका आकार गेंद के समान हो जाता है जिसका व्यास २ फीट ४ इंच है। लट्ठे का व्यास १६.४ इंच है और यह वज़न में करीब ६ टन के है। इस लट्ठे की आयु के विषय में यह प्रमाणित हुआ है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में अर्थात् सन् ४१५ ई० में यह लट्ठा बनाया गया था। इस प्रकार इसको बने १५०० वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो गया और तब ही से यह जलवायु का कोप सहन करता आरहा है। इस पर भी इस लोहे पर मोरचा बिल्कुल नहीं लगा है। योरुप तथा अमरीका के धातु-विद्या के अनेक

विशेषज्ञ इस लट्ठ से छोटे छोटे टुकड़े काटकर ले गये हैं। और उन्होंने अपनी प्रयोग-शालाओं में उस लोहे का पूरा पूरा विश्लेषण कर लिया है परन्तु फिर भी संसार का कोई भी देश ऐसा उत्तम (मोरचा न लगने वाला) लोहा बनाने में सफल नहीं हुआ है। देहली के लट्ठ पर मोरचा क्यों नहीं लगता इसका कारण भी ठीक ठीक अभी समझ में नहीं आया। वैज्ञानिकों का यह मत है कि कदाचित् यह लट्ठा लोहे के छोटे छोटे टुकड़ों को ढाल कर और वहीं पर जोड़ कर बनाया गया होगा। उदाहरणतः जब दो गज़ लट्ठा बन गया होगा तो फिर दूसरी भट्टी पृथ्वीतल से दो गज़ ऊँची बनाई गई होगी और वहीं



गोआ की लोहे की खान—ऊपर से १५०० फीट नीचे खनिज लाने के लिये बीच में ४५° के ढाल पर सड़क बनी है।
(प्रो० एस० के० राय की कृपा से)

पहले लट्ठ के टुकड़े में दूसरा टुकड़ा ढाल कर जोड़ा गया होगा। परन्तु आश्चर्य है कि लट्ठ में कहीं पर एक भी ऐसा जोड़ साधारणतः दृष्टिगोचर नहीं होता। एक समय था जब भारत की 'वुट्ज़' नामक फौलाद की विदेशों में बहुत ख्याति थी। इस धातु को भारत-वासी छोटी छोटी घड़ियों (Crucibles) में बनाया करते थे। कहा जाता है कि २००० वर्ष पूर्व यह फौलाद भारत से पश्चिमीय देशों में भेजी जाती थी। डेमसकस की

तलवारें योरुप भर में प्रसिद्ध थीं। इन तलवारों के लिये फौलाद भारत से ही जाता था और इसके हेतु उस समय फारस देश के व्यवसायी अनेक आर्थिक और शारीरिक संकट झेल कर स्वयं भारत को आते थे। अस्तु।

लोहे की मुख्य खनिज ठोस काले या लाल गेरू का पत्थर, "हैमेटाइट" (Hematite) है। इसका पाउडर सदा लाल रंग का होता है। दूसरी खनिज काला चुम्बक पत्थर, मैग्नेटाइट (Magnetite) है। साधारण गेरू में मिट्टी का अंश अधिक मिला हुआ होता है। मैग्नेटाइट के कुछ ही नमूने स्वाभाविक चुम्बक होते हैं। परन्तु इस खनिज के सब ही नमूने लोहे के समान किसी कृत्रिम चुम्बक के स्पर्श से चुम्बकमय अवश्य हो जाते हैं। लोहे की ये दोनों खनिज लोहे और आक्सीजन तत्वों के सम्मेलन हैं। गेरू का पत्थर जलज शिलाओं के साथ अथवा परिवर्तित शिलाओं की तह में पाया जाता है और चुम्बक पत्थर का जमाव लोहमय आग्नेय शिलाओं के किनारे पाया जाता है अथवा ऐसी शिलाओं से नदी द्वारा पृथक होकर नदी पात्र में काले बालू के रूप में मिलता है। इस बालू में चुम्बक पत्थर के कणों के अतिरिक्त अन्य भारी खनिजों के कण भी पाये जाते हैं। लोहा इन दोनों खनिजों से भट्टियों में गलाकर ही निकाला जाता है। इन भट्टियों में लोहे की खनिज को चूने के पत्थर और कोक (Cok अधजला कोयला) के साथ मिलाकर ऊपर से उस समय डाला जाता है जब कि भट्टी अग्नि से तप्त हुई हों। चूने का पत्थर लोहे की खनिज में से बालू तथा अन्य मैल को अपने चूने के अवयव से उसका सम्मेलन कराके पृथक कर देने में सहायक होता है और कोक लोहे की खनिज में से आक्सीजन तत्व को खींच लेता है जिसके सम्मेलन से वह स्वयं जल जाता है। इसके जलने से और गरम गैसें बनती हैं जो फिर उन्हीं भट्टियों को गरम करने में काम आती हैं। इस प्रकार लोह धातु पृथक् रह जाती है।

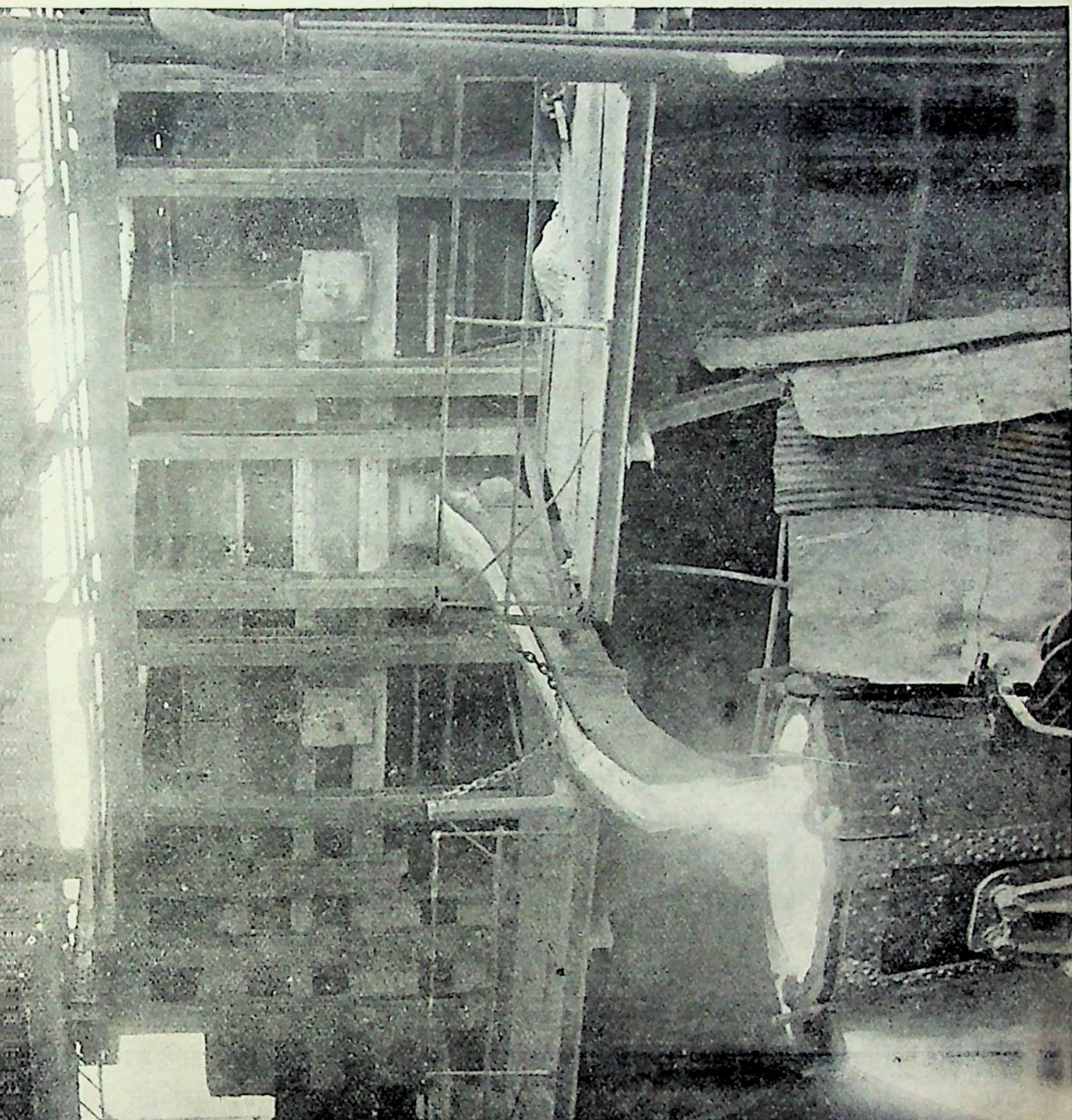
भारतवर्ष में लोहे की उपज—लोहा उन धातुओं में से है जिनकी आवश्यकता प्रत्येक देश को हर समय रहती है। आधुनिक युग में हम किसी देश की सभ्यता का अनुमान उसके लोहे के व्यय से भी कर सकते हैं। बृटिश राज्य में लोहे की उपज में भारत का नम्बर दूसरा है। सन् १९३४ ई० में भारत में लगभग ३० लाख रुपये की लोहे की खनिज निकाली गई और उसी वर्ष लगभग ८८ लाख रुपये का लोहा भारत से बाहर भी गया परन्तु फिर भी भारत में प्रतिवर्ष लगभग ३० करोड़ रुपये की लोहे और फौलाद की वस्तुएँ विदेशों से मँगाई जाती हैं। बिहार के सिंघभूमि ज़िले में तथा उड़ीसा की क्योंन्झर, बोनाई और मयूरभञ्ज रियासतों में लोहे की खनिज का एक विशाल जमाव है जो कलकत्ते से २०० मील की दूरी पर है। भूगर्भवेत्ताओं का निर्णय है कि इस क्षेत्र के लोहे की खनिजों के जमाव की संसार के प्रथम श्रेणी के केन्द्रों में गणना की जायगी। इन उपरोक्त स्थानों के अतिरिक्त मध्य प्रान्त के चांदा और द्रुग ज़िलों में तथा मैसूर और ब्रह्मदेश में लोहा अधिक मिलता है और निकाला भी जाता है। मध्यप्रान्त में सन् १९३४ ई० में १२० छोटी छोटी देशी भट्टियाँ थीं जिनसे कुछ लोहा निकाला गया। सन् १९३४ ई० में भारत में लोहे की खनिज की उपज का ब्यौरा इस प्रकार थाः—

स्थान	खनिज का परिमाण (टनों में)	खनिज का मूल्य (रुपयों में)
विहार उड़ीसा प्रान्त		
क्योन्भर	२९७४६१ टन	३६७४६१ रुपये
मयूरभञ्ज	६४५१०८ "	९९८५१७ "
सिंघभूमि	८१०५४७ "	१३३२३८१ "
उत्तरी शान राज्य (ब्रह्मदेश)	२३९३० "	६५७२० "
मध्यप्रान्त	८९८ "	२६६४ "
मैसूर	३८६७४ "	१४५०२६ "
कुल उपज	१६१६६१८	२६७१७६६

बिहार और उड़ीसा प्रान्तों की लोहे की खनिजों का क्षेत्र—इन प्रान्तों में लोहे की मुख्य खनिज गेरू का पत्थर है जो परिवर्तित शिलाओं में अनियमित तहों के रूप में पाया जाता है। इस प्रान्त में सब से अच्छी खनिज सिंघभूमि ज़िले की कोल्हान, क्योंझर, बोनाई तथा मयूरभञ्ज रियासतों में हैं। यह जमाव लोहे की अति उत्तम खनिज के लिये प्रसिद्ध है। लोहे की कच्ची धातु—गेरू का पत्थर—यहाँ पर पर्वत समूह के ऊपर ऊपर मिलता है। मुख्य पर्वत-समूह तीस मील तक चला गया है और इसकी पहाड़ियों की औसत ऊँचाई मैदान से १५०० फीट है। इस समूह के दोनों ओर भी छोटी छोटी कई पहाड़ियाँ हैं जिनमें गेरू का पत्थर मिलता है। खनिज शास्त्रज्ञों का यह अनुमान है कि विहार उड़ीसा के उपरोक्त स्थानों के लोहे की खनिज का परिमाण २८३ करोड़ टन से अधिक है जिसमें से कम से कम ६० प्रतिशत टन के हिसाब से लोह-धातु प्राप्त होगी।

भारत के लोहे के कारखाने—इस समय भारतवर्ष का अधिकतः लोहा केवल निम्नलिखित चार बड़ी बड़ी कम्पनियों द्वारा निकाला जाता है।

(१) बंगाल लोहे की कम्पनी, कुल्टी (बराकर) ई० आई० आर० :—लोहे के व्यवसाय में यह कम्पनी अधिक पुरानी है। आरम्भ में इसको आशा-जनक सफलता न मिली परन्तु जब सन् १८८६ ई० में इसका प्रवन्ध मारटन कम्पनी ने स्वयं अपने हाथ में लिया तब इसके कार्य की उन्नत्ति हुई। सन् १९३२ ई० में इसका प्रवन्ध कम्पनी ने फिर अपने हाथ में ले लिया। कुल्टी के पास कोयला तो अधिक मिलता ही है इसके अतिरिक्त थोड़ी सी लोहे की खनिज भी इस स्थान के पास ही बराकर नदी के किनारे मिलती है।



भट्ठी में से लोहा पिघल कर निकल रहा है।

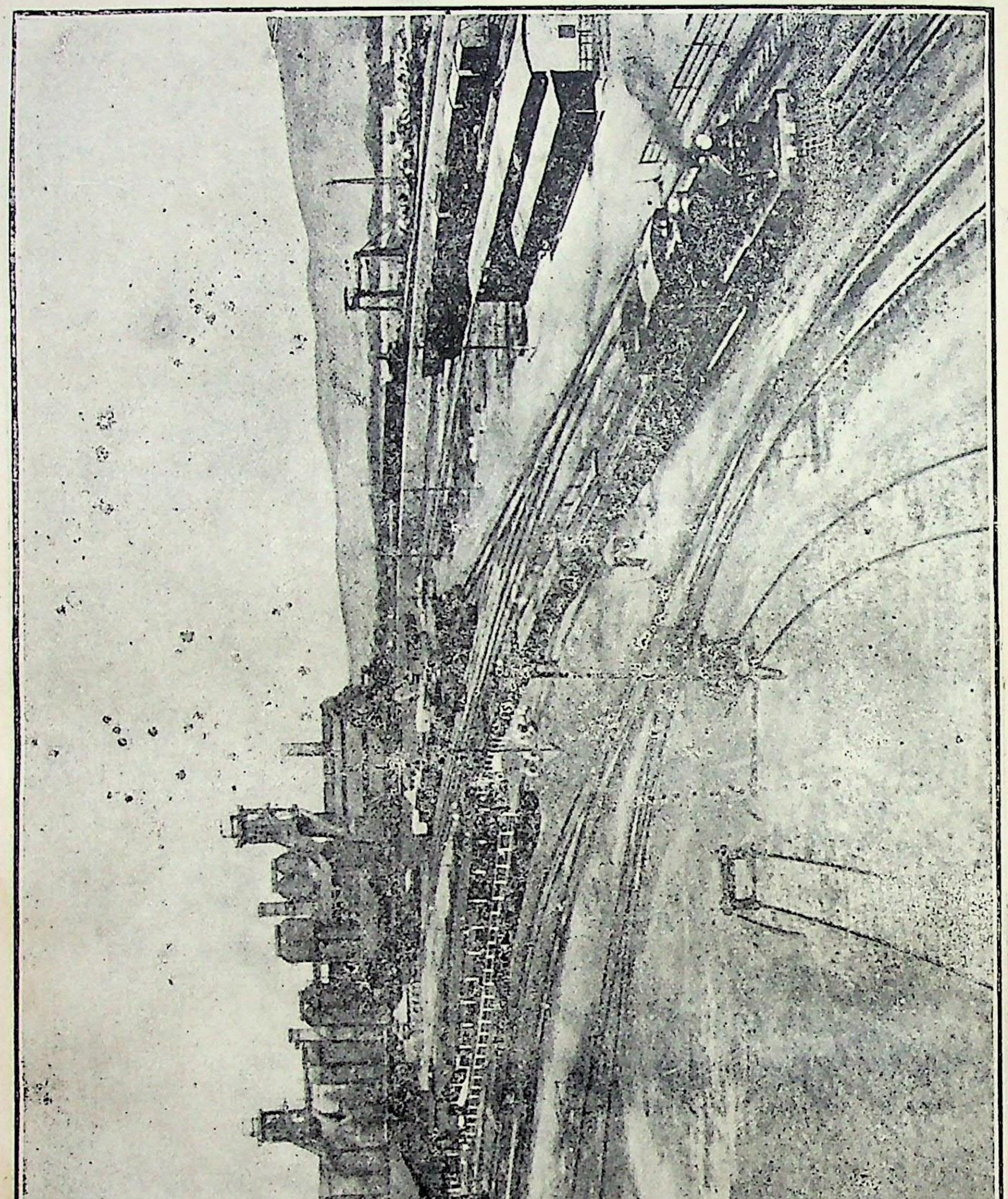
यह खनिज प्रायः मिट्टी के 'शेल' नामक जलज पत्थर में पीले गेरू के गोल तथा अण्डाकार पिण्डीकरण (Concretion) के रूप में मिलती है। इन्हीं दोनों कारणों से यह स्थान लोहे के कारखाने के लिये उपयुक्त समझा गया था परन्तु अब सिंघभूमि की कोल्हान रियासत में इस कम्पनी को पुरानी खनिज से कहीं अधिक अच्छी लोहे की खनिज मिल गई है इससे वहीं की खनिज अब प्रयोग में लाई जाती है। कोल्हान रियासत में पन्सिराबूरु और बूडाबूरु नामक दो मुख्य खानें इस कम्पनी की हैं जो बी० एन० आर० के मनोहरपुर स्टेशन से क्रमशः १२ और ८ मील की दूरी पर हैं। पन्सिराबूरु में एक करोड़ और बूडाबूरु में १५ करोड़ टन लोहे की खनिज का अनुमान किया जाता है। जिसमें करीब ६४ प्रतिशत लोहा है। सन् १९३४ ई० में इस कम्पनी ने करीब ४४ लाख टन लोहे से कुर्सी, रेल के स्लीपर तथा पाइप इत्यादि बनाए। उस समय कुल्टी के कारखाने में क़रीब तीन हज़ार मनुष्य प्रतिदिन कार्य करते थे। इस कम्पनी के पास ९ भट्टियाँ हैं जिनसे ५०० टन लोहा प्रतिदिन निकल सकता है परन्तु आजकल केवल एक या दो भट्टियाँ काम में आ रही हैं।

(२) भारतीय लोहे और फौलाद की कम्पनी आसन्सोल :—बर्न एण्ड कम्पनी की एजेन्सी में यह लिमिटेड कम्पनी सन् १९१८ में ३ करोड़ की पूँजी से आरंभ हुई थी। कम्पनी के पास कोयले, चूने के पत्थर तथा लोहे की खनिज की निजी खानें हैं। इस कम्पनी की गेरू पत्थर की मुख्य खानें सिंघभूमि की कोल्हान रियासत में गोआ नामक स्थान पर हैं। यहाँ की खानों से ६० हजार टन प्रतिमास खनिज निकलती है। सन् १९३४ ई० में इस कम्पनी ने ४२०१७१ टन लोहा उत्पन्न किया। इस कम्पनी के पास ५०० टन की दो भट्टियाँ हैं जिसमें लोहे की खनिज को शोधा जाता है। अपनी खनिज के उपयोग के अतिरिक्त बर्ड एण्ड कम्पनी से भी यह कम्पनी कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर कुछ खनिज मोल ले लेती है।

(३) टाटा लोहे और फौलाद की कम्पनी टाटानगर (जमशेदपुर) :—इस प्रसिद्ध भारतीय कम्पनी की लोहे की खनिज की खानें मध्यप्रान्त के द्रुग ज़िले में, सिंघभूमि की कोल्हान रियासत में तथा क्योन्झर और मयूरभञ्ज राज्य में वर्तमान हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक इस कम्पनी की कुल आवश्यक खनिज केवल मयूरभञ्ज रियासत से ही निकाली जाती थी। यहाँ पर भी लोहे की मुख्य खनिज गेरू का पत्थर ही है जिसकी तहें मिट्टी तथा बालू के कुछ परिवर्तित जलज पत्थरों की तहों के साथ मिलती हैं। मयूरभञ्ज में खनिज के लिये मुख्य पहाड़ तीन प्रसिद्ध हैं—गुरुमहिसानी, सुलेपात और बादम पहाड़ गुरुमहिसानी की खनिज का अनुमान ६० लाख टन किया जाता है। जिसमें ६४ प्रतिशत टन लोहे का अंश है। सुलेपात की पहाड़ी में २० लाख टन और बादम पहाड़ में ६० लाख टन खनिज का अनुमान लगाया गया है। आजकल इस कम्पनी ने कोल्हान रियासत की अपनी खानों से भी खनिज निकालना आरम्भ कर दिया है। कारण कि यहाँ की खनिज मयूरभञ्ज की खनिज से कुछ नरम है और अधिक मोटी तहों में मिलती है। इस रियासत में टाटा की मुख्य खान नोआमण्डी के नाम से प्रसिद्ध है। भारतवर्ष में फौलाद बनाने के लिए केवल टाटानगर का ही कारखाना है। इस कारखाने में ५ भट्टियाँ हैं जिनसे



गोत्र्या की लोहे की खान का दूसरा दृश्य (प्रो० राय की कृपा से प्राप्त)



टाटा कम्पनी की लोहे की खनिज को शोधने वाली भट्टियां—(कम्पनी के मैनेजर की कृपा से)

क़रीब तीन हज़ार टन तक लोहा प्रतिदिन निकलता है। सन् १६३४ ई० में इस कारखाने में ८,८२,०५४ टन लोहा, ५,६६,६८१ टन फौलाद और रेल की पटरियाँ तथा ५५३६ टन "फैरो मैङ्गनीज़" नामक सख़्त फौलाद उत्पन्न हुई थी। टाटानगर का यह देशीय कारखाना देखने योग्य है।

(४) मैसूर राज्य का लोहे का कारखाना—भद्रावती :—सन १६१८ ई० में मैसूर राज्य ने शिमोगा नगर से ११ मील भद्रावती नामक स्थान पर लोहे का कारखाना स्थापित करने की एक योजना बनाई। परन्तु वह कारखाना सन् १६२३ में पूरा बन कर तैयार हुआ और उसी वर्ष प्रथम बार वहाँ लोहा निकाला गया। मैसूर राज्य में अनेक स्थानों में लोहे की खनिज मिलती है परन्तु इस कारखाने की मुख्य खानें कडूर ज़िले के बाबाबूदन पहाड़ पर हैं। यहाँ की खनिज भी गेरू का पत्थर ही है, यद्यपि अन्य स्थानों पर चुम्बक पत्थर भी बहुत मिलता है। इस कारखाने का सारा प्रबन्ध भारतीयों—मुख्यतः मैसूरवासियों—के ही हाथ में है। इस कारखाने के लिये केवल कोयले की एक अड़चन है क्योंकि मैसूर में कोयला नहीं मिलता और अन्य प्रान्तों की कोयले की खानें यहाँ से बहुत दूर पड़ती हैं। यह भारत में लोहे का प्रथम बड़ा कारखाना है जहाँ पत्थर के कोयले के स्थान पर लकड़ी का कोयला (Charcoal) प्रयोग किया जाता है। लकड़ी की कमी को पूरा करने के लिये मैसूर राज्य की ओर से प्रतिवर्ष एक नया जङ्गल रोपा जाता है। इस प्रकार कुछ वर्ष बीतने पर जितनी लकड़ी एक वर्ष में व्यय हुआ करेगी उतनी ही लकड़ी का जंगल नया बड़ा होकर तैयार हो जाया करेगा। इस प्रकार लकड़ी की कमी कभी प्रतीत न होगी। इस कारखाने के पास अभी केवल एक ही भट्ठी है जिससे करीब ८० टन लोहा प्रतिदिन निकल सकता है। सन् १६३४ ई० में इस कारखाने में १७८८५ टन लोहा तैयार हुआ था।

---

(८) मैङ्गनीज़

मैङ्गनीज़ धातु को आधुनिक काल की एक धातु कह सकते हैं। इस धातु का मुख्य प्रयोग विशेष सख्त और कड़ी फौलाद बनाने में होता है। इस के लिये लोहे और मैङ्गनीज़ का धातु मेल किया जाता है जिस को "फेरो-मैङ्गनीज़" कहते हैं। पोटेशियम परमेङ्गनेट (रासायनिक पदार्थ जो कुएँ के जल को स्वच्छ करने के लिये प्रयोग किया जाता है) इसी धातु का एक लवण है। मैङ्गनीज़की पायरालूसाइट (Pyrolusite) नामक खनिज (धातु और आक्सीजन का सम्मेलन) कांच का रंग उड़ाने में, रोग़न और वार्निशों को सुखाने में, तथा बिजली की बैटरियों में और आक्सीजन, किलोरिन इत्यादि गैसों के बनाने में काम आती है। मैङ्गनीज़ धातु अक्सर काले रंग की प्राकृतिक भस्मों के रुप में पाई जाती है। इन खनिजों के भिन्न २ नाम हैं' परन्तु भारतवर्ष में मैङ्गनीज़ की मुख्य खनिज साइलोमेलन (Psilomelane) और ब्रोनाइट (Braunite) ही अधिक मिलती है। ये दोनों खनिज ठोस काले रंग की होती हैं परन्तु साइलोमेलन कुछ नरमऔर रवा हीन (Amorphous) होता है और ब्रोनाइट कड़ा और रवादार (Crystalline)

टाटा कम्पनी की लोहे की खनिज को शोधने वाली भट्टियां—(कम्पनी के मैनेजर की कृपा से)

इसके अतिरिक्त पाइरोलूसाइट और वैड नामक खनिज भी कहीं कहीं थोड़ी मात्रा में मिलती हैं। ये दोनों ही इतनी नरम होती हैं कि इन को छूने से ही ऊँगली पर स्याही लग जाती है। इन में पाइरोलूसाइट ठोस और रवादार होती है और वैड रवाहीन और काले काजल के समान।

मैङ्गनीज़ का व्यवसाय भारत में सन् १८९१ में आरम्भ हुआ। उस वर्ष मद्रास के विज़ीगापटम ज़िले में मैङ्गनीज़ की खनिज को निकालने के लिये एक कम्पनी बनी। सन् १८९९ ई० में मध्य प्रान्त के अनेक स्थानों में मैङ्गनीज़ की खनिजों के उत्तम जमावों का पता लगाना आरम्भ हुआ जिस के फलस्वरूप इस व्यवसाय में इतनी शीघ्रता से उन्नति हुई कि सन् १९०८ में भारत ने मैङ्गनीज की उपज में संसार में प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया। परन्तु अब मैङ्गनीज की उपज में रूस भारतवर्ष से बढ़ गया है। भारतवर्ष में मैङ्गनीज की खनिजों का जमाव निम्न लिखित स्थानों में निम्नलिखित प्रकार की शिलाओं में पाया जाता है :

(१) मैङ्गनीज़-दार प्राचीन आग्नेय शिलाओं में कहीं कहीं इस धातु की खनिज निविष्ट होगई है। इस प्रकार की खनिज मद्रास प्रान्त के गंजाम और विज़ीगापटम स्थानों में पाई जाती है।

(२) प्राचीन काल की परिवर्तित जलज शिलाओं की तहों में मैङ्गनीज़ की खनिजों का जमाव मिलता है। इन जलज शिलाओं में आरम्भ से ही मैङ्गनीज़ के कण वर्तमान थे, तत्पश्चात् ताप तथा दबाव से जब ये शिलाएँ परिवर्तित हुई तो मैङ्गनीज की खनिज किसी किसी स्थान में अधिक निविष्ट हो गई। इस प्रकार के जमाव मध्य-प्रान्त के बालाघाट भण्डारा, छिन्दवाड़ा, नागपुर और सिउनी जिलों में; मध्यभारत की झाबुआ रियासत में बिहार-उड़ीसा प्रान्त की गंगपुर रियासत में तथा बम्बई प्रान्त के नारुकोट, पंचमहल और छोटे उदयपुर इत्यादि स्थानों में मिलते हैं।

(३) उपरोक्त परिवर्तित शिलाओं के ऊपर और उन से उत्पन्न जो कहीं कहीं लेटराइट* नामक शिला मिलती है उस में कहीं कहीं मैङ्गनीज़ की खनिज पाई जाती है। ये खनिज मैसूर राज्य के चीतल द्रुग, कडूर, शिमोगा और टमकर ताल्लुकों में, मद्रास के संडूर तथा बेलारी. ज़िले में, मध्याप्रन्त के जब्बलपुर जिले तथा बिहार और उड़ीसा की क्योन्झर रियासत और सिंघभूमि जिले में पाई जाती है। इनके अतिरिक्त बम्बई के धारवाड़ और रत्नागिरी स्थानों में तथा गोआ में मैङ्गनीज़ की खनिज इसी प्रकार की है।

भारतवर्ष में मैङ्गनीज़ की उपज :—संसार में मैङ्गनीज़ की उपज में भारतवर्ष और रूस ही प्रथम देश हैं। गत महायुद्ध में भारतवर्ष से बाहर जाने वाली मैङ्गनीज़ की खनिज पर सरकार को बड़ी कड़ी दृष्टि रखनी पड़ती थी क्योंकि यह धातु सख्त फौलाद के तोप गोले इत्यादि बनाने के काम में आती है;। जर्मन देश युद्ध से पूर्व इस धातु के खनिज

---

* लेटेराइट शिला की परिभाषा एल्यूमीनम के वृतान्त में देखिये। लेखक

भारत से ही मँगाता था। युद्ध के समय यह आवश्यक था कि मैङ्गनीज़ जैसी धातु के खनिज शत्रु के देश में न पहुँचने पावें।

सन् १९३४ में भारतवर्ष में मैङ्गनीज़ की खनिज ४०६३०६ टन निकाली गई। उस वर्ष ३८०४१६ टन खनिज लगभग ७१ लाख रुपये मूल्य की विदशों को भेजी गई। सन् १९३४ में भारत में मैङ्गनीज़ की खनिजों का ब्यौरा इस प्रकार था :—

प्रान्त तथा स्थान	परिमाण टनों में	मूल्य रुपयों में
(१) **बिहार-उड़ीसा** (बोनाई, क्योंन्झर, सिंघभूमि)	७२३५२ टन	७९००३३
(२) **बम्बई** (बेलगांव, छोटा उदयपुर, उत्तरी कनारा, पंचमहल)	आङ्कड़े प्राप्त नहीं	....
(३) **मध्यप्रान्त** (बालाघाट, भण्डारा, छिन्दवाड़ा, नागपुर)	१८६०२५ टन	३३०६१६०"
(४) **मद्रास** (कर्नूल, संडूर, विजगापटम)	१४७५०१ टन	१०६११६७
(५) **मैसूर राज्य** (चीतलद्रुग, शिमोगा,	४२८	२१३२
कुल उपज	४०६३०६ टन	५१६२४६२ रुपये

भारत को मैङ्गनीज़ की खनिजों का प्रधान खरीदार देश ब्रिटेन, जापान और फ्रान्स हैं। सन् १९३४ में भारत से इन देशों को ३२२२७४ टन खनिज भेजी गई जिस का मूल्य ६० लाख रुपये के लगभग था। इस के अतिरिक्त बेलजियम, इटली, जर्मनी तथा अमरीका इत्यादि देशों को भी मैङ्गनीज़ की खनिज यहाँ से बहुत भेजी जाती है। भारत के लोहे और फौलाद के कारखानों में भी भारतीय खनिज की खपत बढ़ती जाती है और आशा की जाती है कि ज्यों ज्यों भारत में लोहे और फौलाद के व्यवसाय की उन्नति होगी त्यों त्यों यहाँ के मैङ्गनीज़ का व्यापार भी चमकेगा। हर्ष का विषय है कि इन दोनों ही धातुओं, लोहे और मैङ्गनीज़, की खनिजों के जमाव भारतवर्ष में बहुत अच्छे मौजूद हैं।

(९) क्रोमियम

क्रोमियम भी एक आधुनिक धातु है जो मैङ्गनीज़ के समान ही सख्त फौलाद बनाने के काम में आती है। क्रोमियम के अनेक रासायनिक सम्मेलन फोटोग्राफी, चमड़े और रंगों के व्यवसाय में इस्तेमाल होते हैं। क्रोमियम की मुख्य खनिज क्रोमाइट है जो लोहे

के चुम्बक पत्थर के समान काले रंग की होती है। क्रोमाइट लोहे और क्रोमियम की भस्मों का सम्मेलन है। इस खनिज के पाउडर का रंग मटियाला काला होता है। और लोहे के चुम्बक पत्थर के पाउडर का स्याह काला। यही साधारण अन्तर दोनों खनिजों में है। क्रोमाइट खनिज से धातु और क्रोमियम और लोहे का धातु-मेल—"फेरो-क्रोम बिजली की भट्टियों में शोध कर बनाया जाता है। क्रोमाइट की ईटें धातु शोधने की भट्टियों में अग्नि प्रतिरोधक होने के कारण काम आती है।

क्रोमाइट खनिज प्रायः लोहे और मैग्नेशियम वाली आग्नेय शिलाओं में पाई जाती है। ये शिलाएँ किसी कल्प में पृथ्वीतल से बहुत नीचे पिघले हुए पिण्ड के ठण्डे होने से बनी होंगी। इस समय वे शिलाएँ पृथ्वीतल पर दृष्टिगोचर होती हैं क्योंकि उनके ऊपर के पत्थरों का जमाव कालान्तर में वर्षा, जलवायु, तथा अन्य भौगर्भिक शक्तियों द्वारा धुल गया है।

भारतवर्ष में क्रोमाइट की उत्पत्ति:—भारत में क्रोमाइट वाले पत्थर बिलूचिस्तान बिहार-उड़ीसा और मैसूर राज्य में मिलते हैं। बिलूचिस्तान की ज़ोब और पिशिन नदियों की घाटियों में क्रोमाइट का पता सन् १९०१ में लगा। मैसूर में यह खनिज सन् १६०७ में पहले पहल निकाली गई। इस राज्य के हसन, मैसूर, कडूर और शिमोगा ज़िलों में ही क्रोमाइट अधिक मिलता है। बिहार-उड़ीसा प्रान्त के सिंघभूमि जिले में भी सन् १६०७ ई० में ही क्रोमाइट का पता लगा।

सन् १६३३ में भारतीय क्रोमाइट की उपज इस प्रकार थी :—

स्थान	परिमाण टनों में	मूल्य रुपयों में
ज़ोब घाटी (बिलोचिस्तान)	२३४६ टन	३५१९० रुपये
सिंघभूमि (बिहार-उड़ीसा)	७०१०,,	६२२३७,,
हसन तथा मैसूर (मैसूर राज्य)	१२२२०,,	१८२६३९,,
कुल उपज	२१५७६ टन	३१००६६ रुपये

(१०) टङ्गस्टन

मैङ्गनीज़ और क्रोमियम के समान टङ्गस्टन (Tungsten) धातु का भी आविष्कार नया ही है। यह धातु अथवा इसका और लोहे का धातु-मेल ("फेरो टङ्गस्टन")

भी विशेष प्रकार की फौलाद बनाने के काम में आते हैं। प्रायः सब तेज चलने वाले और काट-छाँट करने वाले यंत्र इसी फौलाद के बने हुये होते हैं। आजकल इस फौलाद की बनी हुई खराद करने की एक ही मशीन द्वारा एक मनुष्य साधारण फौलाद की मशीन के मुक़ाबिले पचगुना कार्य प्रति दिन अधिक कर सकता है। इस उपयोग के अतिरिक्त टङ्गस्टन धातु बिजली के लैम्प के तार बनाने में भी काम आती है। यदि किसी देश को इस धातु से अथवा इस से बने पदार्थों से वंचित कर दिया जाय तो वह देश शीघ्र ही अन्य सभ्य देशों से उद्योग में पिछड़ सकता है।

टङ्गस्टन की मुख्य खनिज "वुल्फ़रम" (Wolfram) है जो टङ्गस्टन लोहे और मैङ्गनीज़ की भस्मों का रसायनिक सम्मेलन है। इसी खनिज को बिजली की भट्ठी में शोध कर धातु निकाली जाती है। वुल्फ़रम का रंग काला होता है और यह एक ओर अधिक चमकदार होता है। इसका पाउडर भी मटियाले काले रंग का होता है। साधारण अन्य धातु की खनिजों से यह खनिज अधिक भारी होती है। वुल्फ़रम (प्रायः रांगा की खनिज सहित) विल्लोर पत्थर की धारियों में पाया जाता है। ये धारियाँ ग्रनाइट नामक आग्नेय शिला के पास की भूमि में पाई जाती हैं। कहीं कहीं ऐसी धारियों के पास ही वुल्फ़रम के कण नदियों के बालू में भी पाये जाते हैं। परन्तु इस खनिज की ठोस शिलाओं से अधिक दूरी पर नदियों में वुल्फ़रम के कण नहीं मिलते क्योंकि इस के अवयव जल और वायु से शीघ्र ही परिवर्तित हो जाते हैं और उन के स्थान पर अन्य पदार्थ बन जाते हैं।

भारतवर्ष में टङ्गस्टन की उपज—यद्यपि ब्रह्मदेश में इस धातु की वुल्फ़रम खनिज का पता सन् १८४० ई० में ही लग चुका था परन्तु इस खनिज की उचित खोज सन् १९०८ में ही ज्यालोजीकल सर्वे विभाग द्वारा हुई। उसी समय से ब्रह्मदेश में वुल्फ़रम के व्यवसाय की इतनी उन्नति हुई कि सन् १९१४ में महायुद्ध आरम्भ होने पर जब जर्मन देश ने बृटिश राज्य को टङ्गस्टन देना बिल्कुल रोक दिया तो भारत से ही उस समय टङ्गस्टन की माँग पूर्ण की गई थी। महायुद्ध के समय यहाँ पर क़रीब ३४३७ टन प्रतिवर्ष वुल्फ़रम निकाला गया था। युद्ध के पश्चात् संसार में टङ्गस्टन की खपत केवल आधी रह गई। इस कारण भारत में भी इस धातु का व्यवसाय मन्दा पड़ गया।

भारतवर्ष में ब्रह्मदेश में ही टङ्गस्टन की खनिज निकाली जाती है। यहाँ पर वुल्फ़रम के जमाव ७०० मील लम्बी भूमि में कहीं कहीं पर पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में टेवाय मरगुई, थाटन और एम्हर्स्ट ज़िले तथा दक्षिणी शान राज्य भी आ जाते हैं। इन सब स्थानों में टेवाय ज़िला ही मुख्य है। ब्रह्मदेश के बाहर बिहार के सिंघभूमि जिले में तथा मध्य प्रान्त में अगर गाँव और मारवाड़ के डेगाना स्थान में भी थोड़ा सा वुल्फ़रम पाया जाता है।

सन् १९३४ में भारत में वुल्फ़रम की उपज का ब्यौरा इस प्रकार था :—

स्थान	परिमाण (टन)	मूल्य (रुपये)
ब्रह्म देश :—		
मरगुई	१२१.८ टन	७७०४६ रुपये
करेनी राज्य	१९९५.०,,	२२७१६०६,,
टेवाय	१२०१.७,,	१४२६७४४,,
थाटन	१०.०,,	१४२२५
कुल उपज	३३२८.५ टन	३७८६२१ रुपये

(११) रांगा

रांगे की पतली तह लोहे की चद्दरों पर चढ़ाई जाती है जिससे लोहे पर काई न लगे। इसके अतिरिक्त रांगा कई धातु-मेल जैसे कांसा इत्यादि बनाने के काम में आता है। रांगे की मुख्य खनिज कैसीटेराइट (Cassiterite) है जो रांगे की एक प्रकार की भस्म (Oxide) है। यह खनिज काले या कुछ कुछ पीले रंग की होती है और अधिक भारी होती है। इस खनिज को भट्ठियों में शोध कर रांगा निकाला जाता है। कैसीटेराइट या तो बिल्लोर की धारियों में मिलती है अथवा नदीपात्र के बालू में। धारियों में कैसीटेराइट के साथ प्रायः टङ्गस्टन की खनिज भी मिलती है। ब्रह्म देश में तो रांगे और टङ्गस्टन की खनिज साथ साथ प्रत्येक स्थान पर ही मिलती है। परन्तु नदीपात्र में (मुख्य जमाव के पत्थरों से दूर) केवल रांगे की खनिज ही मिलती है क्योंकि इस खनिज पर जल का प्रभाव कम होता है।

भारत में रांगे की खनिज की उत्पत्ति:—ब्रह्म देश के टङ्गस्टन वाले सब स्थानों पर रांगे की खनिज मिलती है। टङ्गस्टन का प्रयोग तो आधुनिक काल में विदित हुआ परन्तु ब्रह्मदेश के रांगे के जमाव प्राचीन समय से ही प्रसिद्ध थे। सन् १५९९ ई० में रेलफ फिच नामक विदेशी यात्री ने अपने वृत्तान्त में टेवाय जिले की रांगे की खानों के विषय में उल्लेख किया था। ब्रह्मदेश से बाहर बिहार के हजारीबाग़ जिले के पिहरा, दोमचान्च तथा नुरुङ्गा इत्यादि स्थानों में और गया ज़िले में भी थोड़ी सी कैसीटेराइट पाई जाती है। कहा जाता है कि नुरुङ्गा में सन् १८६८ में स्थानीय कारीगरों ने इस खनिज को लोहे की खनिज समझकर इससे लोहा निकालना चाहा तो लोहे के स्थान पर सफेद धातु पाकर उनको आश्चर्य हुआ और उसको चाँदी जानकर वे उसे रानीगंज बेचने के

लिये लाये। तब एक अंग्रेज सज्जन को इस खनिज का पता लगा। सन् १६३४ में भारत में करीब ६८ लाख का राँगा विदेश से आया था।

सन् १६३४ में ब्रह्मदेश में कैसीटेराइट की उपज इस प्रकार थी :—

स्थान	परिमाण (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
एम्हर्स्ट	३२·६ टन	५०६३२ रुपये
मरगुई	१३५७·३ ,,	२२९०१०२ ,,
करेनी राज्य (मुख्यतः माउची की खान)	१८६४·० ,,	३३२०५६० ,,
टेवाय	२५१२·० ,,	४५०००६४ ,,
थाटन	५·३ ,,	८६६० ,,
कुल उपज	५८०१·२ टन	१०१७०३४८ रु०

द्वितीय खण्ड

कोयला तथा मिट्टी का तेल

(१) कोयला

कोयला अधिकतः कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन तत्वों के कई सम्मलनों के मिश्रण से बना है। इसमें प्रायः चार मुख्य पदार्थों का संमिश्रण रहता है —(१) कार्बन। (२) हाइड्रो-कार्बन (कार्बन-हाइड्रोजन के वाष्पीय सम्मेलन) तथा कार्बन-आक्सीजन के वाष्पीय सम्मेलन, (३) जल-अंश (४) राख। इसके अतिरिक्त गंधक और नाइट्रोजन तत्व भी कोयले में थोड़े से मिलते हैं परन्तु उनका महत्व अधिक नहीं है।

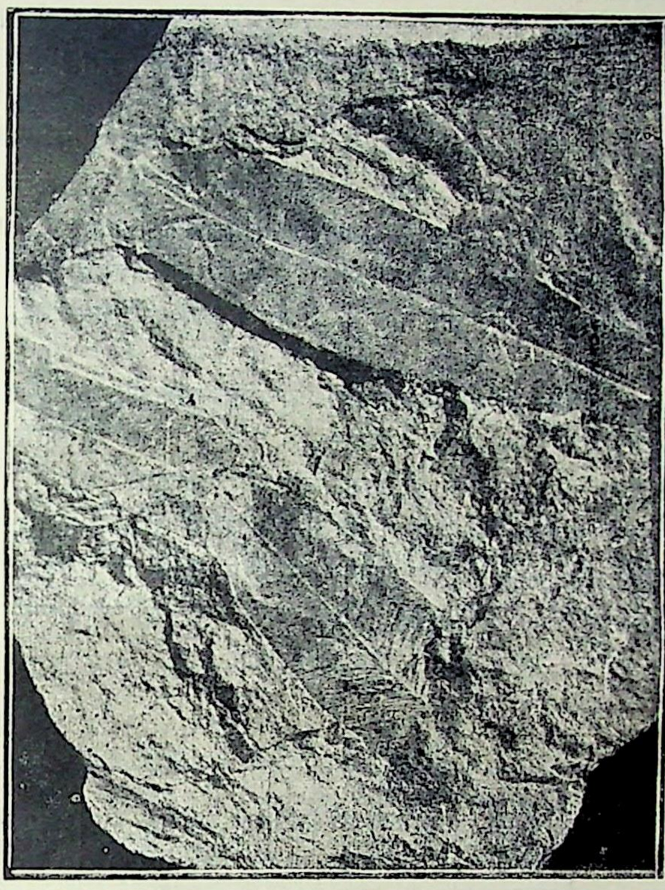
कोयले के रासायनिक सङ्गठन तथा भौतिक गुणों के अनुसार उसको चार मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जाता है :—

(१) "पीट" कोयला—यह बहुत मुलायम, भूरे या काले रंग का तथा रेशेदार होता है। ये रेशे उन उद्भिज पदार्थों के होते हैं जिनके परिवर्तन से यह बनता है। पीट वनस्पतियों से कोयला बनने की प्रथम सीढ़ी का द्योतक है। यह प्रायः दलदलों (Marshes) में वनस्पतियों के एकत्रित होकर जल में सड़ने और गलने से बना करता है। पीट का औसत घनत्व (Density) पृथ्वीतल के उद्भिज पदार्थों से तिगुना होता है। यह अनुमान किया जाता है कि उद्भिज पदार्थों के परिवर्तन में उनका ३० प्रतिशत अंश निकल जाता है और ७० प्रतिशत अंश पीट के रूप में रह जाता है।

(२) "लिग्नाइट" या भूरा कोयला—इसमें वनस्पतियों का बहुत सा भाग, पूर्ण रूप से कोयले में परिवर्तित हो जाता है और केवल कहीं कहीं उद्भिज रेशे दृष्टिगोचर होते हैं। पीट और शुद्ध कोयले के बीच में लिग्नाइट का स्थान है। इसका रंग काला या भूरा होता है। जलने में यह बहुत धुंआ देता है। शुद्ध कोयलों से यह हलका होता है। पीट मुख्यतः दबाव से धीरे धीरे लिग्नाइट में परिवर्तित हो जाता है। इस क्रिया में पीट का बहुत सा जल निकल जाता है। पृथ्वीतल के उद्भिज पदार्थों से इसका घनत्व पचगुना होता है। इस कोयले में एक मुख्य अवगुण यह है कि शीघ्र चूर चूर हो जाता है इसमे इसका बहुत सा अंश इधर उधर ले जाने में तथा रखने में ही चूर्ण हो जाता है अथवा धुंए में अधजले कणों के रूप में रही चला जाता है।

(३) 'बिटुमेन' दार अथवा धुआँदार कोयला—सामान्य कोयला इसी श्रेणी का होता है। इसमें उद्भिज पदार्थों के रेशे बिल्कुल नहीं मिलते। यह कोयला प्रायः काले रंग का होता है और जलने में लिग्नाइट से कम धुआँ देता है। गरम होकर यह कुछ फूल सा जाता है। लिग्नाइट से यह कुछ भारी होता है। और हवा में पड़े रहने पर उतना चूर चूर भी नहीं होता। यह कोयला चमकहीन अथवा चमकदार होता है और प्रायः

इसके एक ही टुकड़े में चमकदार और चमकहीन दोनों परतें दृष्टगोचर होती हैं। इस कोयले को छूने से ही उंगली पर काला दाग़ लग जाता है।



झरिया क्षेत्र के कोयले के साथ की शिलाओं में पत्तियों के चिन्ह (इस प्रकार की पत्तियां आजकल कहीं नहीं मिलतीं, । बड़ी पत्ती ६ इञ्च लम्बी है)

(श्री बी० भार्गव की कृपा से)

(४) **"एन्थरेसाइट" कोयला**—यह कोयला काले पत्थर के समान प्रतीत होता है। इसको छूने से उँगली में दाग़ नहीं लगता। यह कोयला अन्य कोयलों से भारी होता है। इसका घनत्व पृथ्वीतल के उद्भिज पदार्थों से छः गुना है। असली ऐन्थरेसाइट कोयले की ज्वाला नीली तथा कुछ कम प्रकाशवाली होती है और उसमें धुआँ नहीं होता। आरम्भ में यह कोयला अधिक देर में आग पकड़ता है। प्रायः लकड़ी के ईंधन से तो यह सुलगता ही नहीं। इस कोयले में कार्बन का अंश ६५ प्रतिशत तक होता है और अन्य अवयव बहुत कम होते हैं। इस कारण यह कोयला अन्य कोयलों से शीघ्र जल जाता है परन्तु जलने में यह उनसे कहीं अधिक गर्मी देता है।

दबाव तथा ताप से परिवर्तित होकर कहीं कहीं कोयले से **'ग्रेफाइट'** नामक खनिज बन जाती है, जिसमें प्रायः शत प्रतिशत कार्बन ही होता है। ग्रेफाइट घनत्व में उद्भिज पदार्थों से नौ गुना भारी होता है। सब कोयलों में ज्यों ज्यों कार्बन का अंश बढ़ता जाता है उनका जलने का ताप-क्रम भी बढ़ता जाता है। इससे ग्रेफाइट बहुत ही अधिक देर में जलता है। इसी कारण इस खनिज की गणना कोयलों में नहीं की जाती।

जिस कोयले में कार्बन का अंश अधिक होता है और जलाने पर जल और वायु कम निकलते हैं और राख कम रह जाती है वही उत्तम श्रेणी का माना जाता है। कारखाने की भट्ठियों में अकसर अध-फुका कोयला इस्तेमाल किया जाता है, जिसको 'कोक' (coke) कहते हैं। जलने में कोक कच्चे कोयले से अधिक गर्मी देता है परन्तु उत्तम कोक विशेष प्रकार के कोयलों को ही फूंक कर प्राप्त हो सकता है सब कोयलों से नहीं।

कोयले की भौगर्भिक उत्पत्ति—कोयला प्राचीन समय के जंगलों तथा दलदलों की वनस्पतियों के धीरे धीरे रासायनिक परिवर्तन से बना है। इस परिवर्तन में ताप तथा दबाव से पुराने उद्भिजों के अवयवों में से आक्सीजन और हाइड्रोजन का अंश कम हो गया और इस प्रकार कार्बन अधिक परिमाण में रह गया और वे उद्भिज पदार्थ अधिक ठोस, भारी और भञ्जनशील (brittle) होकर कोयले में परिणित हो गये। निम्नलिखित रासायनिक विश्लेषणों (analyses) से लकड़ी और भिन्न भिन्न कोयलों का तथा ग्रेफाइट का परस्पर अन्तर और सम्बन्ध भली भाँति विदित होता है।

नाम	कार्बन का प्रतिशत अंश	हाइड्रोजन का प्रतिशत अंश	आक्सीजन का प्रतिशत अंश	एक घन (cubic) फुट का वज़न
लकड़ी के टुकड़े	५०·५	६·२	४३·३	१५ पौंड
पीट ...	६०·५	६·०	३३·५	४५ "
लिग्नाइट कोयला	७२·०	५·३	२२·७	७५ "
बिटुमेनदार कोयला	८५·५	५·५	६·०	८१ "
एन्थरेसाइट कोयला	९५·५	२·८	१·७	९३·५ "
ग्रेफाइट खनिज	१००·०	०·०	०·०	१३७ "

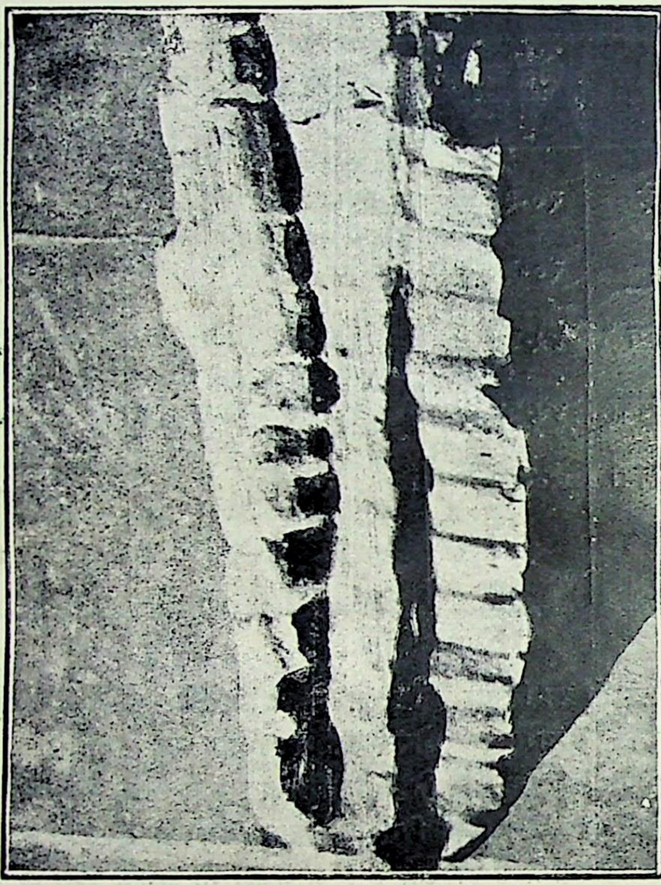
भिन्न भिन्न कोयलों से ठोस कार्बन, जल का अंश तथा वाष्पीय पदार्थ (जिनमें कार्बन के वाष्पीय सम्मेलन भी सम्मलित हैं) निम्नलिखित रासायनिक विश्लेषणों में दिये गये हैं—

नाम	ठोस कार्बन का अंश	जल का अंश	वाष्पीय पदार्थ
लकड़ी के टुकड़े	२०-३० %	(सुखा कर दल दल की लकड़ी में ६०-६५ प्रतिशत)	६५-७५ %
पीट ...	२०-३० "	८०-९० "	५०-७५ "
लिग्नाइट कोयला	४५-५५ "	३०-५५ "	३५-५० "
बिटुमेनदार कोयला	४५-६५ "	३०-१२ "	३५-४० "
एन्थरेसाइट कोयला	८०-६५ "	२-५ "	२५-४५ "
ग्रेफाइट खनिज	१०० "	०	२-१० "

भूगर्भवेत्ताओं का विचार है कि सब कोयले उपरोक्त क्रम से ही लकड़ी से बने होंगे। लिग्नाइट से ले कर एन्थरेसाइट कोयले तक सब किसी समय पीट के रुप में अवश्य रहे होंगे। तत्पश्चात् पीट के बालू और मिट्टी के नीचे दब जाने से वे धीरे धीरे शुद्ध कोयले के रूप में परिवर्तित हो गये होंगे। यह सिद्धान्त अब सर्वमान्य हो गया है, कि कोयले की भिन्न भिन्न क़िस्में वनस्पति-पदार्थों से ही बनी हैं। आजकल भी अनेक देशों के वर्तमान दलदलों में वनस्पतियों का विशाल जमाव देखा जा सकता है। जिसकी नीचे की तहों का 'पीट' में परिवर्तित होना आरम्भ हो गया है। इस प्रकार कोयले के उत्पादक-पदार्थ के विषय में प्रमाण प्रत्यक्ष है। परन्तु वनस्पति-पदार्थ किस प्रकार दलदलों और जलाशयों में एकत्रित हुए और किन किन क्रियाओं से उनका कोयले में परिवर्तन हुआ, इस विषय में अभी तक भूगर्भ-वेत्ताओं में मतभेद है।

संसार में कोयले के कुछ जमाव तो ऐसे हैं, जहाँ यह प्रतीत होता है कि किसी काल में वनस्पति उसी स्थान पर उगे होंगे और वहीं पर गिरकर बालू और मिट्टी से दब गये होंगे, एवम् कोयले में परिवर्तित हो गये होंगे। यह सिद्धान्त **कोयले की "स्थानीय उत्पत्ति"** (Growth in situ origin) के नाम से प्रसिद्ध है। कोयले के अन्य जमावों की उत्पत्ति कुछ भिन्न प्रकार से मालूम पड़ती है। वहाँ वनस्पति पदार्थ किसी पास के स्थान से नदियां द्वारा लाये गये होंगे और उन नदियों की घाटियों अथवा किसी बड़ी झील में

(जो उस समय इन जमावों के स्थान पर वर्तमान थी) एकत्रित हुए होंगे और फिर जलज-शिलाओं की तहों के नीचे दबकर कोयला बन गये होंगे। यह सिद्धान्त कोयले की **"बहावा से उत्पत्ति"** (Drift origin) के नाम से प्रसिद्ध है।

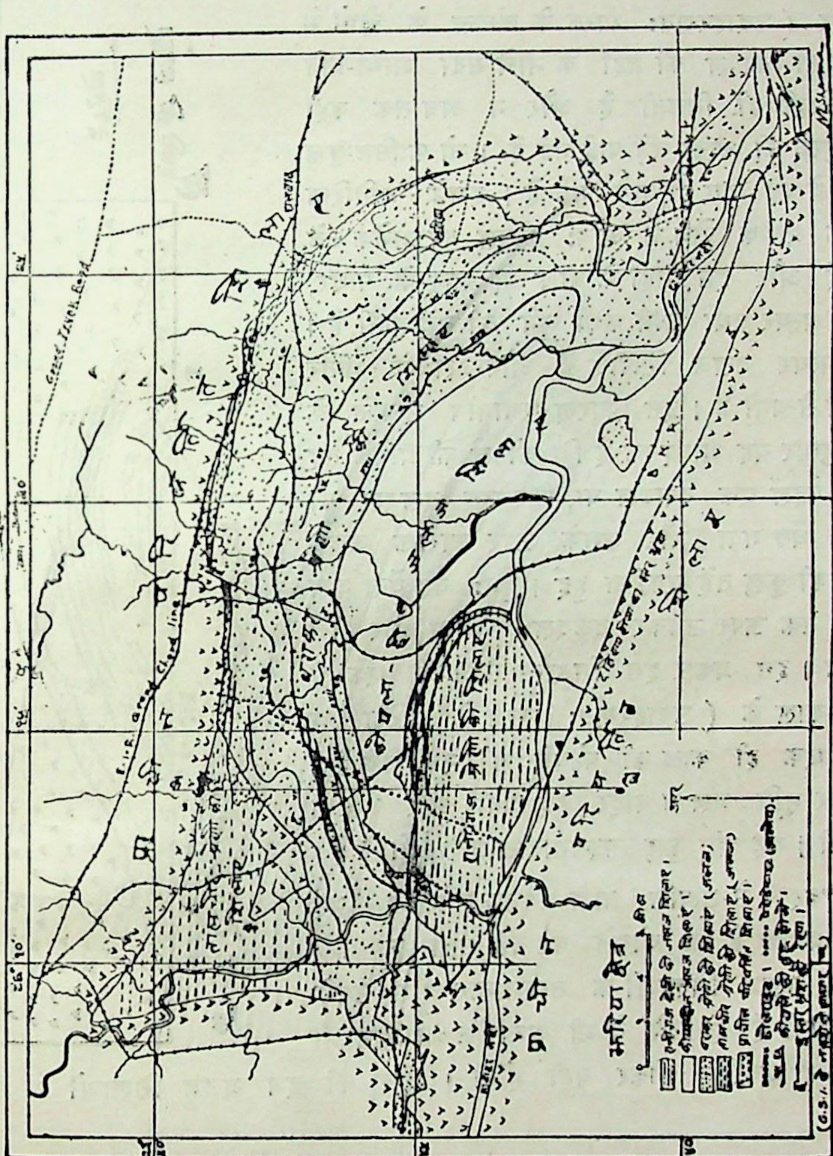


झरिया क्षेत्र के कोयले के साथ की शिलाओं में पौदों के तनों की छाल के चिन्ह (इस प्रकार के पौदे आजकल कहीं नहीं मिलते—यह टुकड़ा ६ इञ्च लम्बा है)

(श्री० बी० भार्गव की कृपा से)

प्रथम प्रकार से कोयले की उत्पत्ति मानने वाले यह कदापि नहीं कहते कि कोयले का जन्म देनेवाले वनस्पति गहरे पानी में उग रहे थे और न दूसरे सिद्धान्त के समर्थक यह कहते हैं कि वे वनस्पति जल के बाहर सूखी भूमि पर उग रहे थे। दोनों सिद्धान्तों के अनुसार एक उथले जल का दलदल था जिसमें वनस्पतियों का बाहुल्य था परन्तु एक विचार से कोयले के जमावों के स्थान पर ही वह दलदल था और कोयले की तहों के नीचे की भूमि ही वह भूमि है जिस पर वनस्पति उगे थे। दूसरी कल्पना के अनुसार उन दलदलों से वनस्पति नदियों द्वारा बहा ले जाये गये थे और पास ही के जलाशयों में एकत्रित हो गये। प्रथम सिद्धान्त के पक्ष में दो सबल प्रमाण रक्खे जाते हैं। एक तो कोयले की

तहों (seams) का क्षेत्रफल बहुत बड़ा होता है और कोयले में अन्य पदार्थ—बालू मिट्टी इत्यादि का नितान्त अभाव रहता है। दूसरे कई स्थानों पर यह देखा गया है कि, कोयले की तह के नीचे की मिट्टी में वे अवयव (खार इत्यादि) कम होते हैं जिनकी

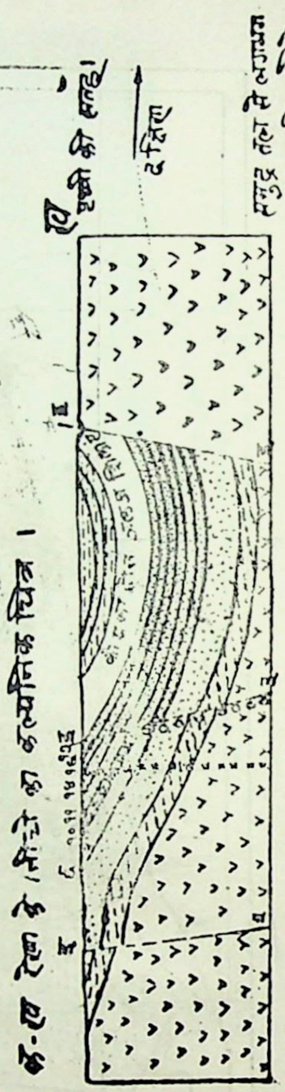


यह नकशा ज्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया के नक्शे के आधार पर बनाया गया है। —लेखक

प्रायः वनस्पतियों को उगने में आवश्यकता होती है। कोयले की तहों के नीचे (ऐसे स्थानों पर) अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी की तहें होती हैं जिनमें खार इत्यादि, शीघ्र पिघलाने वाले पदार्थ नहीं होते। इससे विदित होता है कि कोयले के जन्मदाता वृक्ष, लताएँ इत्यादि इसी स्थान पर उगे और उन्होंने ही मिट्टी में से ये अवयव खींच लिये। इसके अतिरिक्त कोयलों

की तहों के नीचे की शिलाओं में जो कहीं कहीं फासिलवृक्ष*'' (fossiltree) मिलते हैं उनके तने और जड़ें सीधी खड़ी मिलती हैं। कदाचित वे उगे उगे ही ठूंठ बन कर जलाशयों में दब गये।

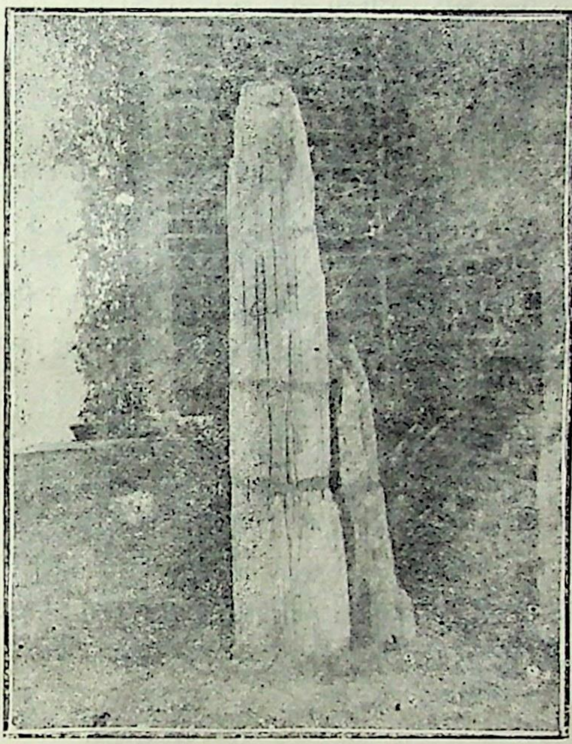
इस सिद्धान्त के विपक्ष में कहा जाता है कि कई स्थानों पर (उदाहरणतः भारत के कोयले के क्षेत्रों में ही) न तो कोयले की तहों के नीचे सदा अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टी ही मिलती है और न अब तक कहीं फासिल-वृक्षों की खड़ी जड़ें पाई गई हैं। जो फासिल-वृक्ष मिले हैं वे पड़े हुए ही पाये गये हैं। इसके अतिरिक्त कोयले के प्रत्येक क्षेत्र में प्रायः कोयले की अनेक तहें मिलती हैं और इन तहों के बीच में बालू के पत्थर, मिट्टी के पत्थर तथा कभी कभी चूने की तहें होती हैं। उपरोक्त पत्थर जलज शिलाएँ हैं और जल के भीतर जमा होने से बनी हैं। इस कारण 'स्थानीय उत्पत्ति' के सिद्धान्तानुसार यह आवश्यक है कि कोयले की प्रत्येक तह के लिये पहले एक दलदल था, फिर उस दलदल का पेंदा नीचे धँस गया और उसके ऊपर उपरोक्त जलज शिलाओं की कुछ तहें एकत्रित हुई। पुनः वह पेंदा जल की सतह तक ऊपर उठकर दलदल हो गया और नीचे धँस गया। इस प्रकार इस सिद्धान्त से अकेले एक ही भौगर्भिक-काल के (उदाहरणतः भारत के झरिया क्षेत्र में जहाँ एक ही काल की कोयले की २० तहें हैं) अनेक बार भूमि जल से बाहर हुई होगी और जल में डूबी होगी। यह बात कुछ कल्पनातीत प्रतीत होती है।



"बहाव से उत्पत्ति'' वाले सिद्धान्त के पक्ष में यह भी एक प्रमाण है कि कोयले की तहें साथ की अन्य वास्तविक जलज शिलाओं के समानान्तर और उनके बीच में होती हैं इसलिये वे भी अन्य जलज शिलाओं के समान ही एकत्रित होकर बनी होंगी। बीच की इन जलज शिलाओं में मिट्टी

***नोट—'फासिल वृक्ष'**—प्राचीन काल के वृक्ष जिनका पत्थर में रूपान्तर हो गया है। भारत के रानीगंज और झरिया क्षेत्र में ऐसे वृक्ष बहुत मिलते हैं। असन्सोल के के पास एक ऐसा वृक्ष ७५ फुट लम्बा मिला है जो कलकत्ता के अजायब घर में है। झरिया में भी ऐसे कई वृक्ष मिले हैं। एक के तने के दो टुकड़े धनबाद माइनिंग कालिज की बरसाती में खड़े किये गये हैं। ये वृक्ष बालू के पत्थरों में गड़े हुए मिलते हैं। —लेखक

की तहों में तरह तरह की पत्तियों के चिन्ह (fossil-leaves) तथा बालू की तहों में बड़े बड़े विशाल फासिल-वृक्ष इस बात के द्योतक हैं कि जिस समय ये शिलाएँ बन रही थीं उस समय नदियाँ उद्भिज-पदार्थ भी अवश्य ला रही थीं। कोयले की एक ही तह के बीच में कभी कभी कहीं पर बालू या मिट्टी की पतली तह आ जाती है और यह अक्सर देखा जाता है कि कोयले की एक तह आगे चलकर मिट्टीदार कोयले या कार्बनदार मिट्टी की तह ही रह जाती है। इस सिद्धान्त के अनुयायी कोयले की शुद्धता का कारण यह बताते हैं कि कोयले की तहें जलाशयों के उन स्थानों पर ही बनी थीं जहाँ, पत्थरों में सब से हल्के होने के कारण, वनस्पतियों के ही टुकड़े जाकर एकत्रित हुए होंगे।



झरिया क्षेत्र का एक "फासिल-वृक्ष" (यह धनबाद कालिज में खड़ा किया गया है—इस वृक्ष की लम्बाई २५ फुट से अधिक थी—यह कोयले के साथ की शिलाओं में से खोदकर निकाला गया है)।

संक्षेप में कोयले की उत्पत्ति के विषय में यह कहा जा सकता है कि कई स्थानों के कोयले की "स्थानीय उत्पत्ति" हुई है और कइयों के कोयले की 'बहाव से उत्पत्ति'। भारतीय कोयला दूसरे प्रकार से उत्पन्न हुआ है अथवा प्रथम प्रकार से, इसमें अभी भूगर्भ-वेत्ताओं में मत भेद है।

भौगर्भिक आयु के अनुसार कोयला अनेक काल की जलज शिलाओं में मिलता है। ये शिलाएँ प्रायः बालू और चिकनी मिट्टी की बनी हुई होती हैं; परन्तु यदि कोयले

की उत्पत्ति समुद्रीय जल में हुई हो तो चूने के पत्थर की भी हो सकती है। इन्हीं शिलाओं के बीच में कोयले की भिन्न भिन्न तहें हुआ करती हैं। जलज शिलाओं की तहें पहले जल में (विशेषकर समुद्री जल में) क्षितिज क्षेत्र में एकत्रित होती हैं परन्तु जब वह भाग जल से बाहर निकलकर भूतल बन जाता है तब वे प्रायः एक ओर को झुक जाती हैं। इस झुकाव को शिलाओं का "डिप" (Dip) या ढाल कहते हैं, जिनको (यदि वे क्षितिज होतीं तो) बिना "बोरिङ्ग" किये हम कदापि मालूम न कर सकते। जहाँ पर कोयले की उत्पत्ति किसी झील या जलाशय में हुई है वहाँ की शिलाएँ जिस समय जल से बाहर निकली होंगी, उनकी तहें पुरानी झील के केन्द्र की ओर चारों दिशाओं से झुकी हुई होंगी अथवा हो गई होंगी, जिसके फल स्वरूप उन स्थानों के मध्य में हमको आज सबसे नये काल के पत्थर मिलते हैं और किसी भी ओर के किनारे की तरफ चलने पर पुराने पत्थर आते जाते हैं। क्योंकि जिस ओर को ढाल होता है उधर को चलने पर ऊपर के अर्थात् नये समय में एकत्रित हुए पत्थर आयेंगे और उसकी विपरीत दिशा में अधिक पुराने अर्थात् नीचे के पत्थर दिखाई देंगे। इस प्रकार कोयले के क्षेत्रों में अक्सर कोयले की प्रत्येक तह—"सीम" (Seam)—पृथ्वीतल पर किसी केन्द्र के चारों ओर पाई जाती है। भौगर्भिक नक्शों में कोयले की तहें भिन्न भिन्न मोटी काली रेखाओं द्वारा अंकित की जाती हैं (देखिये झरिया क्षेत्र का चित्र) इससे सिद्ध होता है कि यदि किसी भौगर्भिक नक्शे में तह की रेखाएँ किसी काल्पनिक केन्द्र के चारों ओर जाती दिखाई दें और हम किसी यंत्र से केन्द्र के पास कोई बोरिङ्ग करें तो यह बहुत सम्भव है कि वहाँ एक के बाद दूसरी सब कोयले की तह मिलती जावें परन्तु यथार्थ में पृथ्वी के अन्दर की भौगर्भिक हलचलों द्वारा कुछ तहें अपने उचित स्थान से हट भी सकती हैं और कुछ विनष्ट और भ्रष्ट भी हो सकती हैं। जैसे झरिया क्षेत्र में दक्षिणी भाग का कोयला एक बड़े प्रस्तर भ्रंश (Fault) से ऊँचा रह जाने के कारण कालान्तर में धुल गया और इस समय उत्तरी भाग का कोयला ही प्राप्त होता है। (देखिये नक्शे के साथ का सेक्शन)

भारतवर्ष के कोयले के जमावों की भौगर्भिक आयु :—भारतवर्ष में कोयला कई भौगर्भिक काल की जलज शिलाओं में मिलता है, जिनमें से दो ही काल का कोयला अधिक महत्व का है। एक 'प्रथम कल्प'* के 'गोंडवाना'* नामक काल का और दूसरा

---

* नोटः—पृथ्वीतल पर जीवन-चिन्ह दृष्टिगोचर होने के समय से पृथ्वी की आयु चार भौगर्भिक कल्पों में विभाजित की गई है। अनुमान से प्रथम कल्प को व्यतीत हुए ५ करोड़ वर्ष, द्वितीय को १ करोड़ ५० लाख वर्ष और तृतीय को १० लाख वर्ष हुए हैं। चतुर्थ कल्प आजकल चल रहा है। गोंडवाना काल प्रथम कल्प के अन्त का और द्वितीय कल्प के आरम्भ का भाग था। इस काल में भारत का दक्षिणी भाग अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका से मिला हुआ था। इन सब देशों में इस समय का कोयला एक से ही पत्थरों में मिलता है। हिमालय पर्वत जल से निकल कर तृतीय कल्प में उत्पन्न हुआ है।

—लेखक

तृतीय कल्प का। भारत का प्रायः ९८ प्रतिशत कोयला गोंडवाना काल की शिलाओं में से निकाला जाता है और शेष तृतीय कल्प की शिलाओं से। गोंडवाना समय का कोयला बंगाल, बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रान्त तथा मध्यभारत और हैदराबाद राज्य में पाया जाता है और तृतीय कल्प का कोयला बिलोचिस्तान, पंजाब, काश्मीर, राजपूताना, कच्छ, सिंध, आसाम और ब्रह्मदेश में मिलता है।

गोंडावाना काल के कोयले की उत्पत्ति और उसको निकालने के उपाय :— भारतवर्ष में सब से उत्तम श्रेणी के कोयले के जमाव बंगाल और बिहार प्रान्तों की दामोदर नामक नदी की घाटी में पाये जाते हैं। यह अनुमान किया गया है कि यहाँ के सब कोयले की तहें तथा उनके साथ उनके साथ की बालू और मिट्टी की तहें किसी समय इसी दामोदर और उसकी शाखा नदियां द्वारा घाटी में एकत्रित को गई होंगी। उस समय कदाचित इन प्रान्तों के कोयले के सब क्षेत्र आपस में मिले हुए होंगे और वे इस बड़ी घाटी के बीच झीलें अथवा जलाशयों के रूप में होंगे। गोंडवाना काल में सृष्टि के इस भाग पर वनस्पतियों की अति अधिक उपज थी। इस कारण समय समय पर दामोदर तथा उसकी सहायक नदियों की घाटियों में जंगल उग आते थे। वृक्षों के तने, पत्ते और शाखें इन जलाशयों के दलदलों में इकट्ठी कर दी जाती थीं। बीच बीच में कभी बालू और कभी मिट्टी के कण उद्भिज पदार्थों के ऊपर जमा हो जाते थे जिसके फल स्वरूप इन जलाशयों में कोयले की भिन्न भिन्न सीमें जलज शिलाओं की तहों के बीच में बनीं। ऐसा अनुमान है कि कोयले की एक फीट मोटी तह बनने के लिये कम से कम छः फीट मोटी तह लकड़ी एकत्रित हुई होगी। अकेले झरिया क्षेत्र में कुल तहों को मिलाकर ३०० फीट कोयला है। इस प्रकार यहाँ पर करीब १८०० फुट मोटी तहें वनस्पति पदार्थों की एकत्रित हुई होंगी। जलज शिलाओं तथा कोयले की सीमों की मोटाई किसी किसी जलाशय में (अर्थात् आज-कल के कोयले के क्षेत्र में) कुल मिलाकर ७००० फुट तक पाई गई है। इससे सिद्ध होता है कि जलाशयों के तले उसी समय धीरे धीरे नीचे धँसते भी जाते होंगे। तभी इतना तलछट एकत्रित हो सका। यह अनुमान किया जाता है कि ७००० फुट मोटी तलछट की तहें जमा होने के लिये लगभग डेढ़ करोड़ वर्ष लगे होंगे। इतने समय के उपरान्त इन जलाशयों के तले जल से बाहर उठने लगे और वहाँ पर जल के स्थान पर भूतल हो गया। गोंडवाना काल की जलज शिलाओं को मुख्य चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है, जिसमें से केवल दो "बराकर" और "रानीगंज" नामक श्रेणियों की शिलाओं में ही कोयला पाया जाता है। इन शिलाओं के बनने के बहुत समय बाद इन क्षेत्रों में भूकम्पीय तथा आग्नेय हलचलें भी बहुत हुईं, जिनके कारण इन क्षेत्रों की शिलाओं को काटकर अथवा उनकी तहों के समानान्तर मुख्यतः दो प्रकार की आग्नेय शिलाएँ 'डाले राइट' (dolerite) और काले अबरकदार 'पेरीडोटाइट' (peridotite) मिलती हैं। इनके अतिरिक्त पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों के कारण इन क्षेत्रों में अनेक स्तर-भ्रंश भी हो गये हैं, जिससे कोयले तथा अन्य शिलाओं की तहें इधर उधर हो गई हैं। गोंडवाना कोयले के क्षेत्रों के चारों ओर परिवर्तित शिलाएँ मिलती हैं जो जलज शिलाओं से कहीं अधिक पुरानी

हैं। इन्हीं परिवर्तित शिलाओं की भूमि में प्राचीन जलाशय उपस्थित थे जिनमें कोयला बनने का सामान एकत्रित हुआ था।

जहाँ पर कोयले की सीम का ढाल अधिक नहीं है अथवा वह लगभग क्षितिज होती है और पृथ्वीतल से थोड़ी ही नीचे होती है वहाँ पर कोयला खदानें (quarries) बनाकर निकाला जाता है। खदान में कोयले की तह के ऊपर का पत्थर तथा मिट्टी इत्यादि हटाकर कोयला खोदना आरम्भ कर देते हैं। परन्तु जिन स्थानों पर कोयले की तह का झुकाव (ढाल) अधिक होता है अथवा वह पृथ्वीतल से अधिक नीचे होती है और उसके ऊपर ठोस बालू इत्यादि के पत्थर की तहें अधिक मोटी होती हैं वहाँ का कोयला सीढ़ी खाद (Incline) द्वारा निकाला जाता है। इसके लिये कोयले की तह के ऊपर के पत्थरों को न हटाकर उस तह के कोयले को खोदते हुए पृथ्वीतल से नीचे की ओर तह के साथ साथ जाने वाली ढलवाँ सुरङ्गें बनानी पड़ती हैं। किसी भी तह की लम्बाई की दिशा में कई स्थानों में ऐसी सुरङ्गें बनाई जाती हैं और एक सुरङ्ग का सम्बन्ध बगल वाली दूसरी सुरङ्ग से छोटी छोटी सुरङ्गें बनाकर किया जाता है। इस प्रकार तह में सुरङ्गों का एक जाल सा बिछ जाता है, जिनसे धीरे धीरे सब कोयला निकाल लिया जाता है। सीढ़ी खाद से कोयला दो प्रकार के ढंग से निकाला जा सकता है। एक के अनुसार पहले सुरङ्गों से बहुत नीचे चले जाते हैं और वहाँ से कोयला निकालना आरम्भ करते हैं और जब सब निकल आता है तो पीछे की ओर आते जाते हैं और जिन अगले स्थानों का कोयला निकल आता है उन स्थानों को बालू से भर दिया जाता है जिससे खान के गिर जाने का डर न रहे। दूसरा ढंग यह है कि ऊपर ही छोटी छोटी सुरगों के फैलाव बनाकर कोयला निकालना शुरू होता है और उन सुरङ्गों के बीच में जो कोयले में मोटे मोटे खम्भ खड़े रह जाते हैं उनको वैसे ही छोड़ दिया जाता है जिससे उन पर तह के ऊपर के पत्थर टिके रहें और खान की छत न गिरे। इस प्रकार कोयला निकालते और खम्भ छोड़ते हुए खोदने का काम आगे बढ़ता जाता है। यदि किसी समय कोयले की बहुत ही आवश्यकता पड़े तो खान के किसी भाग से यह खम्भे भी निकाले जा सकते हैं परन्तु तब खान के उस स्थान को बाहर से बालू लाकर भर देना पड़ेगा नहीं तो खान की छत गिर जायगी। इन सुरङ्गों में ट्राली लाइन बनी रहती है। जो कोयला सुरङ्ग के अन्त पर खोदा जाता है उसको ट्राली में भरकर सुरङ्ग के मुँह पर ले आते हैं। गहरी खानों में ट्रालियों को खींचने के लिये फ़ौलाद की रस्सी काम आती है और उनको मशीन से खींचा जाता है। जहाँ पर गहराई बहुत अधिक होती है अथवा तह का ढाल अधिक होता है या किसी तह के नीचे की दूसरी तह का भी कोयला निकालना होता है वहाँ पर खान के केन्द्र में एक चानक (Shaft) बनी होती है जिसमें होकर दो लोहे के खटोले (Cages) बराबर आ सकते हैं। ये खटोले भी मशीन से फ़ौलाद की रस्सी द्वारा खींचे जाते हैं। जब एक खटोला ऊपर आता है तो दूसरा नीचे जाता है क्योंकि दोनों खटोले एक ही रस्सी के दो सिरों से बंधे होते हैं। यहाँ पर पहले कोयले को सब तरफ़ से ट्रालियों में चानक के तले में ले आते हैं और फिर वह खटोलों में भर भर कर ऊपर चानक से होकर खींच लिया जाता है।

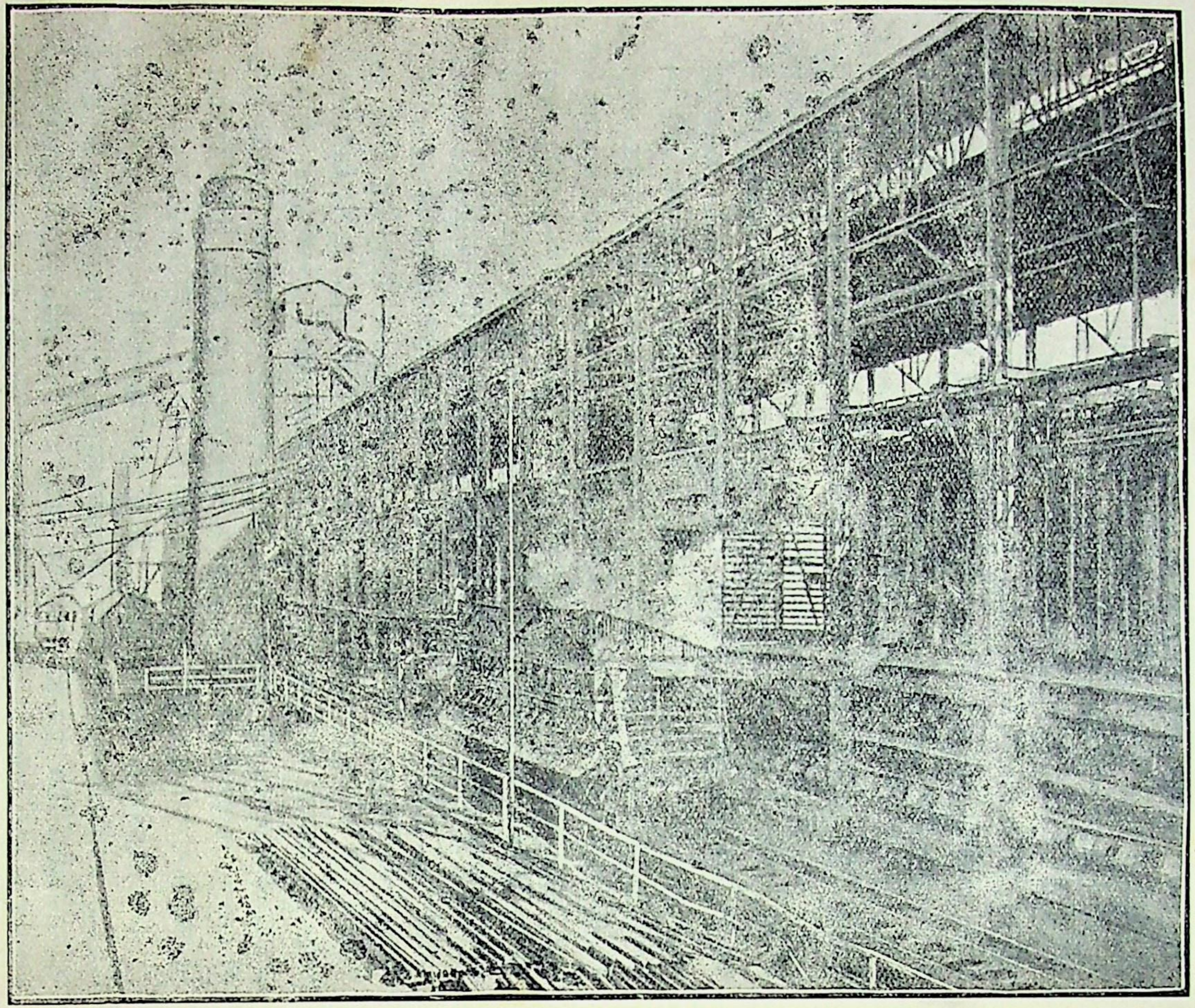
गोंडवाना काल के भारतीय क्षेत्र—

बंगाल और विहार-उड़ीसा के कोयले के क्षेत्र :—उत्तम कोयले के बड़े बड़े क्षेत्र इन्हीं प्रान्तों में वर्तमान हैं जिनमें मुख्य मुख्य नीचे दिये जाते हैं :—

(१) झरिया क्षेत्र—इस क्षेत्र का पता पहले सन् १८५८ में लगा प्रतीत होता है। झरिया क्षेत्र ई० आई० आर० की ग्राण्ड कार्ड लाइन पर धनबाद नामक जंकशन से आरम्भ होता है। यह क्षेत्र २३ मील लम्बा (पूर्व-पश्चिम में) और १० मील चौड़ा (उत्तर-दक्षिण में) है। इसकी जलज शिलाओं का क्षेत्रफल १७५ वर्गमील है। इस क्षेत्र का कोयला 'बराकर' और 'रानीगंज' दोनों श्रेणियों की जलज-शिलाओं के साथ मिलता है। बराकर श्रेणी की शिलाएँ यहाँ पर लगभग ८४ वर्ग मील में मिलती हैं और उनमें कोयले की २० तहें हैं जिनको नीचे से क्रमानुसार नम्बर दे दिये गये हैं अर्थात् इस श्रेणी की सब से नीचे की अथवा पुरानी सीम, सीम न० १ कहलाती है और सबसे उपर की न० २०। इन तहों की व्यक्ति रूप से मोटाई कुछ फीट से २७ फुट तक है। कुल तह मिलाकर ३०० फुट के लगभग मोटी होंगी। प्रत्येक तह अपने ऊपर या नीचे वाली सीम से जलज शिलाओं की तहों द्वारा पृथक होती है। परन्तु कहीं कहीं दो या दो से अधिक सीम भी एक साथ मिल गई हैं। रानीगंज श्रेणी की शिलाएँ २१ वर्गमील में मिलती हैं। इस श्रेणी में मिलने वाली सात आठ तहें हैं जिनको अभी कोई विशेष नम्बर नहीं दिये गये और झरिया क्षेत्र में वे अधिक महत्व की हैं भी नहीं। झरिया क्षेत्र की प्रायः सब तहों के कोयले से 'कोक' बन सकता है परन्तु उत्तम कोक केवल ९ नम्बर से १८ नम्बर तक की तहों से ही बनता है।

झरिया क्षेत्र में ३४२ करोड़ टन कोयला १००० फुट की गहराई तक होगा जिसमें से लगभग ८० करोड़ टन कोयला उत्तम श्रेणी का है जो धातु शोधने के कारखानों के लिये उपयुक्त है। इस क्षेत्र से सबसे अधिक परिमाण में कोयला सन् १९१९ में निकाला गया था। उस वर्ष यहाँ से एक करोड़ २१ लाख टन कोयला उत्पन्न किया गया। सन् १९३३ में यहां से ८०१४९४९ टन कोयला निकाला गया जो भारतवर्ष के कुल कोयले का लगभग ४२ प्रतिशत था। इस प्रकार झरिया का स्थान भारतवर्ष के कोयलों के क्षेत्रों में प्रधान गिना जाता है।

(२) रानीगंज क्षेत्र :—क्षेत्रफल में यह क्षेत्र सब क्षेत्रों से बड़ा है और उपज में इसका स्थान द्वितीय है। इसका क्षेत्रफल लगभग ६०० वर्गमील है। यह क्षेत्र झरिया से १६ मील पूर्व से आरम्भ हो जाता है। ई० आई० आर० पर बराकर, सीतारामपुर तथा रानीगंज इस क्षेत्र के लिये मुख्य स्टेशन हैं। यहां पर कोयला निकालने का प्रथम प्रयत्न कदाचित सन् १७७४ ई० में बराकर नदी के किनारे किया गया था। रानीगंज क्षेत्र में यद्यपि कोयला 'बराकर' और 'रानीगंज' दोनों श्रेणियों की शिलाओं के साथ पाया जाता है परन्तु यहां पर रानीगंज श्रेणी का ही कोयला अधिक है। रानीगंज श्रेणी में कई अच्छी अच्छी कोयले की तहें हैं। बराकर श्रेणी के कोयलों में जल और वाष्पीय पदार्थों का अंश रानीगंज श्रेणी के कोयलों से कम और ठोस कार्बन अधिक मात्रा में होता है। रानीगंज श्रेणी की तह में थोड़ी सी तह ही



टाटा नगर की कोक बनाने की भट्टी। लोहे की खनिज को शोधने के लिये उत्तम कोयले से बना हुआ कोक ही काम में आता है।

धातु शोधने योग्य कोक बनाने के लिये अच्छी हैं जिनमें तिशरगढ़ सीम (१८ फुट मोटी) और सैंक्टोरिया तह (१० फुट मोटी) उत्तम कोयले के लिये प्रसिद्ध हैं। केवल इन दोनों सीमों में १००० फीट की गहराई तक १२ करोड़ टन से अधिक प्रथम श्रेणी का कोक बनानेवाला कोयला कूता गया था और इसके अतिरिक्त २० करोड़ टन कोक न बनाने वाला परन्तु उत्तम कोयला और होगा। रानीगंज क्षेत्र में कुल कोयला ५६८ करोड़ टन १००० फुट की गहराई तक होगा। भारत में पहले रानीगंज का ही कोयले की उपज में प्रथम स्थान था परन्तु बाद को उन्नति में झरिया इससे आगे निकल गया। फिर भी भारत के कुल कोयले के ३० प्रतिशत से अधिक भाग इसी क्षेत्र से आता है। सन् १९३३ में यहां से ६२ लाख टन से अधिक कोयला निकाला गया था।

(३) गिरडी क्षेत्र :—हज़ारीबाग जिले के इस क्षेत्र का क्षेत्रफल केवल ११ वर्गमील है। जिसमें कोयले वाली जलज शिलाएँ केवल ७ वर्गमील में ही मिलती हैं। ये कोयलादार शिलाएँ केवल बराकर श्रेणी की हैं परन्तु यहां के कोयले की मुख्य विशेषता यह है कि उससे अति उत्तम प्रकार का स्टीम-कोक तय्यार होता है। यही कारण है कि इस क्षेत्र के कोयले को ई० आई० रेलवे ने अपने ही अधिकार में रक्खा है। यहां की प्रसिद्ध तहें कडहरबाड़ी (ऊपर की और नीचे की) और पहाड़ी की सीम कहलाती है। कडहरबाड़ी सीम का ऊपरी भाग समाप्त हो चुका है। नीचे की तह कहीं कहीं २४ फुट मोटी है और आजकल इसी से कोयला निकाला जा रहा है। इस तह में कोयला केवल ४ करोड़ टन होगा। गिरडी क्षेत्र की तहों का ढाल बहुत कम है जिससे पृथ्वी तल से केवल ९०० फुट तक जाने से यहां का सब कोयला निकाला जा सकता है। सन् १९३३ में भारत के कुल कोयले का करीब ३० वां ग्रंश इस क्षेत्र से निकाला गया।

(४) बुकारो क्षेत्र :—यह क्षेत्र झरिया क्षेत्र से पश्चिम में है और दो भागों में विभाजित है—पूर्वीय बुकारो और पश्चिमीय बुकारो। दोनों का क्षेत्रफल मिलाकर २२० वर्गमील होगा। इन दोनों के बीच में लूगू नामक पहाड़ी है। यहां की मुख्य खानों की मालिक ई० आई० आर०, बी० एन० आर० तथा जी० आई० पी० रेलवे हैं। सन् १९३३ में इस क्षेत्र ने भारत की उपज का ६·६ प्रतिशत कोयला उत्पन्न किया। पूर्वीय बुकारो की मुख्य तह—'करगली' तह—की मोटाई १२५ फुट है।

(५) करणपुरा क्षेत्र :—इस क्षेत्र के भी दो भाग हैं—उत्तरीय और दक्षिणीय—जिनका क्षेत्रफल क्रम से ४७५ और ७९ वर्गमील है। बुकारो क्षेत्र से २ मील पश्चिम में यह क्षेत्र हज़ारीबाग जिले की उच्चतम सम-भूमि के दक्षिणीय ढाल के तले में वर्तमान है। इस क्षेत्र की एक विशेषता यह है कि यहां पर कोयले की तह अधिक मोटी पाई जाती है। यहां पर ६० फुट मोटी सीम बहुत सी हैं और एक तह तो १३९ फुट मोटी है। सन् १९३३ में इस क्षेत्र से भारत के कुल कोयले का १·७४ प्रतिशत ग्रंश निकाला गया था।

(६) उपर्युक्त पांच क्षेत्रों के अतिरिक्त बिहार उड़ीसा प्रान्त में रामगढ़, (दामोदर घाटी), रामपुर (सम्बलपुर) तथा पलामू के तीन क्षेत्र औरङ्गा, हुटार, व डाल्नगंज और उड़ीसा के तालचीर इत्यादि अन्य प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। हज़ारीबाग जिले में चोपे, इटखुरी, नामक छोटे छोटे क्षेत्रों में तथा राजमहल पहाड़ पर भी कोयला पाया जाता है।

मध्यप्रान्त के कोयले के क्षेत्र :—यद्यपि मध्यप्रान्त में लगभग ३० क्षेत्रों में कोयला पाया जाता है परन्तु कार्य थोड़े ही क्षेत्रों में हो रहा है इसका कारण यह है कि कुछ क्षेत्र तो रेल इत्यादि से बहुत दूर हैं और बहुतों का कोयला बिहार उड़ीसा के क्षेत्रों के कोयले से निम्न श्रेणी का है। मध्यप्रान्त का भी कोयला गोंडवाना काल का है। और यहां भी कोयले के साथ बिहार-उड़ीसा प्रान्त के क्षेत्रों ही से पत्थर मिलते हैं। मध्यप्रान्त के कोयले में नमी अधिक होती है। इस प्रान्त के प्रसिद्ध क्षेत्र निम्नलिखित है :—

(१) **पेञ्चवाटी के कोयले के क्षेत्र :**—ये क्षेत्र छिन्दवाड़ा जिले में सतपुड़ा पहाड़ के दक्षिण में तवा, कन्हान और पेञ्च नदी की घाटियों में वर्तमान है। इन सब का क्षेत्रफल १०० वर्गमील है। यहाँ के मुख्य क्षेत्र सिरगोरा, बरकोई, हिङ्गलदेवी कन्हान और तवा नाम से प्रसिद्ध हैं।

(२) **वारधा घाटी के कोयले के क्षेत्र :**—इन क्षेत्रों में बलारपुर, वरोरा, सस्ती और घुघस उल्लेखनीय हैं परन्तु प्रथम दो ही अधिक महत्व के हैं। चांदा ज़िले में बलारपुर नामक क्षेत्र में कोयलेदार ५२ फुट ६ इञ्च मोटी एक तह मिलती है जिसमें केवल दो ही आठ आठ फुट मोटी तहें अच्छे कोयले की हैं और उन्हीं में से कोयला निकाला जा रहा है। वरोरा क्षेत्र चांदा ज़िले में नागपुर से ६२ मील दक्षिण को है। यहां का कोयला हवा में पड़ा रहने पर चूर चूर होने लगता है और इस कोयले की तह में स्वयं जल उठने का डर भी रहता है।

(३) **मोहपानी क्षेत्र :**—मोहपानी मध्यप्रान्त के नरसिंहपुर ज़िले में इस प्रान्त का सबसे पुराना क्षेत्र है। यह क्षेत्र नर्मदा घाटी के दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत के उत्तरीय ढाल के तले में वर्तमान है। बराकर श्रेणी की शिलाओं में यहां पर कोयले की चार तहें हैं। बंगाल के साधारण कोयलों से यहां का कोयला कुछ निकृष्ट है। इस कोयले में भी अक्सर स्वयं आग लग जाने का डर रहता है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त यवतमाल और बेतूल ज़िलें में शाहपुर इत्यादि क्षेत्र भी प्रसिद्ध हैं।

(४) **उत्तरीय-छत्तीसगढ़ तथा सरगुजा रियासत के क्षेत्र :**—इन क्षेत्रों में राम कोला—ताता पानी, तथा सनहट, विश्रामपुर, बन्सर, लखनपुर, पंचबहनी और सेंदूर गढ़ इत्यादि छोटे छोटे क्षेत्र सम्मिलित हैं। क्षेत्रफल में यद्यपि रामकोला—ताता पानी क्षेत्र ८०० वर्गमील है परन्तु गोंडवाना काल की कोयलेदार शिलाएँ केवल १०० वर्ग मील में ही पाई जाती हैं। और कोयला भी अच्छा नहीं है। इस क्षेत्र के दक्षिण-पश्चिम में झिल-मिली नामक क्षेत्र भी उल्लेखनीय है। इस क्षेत्र के कुछ कोयले से अच्छा कोक बनता है और यहाँ की सीम छितिज है जिससे कोयला निकालने

में बहुत सुभीता रहता है। इस क्षेत्र के दक्षिणीय और केन्द्रीय भाग में उत्तम कोयला का परिमाण अधिक है। परन्तु वे भाग रेलवे से अभी दूर हैं।

(५) दक्षिणीय-छत्तीसगढ़ तथा कोरिया राज्य के क्षेत्र :—छत्तीसगढ़ में कोरबा, माण्ड नदी की घाटी तथा रामपुर नामक स्थान में कोयला मिलता है। रामपुर का नाम रायगढ़-हिंङ्गिर क्षेत्र भी है। यह क्षेत्र सम्बलपुर से २४ मील उत्तर में है। कोरिया राज्य में अनेक स्थानों पर कोयला मिलता है। यहां पर कुरासिया, कोरिया गढ़ तथा अन्य नये क्षेत्र हैं जिनमें अभी ठीक प्रकार से कार्य आरम्भ भी नहीं हुआ है। कुरासिया क्षेत्र को दो भागों में—कुरासिया और चिरमिरी—विभाजित किया जाता है। यहां अभी केवल खानें बनी हैं। एक बी० बी० सी० आई० रेलवे की और दूसरी एक प्राइवेट कम्पनी की। इस क्षेत्र में लगभग ४ करोड़ टन कोयला होगा।

मध्यभारत के कोयले के क्षेत्र :—भारत के इस भाग में यद्यपि कोयले का पता प्रथम सन् १८२९ ई० में ही लग चुका था परन्तु सन् १८८१ ई० तक यहाँ के कोयले के विषय में जनसाधारण को अधिक ज्ञान न था। मध्यभारत के क्षेत्रों में उमरिया और सुहागपुर क्षेत्र ही विशेष महत्व के हैं। मध्यभारत का कोयला भी गोंडवाना काल का है। कोरार, जोहिहा और सिङ्गरौली नामक क्षेत्र अभी नये ही मिले हैं। सिङ्गरौली क्षेत्र में काफी कोयला है परन्तु उसकी उत्तमता अभी सिद्ध नहीं हुई।

(१) उमरिया क्षेत्र :—यह क्षेत्र ६ वर्ग मील का रीवां राज्य में है। यहां पर चार सीमें हैं जिनकी मोटाई ३ फुट से ५ फुट तक है। इन सीमों का ढाल केवल ४ या ५ डिग्री है। यहां पर सन् १८८२ में सरकार ने खान खोली थीं परन्तु सन् १९०० ई० में इस क्षेत्र की खानें गवर्नमेन्ट ने रीवां दरबार को दे दीं। इन खानों में करीब एक हज़ार मनुष्य प्रतिदिन कार्य करते हैं। उमरिया क्षेत्र के कुल कोयले का अनुमान लगभग ढाई करोड़ टन किया जाता है।

(२) सोहागपुर क्षेत्र :—इस क्षेत्र का कुछ भाग मध्यप्रान्त की कोरिया रियासत में और शेष मध्यभारत में है। इसमें झगराखण्ड नामक ६० वर्ग मील का एक छोटा सा क्षेत्र भी सम्मिलित है। सोहागपुर क्षेत्र में यद्यपि कोयले की सीम अधिक संख्या में नहीं हैं परन्तु इसका क्षेत्रफल १२०० वर्ग मील है और कदाचित् सारा कोयला थोड़ी ही गहराई पर मिल सकता है। रेलवे इसके केवल दक्षिणीय और पूर्वीय भागों तक अभी पहुंची है।

हैदराबाद (दक्खिन) के क्षेत्र :—निज़ाम हैदराबाद में सिङ्गरेनी नामक क्षेत्र अधिक प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में बराकर श्रेणी की शिलाएँ केवल आठ वर्गमील में पाई जाती हैं। बोरिङ्ग करने से पता लगा है कि यहां पर सात सीम हैं जिनमें से सब से बड़ी तह ३४ फुट से ६७ फुट तक मोटी है। दक्षिण भारत में यही क्षेत्र पास है। इस कारण यहां के कुल कोयले की खपत दक्षिणीय भारत की रेलवे तथा कारखानों में हो जाती है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त हैदराबाद में अन्य छोटे छोटे क्षेत्र भी हैं।

तृतीय कल्प के कोयले के क्षेत्र :—जैसा की ऊपर लिखा जा चुका है इस काल का कोयला बिलोचिस्तान, पंजाब, राजपूताना आसाम तथा ब्रह्म देश में ही

अधिक पाया जाता है। तृतीय कल्प का कोयला गोंडवाना काल के कोयले से निकृष्ट श्रेणी का होता है। इस कोयले में नमी अधिक होती है और हाइड्रो-कार्बन (कार्बन और हाइड्रोजन तत्वों के सम्मेलन) गैसों का अंश अधिक होता है। इस कारण इन क्षेत्रों के अधिकतः कोयलों को जलाने पर उतनी गर्मी नहीं निकलती जितनी कि गोंडवाना काल के कोयलों से। तृतीय कल्प के कोयले अक्सर गोंडवाना काल के कोयले से अधिक चमकदार और बिना परतों के होते हैं। जिन जलज शिलाओं में इस कल्प का कोयला मिलता है उनकी तहें प्रायः पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों से टेढ़ी तथा प्रस्तर-भ्रंश हो गई हैं। इसके अतिरिक्त इन कोयलों में रुपामक्खी (पाइराइट—लोहे गंधक का सम्मेलन) नामक खनिज के छोटे छोटे दाने मिलते हैं। रुपामक्खी वायु में रहने से शीघ्र ही परिवर्तित होकर चूर चूर हो जाती है और कई दशाओं में उसमें से गंधक पृथक हो जाने की सम्भावना रहती है। इसी के फल स्वरूप ऐसे कोयले खुली हवा में पड़े रहने से शीघ्र ही स्वयं चूर चूर हो जाते हैं और उन कोयले की तहों में स्वयँ कोयले की धूल के कणों के सङ्घर्षण इत्यादि से आग लग जाने का सदा डर रहता है। तृतीय कल्प का कोयला अधिकतर एक विशेष प्रकार के चूने के पत्थर की तहों के साथ मिलता है। इस पत्थर में तृतीय कल्प के एक विशेष युग के समुद्रीय जीवों के मृतक चिह्न भी मिलते हैं।

(१) बिलोचिस्तान के क्षेत्रः—बिलोचिस्तान में खोस्ट नामक क्षेत्र सब से बड़ा है। इस क्षेत्र में प्रथम खान सन् १८७७ ई० में खोली गई। यहाँ पर कोयले की दो तहें हैं जो २६-२७ फुट मोटी हैं। इस कोयले में रुपामक्खी खनिज के कणों के कारण अथवा कोयले की धूल के कणों के सङ्घर्षण से कोयले के स्वयं जल उठने का या खान में धड़ाका हो जाने का सदा डर रहता है।

(२) पंजाब के क्षेत्रः—इस प्रांत में कोयला साल्टरेञ्ज नामक पहाड़ में मिलता है। कोयले के मुख्य क्षेत्र झेलम, शाहपुर और मियांवाली जिलों में हैं। झेलम ज़िले में डडोत और पिंड की खानें प्रसिद्ध हैं। इन स्थानों पर कोयला सन् १८५० ई० में भी निकाला जाता था। यहाँ पर केवल एक तह १८ इंच से ३६ इंच तक मोटाई की है। यह तह चूने के पत्थर की मोटी मोटी तहों के नीचे है परन्तु तह की छत और तले में चिकनी मिट्टी के पत्थर की तह है जिससे कोयला निकालने पर छत के गिर जाने का बड़ा खतरा रहता है। इसके अतिरिक्त यहाँ का भी कोयला रुपामक्खीदार है इस कारण उसके स्वयं जल उठने का डर रहता है। यह दोनों खानें खउड़ा नामक स्थान की लाहोरी नमक की खानों के पास हैं।

शाहपुर ज़िले में तेजूवाला और झाकर कोट नामक स्थानों पर कोयला मिलता है। यहाँ की तह क़रीब ३ फुट मोटी है।

मियांवली ज़िले में ईसाखेल के पास दो एक स्थानों पर कोयला मिलता है जिनमें मकरवाल नामक खान विशेष उल्लेखनीय है।

इन स्थानों के अतिरिक्त काश्मीर राज्य के जम्मू ज़िले में भी अच्छा कोयला पाया जाता है।

(३) राजपूताना का क्षेत्रः—बीकानेर राज्य में पलाना नामक क्षेत्र कोयले के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ पर केवल एक ही सीम है जिसकी मोटाई पृथ्वीतल पर केवल ६ फुट है। परन्तु नीचे कहीं कहीं यह सीम ३० फुट तक मोटी है। यहाँ पर खान सन् १८९८ ई० में खोली गई। पलाना क्षेत्र का कोयला "लिग्नाइट" वर्ग का है। इसका रंग काला भूरा है और इसके नमूनों में उद्भिज रेशे दिखलाई पड़ते हैं। यह कहा जाता है कि यद्यपि यहाँ का कोयला निकृष्ट श्रेणी का है परन्तु विशेष प्रयोगों द्वारा इस कोयले को सुधार कर उत्तम बनाया जा सकता है।

(४) आसाम प्रांत के कोयले के क्षेत्रः—इस प्रांत में कोयला पूर्वीय नागा पर्वत के उत्तर-पश्चिमीय ढाल पर लखीमपुर तथा शिवसागर जिलों में पाया जाता है। यहाँ का सब से बड़ा क्षेत्र मकूम है जो लगभग ४० मील लम्बा क्षेत्र है। इस क्षेत्र की सीमों की मोटाई अधिकतर ५० फुट है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त जयपुर, नज़ीरा, झाञ्जी और देसोय नामक क्षेत्र भी उल्लेखनीय हैं। यद्यपि यहाँ के कोयले में भी गन्धक का अंश अधिक है परन्तु वैसे यह कोयला बड़ा उत्तम है। यह कोयला बड़ा चमकदार होता है और इसकी विशेषता यह है कि जलने पर बहुत कम राख रहती है और कोक भी इससे अच्छा बन सकता है। मकूम क्षेत्र का प्रायः सब कोयला आसाम प्रान्त की रेलों में, ब्रह्मपुत्र नदी में चलने वाले स्टीमरों में तथा आसाम के चाय के कारखानों में काम आता है। बहुत सा कोयला पूर्वीय बङ्गाल को भी इन्हीं क्षेत्रों से भेजा जाता है।

(५) ब्रह्मदेश के क्षेत्रः—ब्रह्मदेश के उत्तरीय शान राज्य, और छिन्दविन, मरगुई और हेनजाड़ा इत्यादि जिलों में कोयला पाया जाता है परन्तु यह कोयला उत्तम श्रेणी का नहीं है।

उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त बम्बई की कच्छ रियासत में, सिन्ध प्रान्त में तथा हिमालय पर्वत के दक्षिणीय ढाल पर की अनेक पहाड़ियों में भी कुछ कोयला मिलता है।

भारतवर्ष में कोयले की उपजः—सन् १९३३ में भारत में करीब छः करोड़ रुपये का १,९७,८९,१६३ टन कोयला उत्पन्न हुआ जिसमें से १,९४,५६,२५४ टन गोंडवाना काल की शिलाओं में से निकाला गया और शेष तृतीय कल्प की शिलाओं से। इस प्रकार भारतीय कोयले का ९८·३३ प्रति शत भाग गोंडवाना काल का कोयला था। सन् १९३३ में भारतवर्ष से लंका, हाङ्गकाङ्ग इत्यादि बाहर के बन्दरगाहों को लगभग ४ लाख टन कोयला और कोक भेजा गया और आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, इङ्गलैंड तथा वेल्स इत्यादि से उस वर्ष करीब ६७ हजार टन कोयला भारत में मंगाया गया जिसका मूल्य साढ़े बारह लाख रुपया था। सन् १९३३ में भारतवर्ष के कोयलों की खानों में १ लाख ६३ हजार मनुष्य प्रतिदिन कार्य करते थे। भारतवर्ष के कुल कोयले के परिमाण का अनुमान ६० अरब टन लगाया गया है परन्तु इसका एक तिहाई भाग कोयले के निकालने में नष्ट हो जायगा। इस प्रकार कुल ४० अरब टन कोयला भारत में बचा है जिसमें से उत्तम कोक बनाने वाला कोयला केवल दो अरब टन है जो फौलाद इत्यादि के कारखानों के लिये उपयुक्त होगा। यह अनुमान किया जाता है कि इस देश में जितनी लोहे की खनिजें हैं

उन सब को शोधने के लिये जितने कोक की आवश्यकता होगी उतने कोक के लिये भी यह कोयला पर्याप्त नहीं है। भारत का कोयला केवल दो शताब्दियों में ही अथवा इस से पहले समाप्त हो जायगा ऐसा विचार कई भूगर्भ वेत्ताओं का है परन्तु उत्तम कोक प्रायः झरिया क्षेत्र के कोयले से ही बनाया जाता है और यह कोयला केवल ४० वर्ष में ही समाप्त हो जायेगा। इससे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि भारत में उत्तम कोयले के व्यय में तथा उसको खानों से निकालने में बहुत सावधानी रक्खी जाय वरना उपर्युक्त काल के पश्चात् भारत को अपने मुख्य उद्योग धन्धों में कोयले के लिये बाहरी देशों पर निर्भर रहना पड़ेगा सन् १९३३ में भारत में कोयले का उत्पादन इस प्रकार था :—

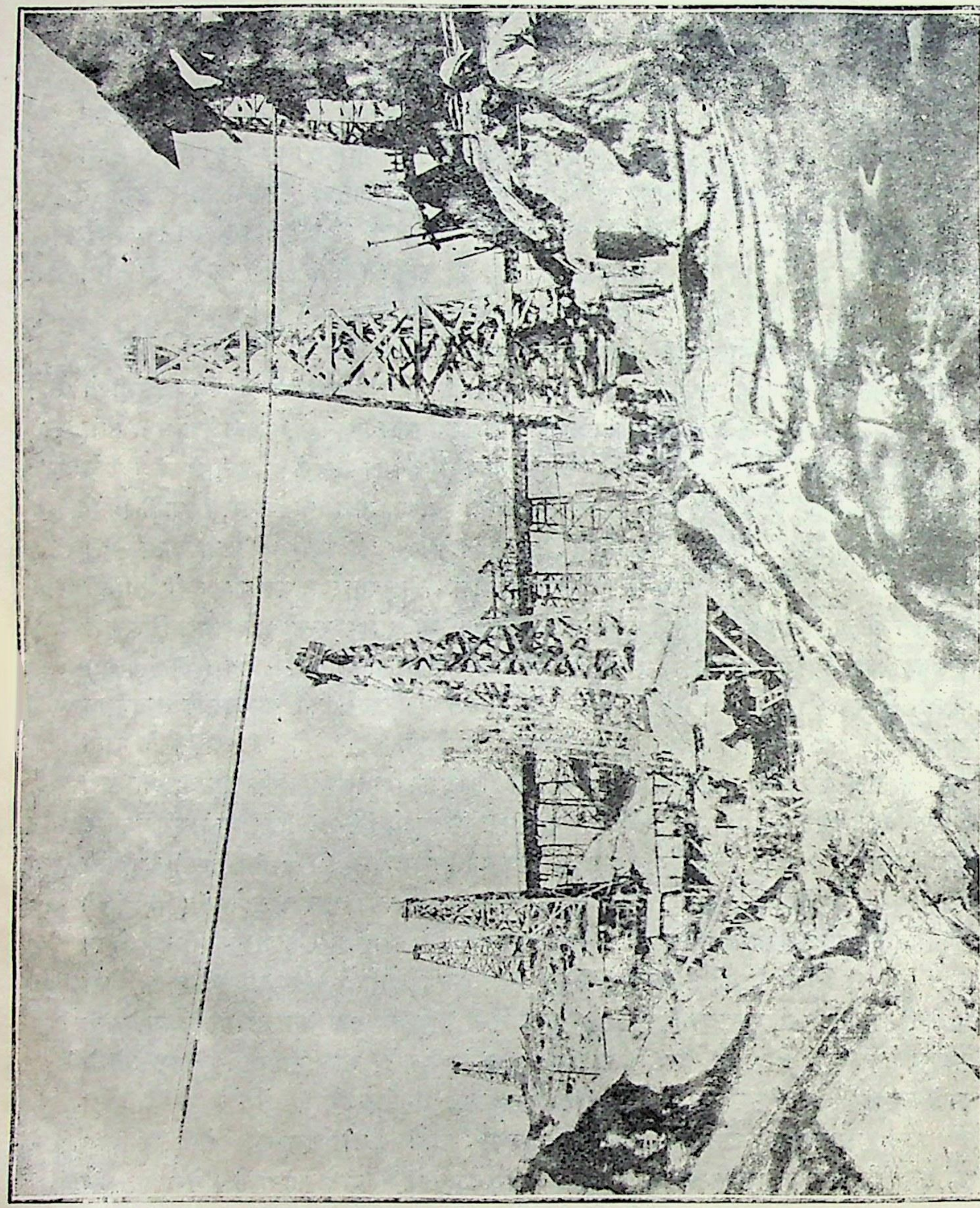
प्रान्त तथा क्षेत्र	कोयले का परिमाण	कोयले का मूल्य
बङ्गाल बिहार और उड़ीसाः—		
झरिया	८०१४६४९ टन	
रानीगंज	६२६५७०३ ”	
बुकारो	१३०४८६४ ”	४,६५,०६,८४५ रु०
गिरडी	६३५९२४ ”	
करनपुर	३४३८७६ ”	
अन्य क्षेत्र	३८३८५७ ”	
मध्य भारतः—		
सोहागपुर	१७२३९० ”	६,८८,१८२ ”
उमरिया	८०३७८ ”	
मध्य प्रान्तः—		
बलारपुर	२५६३५४ ”	
कोरिया	२६४२५७ ”	५६,४०,४३२ ”
पेञ्चघाटी	९७८१७९ ”	
रायगढ़ राज्य	२१३१ ”	
हैदराबाद	७५३४०२ ”	२५,७४,१११ ”
आसाम प्रान्त	१९४१५४ ”	१८,०२,०४२ ”
बिलोचिस्तान	११४६२ ”	७९,२३९ ”
पंजाब प्रान्त	९४०९९ ”	४,४५,६२९ ”
राजपूताना	३३१९४ ”	१,४६,६०३ ”
कुल उपज	१,९७,८९,१६३ टन	६,११,८६,०८३ रु०

(२) मिट्टी का तेल

मिट्टी का तेल अथवा खनिज तेल (Petroleum or mineral oil) का रंग प्राकृतिक दशा में सफेद, भूरा, पीला या काला तक हो सकता है। परन्तु अधिकतर उसका रंग कुछ हरा मिला हुआ भूरा होता है। कुछ तेल पतले और कुछ बहुत गाढ़े होते हैं। इन सब तेलों की गन्ध बहुत बुरी होती है। कहीं कहीं पर द्रव तेल, 'माल्था' नामक लसदार (Viscous) बिटुमन, और 'एस्फाल्ट' नामक ठोस बिटुमन, ये तीनों पदार्थ साथ-साथ मिलते हैं और उनके बीच कोई विशेष अन्तर साधारणतः दृष्टिगोचर नहीं होता। मिट्टी के तेल में कार्बन और हाईड्रोजन तत्वों के एक ही श्रेणी के अनेक रासायनिक सम्मेलन होते हैं। इस प्राकृतिक तेल को स्रवित (Distil) करके कैरोसीन, पेट्रोल, बेञ्जिन, इसप्रिट, ईथर इत्यादि अनेक पदार्थ तय्यार किये जाते हैं।

तेलदार शिलाओं की बनावटः—मिट्टी का तेल वैसे तो किसी भी समय की जलज शिलाओं में पाया जा सकता है परन्तु अधिकतर तृतीय कल्प की ही जलज शिलाओं में मिलता है। कारण कि ये शिलाएँ औरों से नई हैं जिससे पृथ्वी की आन्तरिक गर्मी तथा दबाव का इन पर अधिक प्रभाव नहीं हुआ है वरन् मिट्टी का तेल गैस इत्यादि के रूप में कभी का बाहर निकल गया होता। यह तेल प्रायः बालू, बालू के पत्थर, चिकनी मिट्टी के पत्थर तथा कहीं कहीं पर छिद्रदार (Porous) चूने के पत्थर में पाया जाता है। इन पत्थरों में भी छिद्रहीन पत्थरों की तहों के बीच में छिद्रदार पत्थर की तहों में मिट्टी का तेल मिला करता है। क्षितिज अथवा एक ओर को थोड़ी झुकी हुई जलज शिलाओं की तहों का निर्माण कहीं कहीं पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों और खिंचाव (Stress) तथा संकोचन (Compression) के बलों से जल की लहरों की बनावट के समान हो जाता है। यदि हम किसी मोटे काग़ज अथवा कपड़े के टुकड़े को फैलाकर उसके दोनों सिरों से बीच की ओर दबाने का प्रयत्न करें तो जिस प्रकार उसमें तरङ्गे पड़ जावेंगी उसी प्रकार जलज शिलाओं में पड़ जाती हैं। इन वक्र शिलाओं में उन्नतोदर भाग की बनावट एन्टीक्लाइन (Anticline) और नतोदर भाग की सिनक्लाइन (Syncline) कहलाती हैं। तात्पर्य यह कि एन्टीक्लाइन में शिलाओं की तहें बीच की एक अक्ष रेखा (Axis) के दोनों ओर बाहर को ढलवाँ होती हैं और सिन्क्लाइन में दोनों ओर से अक्ष-रेखा की ओर। कहीं कहीं पर शिलाओं का ढाल किसी बिन्दु से प्रत्येक दिशा में बाहर की ही ओर होता है ऐसी बनावट को गुम्बद (Dome) कहते हैं। गुम्बद की बनावट उल्टे कटोरे के समान होती है। मिट्टी के तेल के क्षेत्रों में तेल के मिलने की संभावना उन्हीं स्थानों में अधिक होती है जहाँ पर जलज शिलाओं की बनावट एन्टीक्लाइन या डोम के रूप में होती है। तेल कुछ नमकीन जल तथा कुछ गैसों के साथ प्रायः एन्टीक्लाइन की चोटी पर मिट्टी की तहों के बीच की बालू अथवा बालू के पत्थर की तहों में बन्द रहता है। तेल के इसी स्थान पर रहने का कारण यह है कि जिस समय जलज शिलाएँ टेढ़ी पड़ी होंगी उस समय तेल तथा उनके साथ के उपरोक्त पदार्थ अपने हल्केपन के कारण उन्नतोदर भाग के ऊपर एकत्रित हो गये होंगे।

तेल की उत्पत्ति :—मिट्टी के तेल की उत्पत्ति के विषय में रसायन शास्त्रज्ञों और

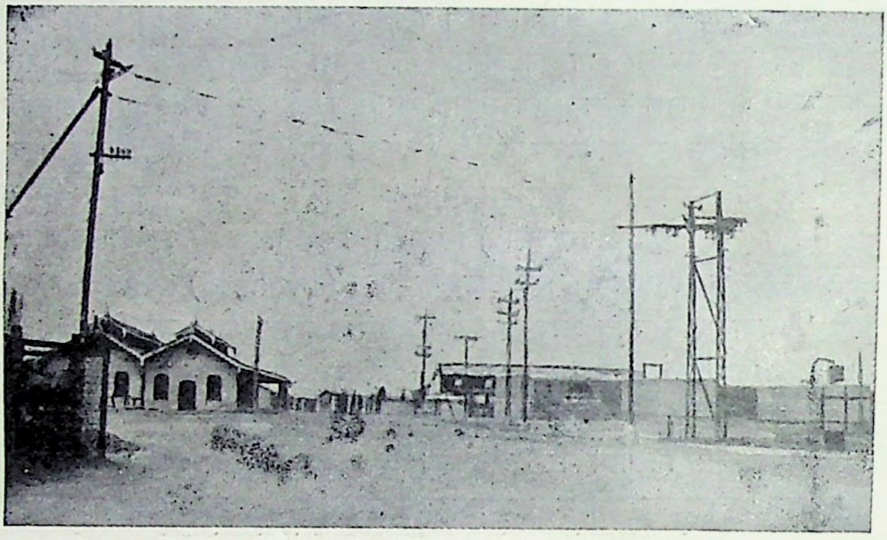


ब्रह्मदेश के मिंहुँ के तेल के कुओं का एक दृश्य (प्रो० राय की कृपा से प्राप्त)

भूगर्भ-वेत्ताओं के मतों में बहुत अन्तर है। रसायनशास्त्रज्ञों का कहना है कि मिट्टी का तेल जड़ (Inorganic) पदार्थों से उत्पन्न हुआ है। यह देखा गया है कि धातुओं के कार्बाइड, जैसे लोहे के कार्बाइड (लोहे और कार्बन का सम्मेलन) पर जल अथवा वाष्प के असर से कार्बन—हाइड्रोजन सम्मेलन श्रेणी की गैसें निकलने लगती हैं जो मिट्टी के तेल में भी पाई जाती हैं और साइकिल के लैम्पों में चूने के कार्बाइड पर जल की क्रिया से 'मीथेन' नामक गैस निकलने लगती है जो उपरोक्त श्रेणी की ही एक जलने वाली गैस है। इस कारण यह अनुमान किया गया है कि पृथ्वी के अन्तस्तल में लोहे इत्यादि धातुओं के कार्बाइड वर्त्तमान हैं। उन पर अतितप्त वाष्प की क्रिया से हाइड्रो—कार्बन जैसे निकल कर द्रव तेल बन जाता है। भूगर्भ-वेत्ताओं का कहना है कि यदि तेल इस प्रकार पृथ्वी के आन्तरिक भाग में बन कर उपर के वर्त्तमान स्थान पर आ गया है। तो जितने पुराने समय के अथवा नीचे के पत्थर होंगे उन में ही तेल अधिक मिलना चाहिए और नावों में कम। परन्तु वास्तव में इसके विपरीत पाया जाता है अर्थात् तुलनात्मक दृष्टि से नयी (तृतीय कल्प की) शिलाओं में ही तेल अधिक पाया जाता है। भूगर्भ वेत्ताओं के मत के अनुसार तेल की उत्तपत्ति चेतन (Organic) पदार्थों से हुई है। मिट्टी के तेल में प्रधानतः कार्बन और हाइड्रोजन ही तत्व हैं और वनस्पतियों और जीवों के निर्माण में भी इन्हीं दो तत्वों का बाहुल्य है। स्काटलैण्ड और अन्य कई देशों में चिकनी मिट्टी का एक प्रकार का जलज तहदार पत्थर मिलता है जिसको विशेष प्रकार से स्रवित करके मिट्टी का तेल निकाला जा सकता है। यह पत्थर तेलदार नहीं है परन्तु इसमें कोयले का अंश और मृतक जन्तुओं के अवयव बहुत हैं जिससे प्रत्यक्ष है कि उनसे ही तेल उत्पन्न हो जाता होगा। प्रयोगशाला में यह देखा गया है कि कोयले को स्रवित करके मिट्टी के तेल की गैसें और बिटुमन पदार्थ प्राप्त हो सकता है और मछली इत्यादि जीवों के अवयवों को स्रवित करके भी ये ही पदार्थ निकलते हैं। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि मिट्टी के तेल की उत्पत्ति कोयले के ही समान (परन्तु कुछ भिन्न दशा में) उद्भिज पदार्थों के बालू इत्यादि से दब जाने पर गर्मी और दबाव द्वारा परिवर्त्तन होने से हो सकती है अथवा समुद्रीय या स्थल के जन्तुओं के मृतक शरीरों से भी उसी प्रकार दब जाने पर मिट्टी का तेल बन जाने की सम्भावना है। इन दोनों में से किसकी सम्भावना अधिक है इस पर भूगर्भवेत्ताओं में भी मत भेद है। अस्तु।

तेल की स्थिति के कुछ चिन्हः—मिट्टी के तेल के बनने के लिए उपर्युक्त स्थान नदियों का प्राचीन डेल्टा (Delta) माना गया है। जहाँ पर कालान्तर में अब भूतल हो गया है। इसलिए इस समय मिट्टी के तेल के क्षेत्र आधुनिक समुद्र तट से कितनी भी दूर हो सकते हैं। किसी स्थान पर यदि पृथ्वीतल के कुछ नीचे मिट्टी का तेल होता है तो उसकी स्थिति निम्नलिखित चिन्हों से विदित होती है। तेल के क्षेत्रों में कहीं कहीं पर पृथ्वी तल पर किसी छिद्र या दरार में से कुछ गैस निकला करती है जो साधारणतः दृष्टि गोचर नहीं होती। हाँ, यदि उस स्थान पर जल एकत्रित हो तो गैस के निकलने से जल के ऊपर बुदबुदे (Bubbles) दिखाई देंगे। पंजाब प्रान्त में ज्वालामुखी नामक तीर्थ-स्थान के मन्दिर में इसी प्रकार की गैस निकल रही है। कहीं कहीं पर तेल चूता हुआ भी पाया जाता

है ऐसे स्थानों पर नदी और झील इत्यादि के जल के ऊपर अक्सर तेल की धनुष रंगी झिल्ली (Film) दिखाई दिया करती है। पाठकों ने अक्सर नदियों के किनारे से कुछ पीला सा जल निकलते हुए देखा होगा इस जल के साथ लोहे की उज्ञामय भस्म मिली होती है। इस भस्म की भी तेल के ही समान धनुष रंगी झिल्ली जल पर तैरने लगती है परन्तु यदि इन दोनों पदार्थों की झिल्लियों को लकड़ी से छूकर देखा जाय तो तेल की झिल्ली तो फट कर फिर एक हो जायगी परन्तु लोहे की भस्म की झिल्ली फटी ही रह

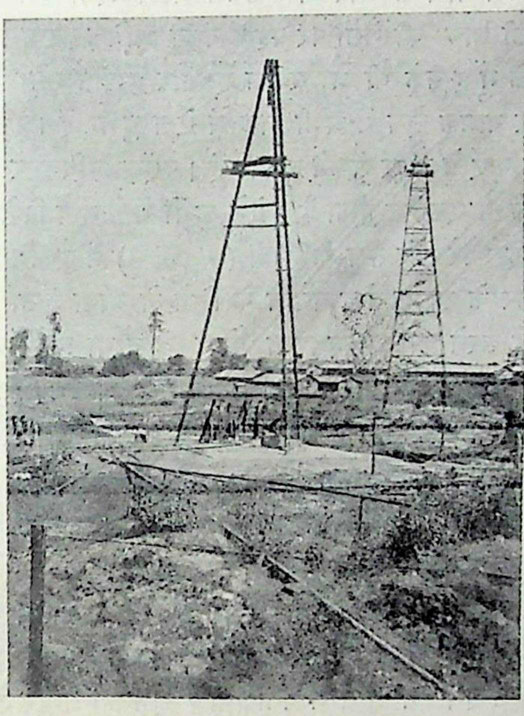


मिट्टी के तेल को शुद्ध करने के लिए सिरियम (ब्रह्मदेश) का कारखाना।
श्री चाँदमल की कृपा से प्राप्त

जायगी। तेल के अनेक क्षेत्रों में यद्यपि पृथ्वीतल पर बालू या मिट्टी के पत्थर से तेल निकलता हुआ नहीं मिलता परन्तु वहाँ के तेलदार पत्थरों को तोड़ने से मिट्टी के तेल की एक विशेष प्रकार की बू आया करती है जिसको अनुभव से सरलता पूर्वक पहचाना जा सकता है। कहीं कहीं पर तेल के क्षेत्रों में गैसों द्वारा पृथ्वी के नीचे से दरारों अथवा छिद्रों में होकर मिट्टी या रेत ऊपर को फेंका जाता है। यह मिट्टी या रेत पृथ्वीतल पर ऊँचे टीलों के रूप में एकत्रित हो जाता है। ऐसे टीलों को "मिट्टी के ज्वालामुखी" (Mud volcanoes) कहते हैं। ब्रह्म देश में अराकन नामक समुद्र-तट पर ऐसे ज्वालामुखी बहुत हैं। ये भी मिट्टी के तेल के द्योतक माने जाते हैं।

तेल निकालने की रीतिः—आरम्भ काल में मिट्टी का तेल साधारण कुएँ खोद कर जल के समान निकाला जाता था। इस प्रकार से केवल थोड़ी ही गहराई पर मिलनेवाला तेल, निकल सकता था। आधुनिक मशीन-युग में पाँच हजार फ़ीट से अधिक गहराई तक का तेल निकाला जा सकता है। तेल का कुआँ बनाने से पहले शिलाओं की तहों की एन्टीक्लाइन का निर्माण तथा उनकी मोटाई और ढाल के कोणों का बड़ी सावधानी से अध्ययन किया जाता है और फिर रेखागणित के सिद्धान्तों द्वारा यह अनुमान किया जाता

है कि किसी विशेष स्थान पर तेलदार बालू की तहें कितनी-कितनी गहराई पर होंगी। तत्पश्चात् एएटीक्लाइन की अक्ष रेखा से कुछ दूर कम ढलवां और एक प्रकार के विशेष बरमा (Drill) द्वारा बोरिङ्ग करके तेल का गहरा कुआँ बनाया जाता है। मिट्टी के तेलदार बालू की तह के ऊपर अन्य बालू और मिट्टी की तहें होती हैं। इन बालू की तहों में अक्सर अधोभौमिक (Underground) जल होता है। और ऐसी प्रत्येक तह के पानी को तेल के कुएँ में भर जाने से रोकने के लिये कुएँ में लोहे की नलिका लगानी पड़ती हैं। नलिकाओं का व्यास कुएँ के व्यास के ही बराबर होता है। ज्यों ज्यों नीचे जाते हैं त्यों-त्यों ऊपर की



डगबाई (आसाम) के मिट्टी के तेल के कुओं का दृश्य। कुओं के ऊपर की लकड़ी का निर्माण उनको बनाते तथा साफ करते समय काम आता है।

(श्री जी० चटर्जी की कृपा से प्राप्त)

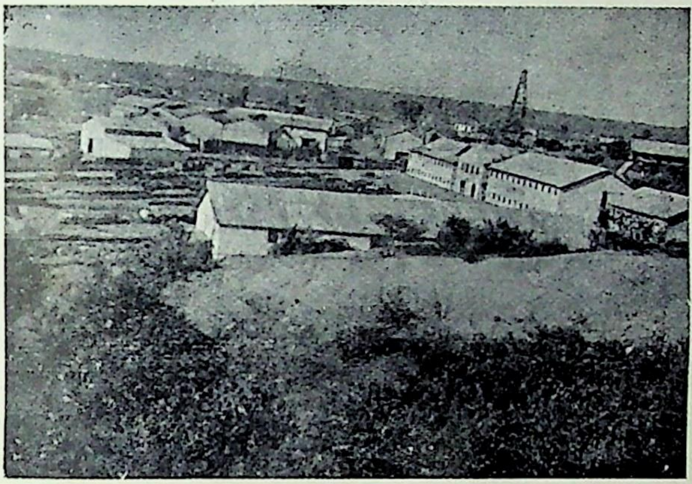
नलिका से कम व्यास की नलिका प्रयोग में लानी पड़ती है, क्योंकि प्रत्येक ऊपर की जलदार तह के लिये एक नलिका कुएँ की दीवार से सीमेन्ट द्वारा पहले ही सटा दी जाती है, तब कहीं और नीचे खोदना आरम्भ किया जाता है। इस प्रकार यदि कोई तेल का कुआं २००० फीट गहरा बनाना हो और पृथ्वीतल पर उसका व्यास अगर २४ इंच हो तो घटते-घटते अन्त में उसके पेंदे का व्यास ६ इञ्च के लगभग ही रह जाता है। बोरिङ्ग करते समय बरमा के नल में होकर एक विशेष प्रकार की पतली परन्तु भारी कीचड़ नीचे बराबर पहुँचाई जाती है जो नल और कुएँ की दीवार या उससे सटे हुए दूसरे नल के बीच में हो कर ऊपर वापस आती है। यह कीचड़ कुएँ की नई खोदी हुई दीवार को गिरने से रोकती है और

कुएँ को साफ भी रखती है। इसके अतिरिक्त इस कीचड़ के साथ नीचे कटनेवाली शिला के टुकड़ों के नमूने भी ऊपर आ जाते हैं जिनको देखकर स्थानीय भूगर्भवेत्ता यह जान सकता है कि इस समय बरमा किस तह को काट रहा है और अब तेलदार तह कितनी और गहराई पर पहुंच कर मिलेगी। इस प्रकार जब बरमा तेलदार तह तक पहुँच जाता है तो सब कुआँ लोहे की नलिकाओं से तथा सीमेन्ट से पुख़्ता कर दिया जाता है। कुएँ के बनने से तेल के ऊपर का दबाव कम हो जाता है, इस कारण बालू की तह में से आ आ कर तेल ऊपर कुएँ में एकत्रित होने लगता है। साधारण जल कूप के समान ऐसे कुएँ में से ज्यों-ज्यों तेल निकाला जाता है त्यों त्यों नीचे से और तेल उसमें आता रहता है। यदि किसी स्थान पर तेल पर अथवा उसकी साथ की गैसों पर पहले बहुत अधिक दबाव हो तो वहां पर कुआं बनाने पर तेल कुएँ के मुँह तक भी आ सकता है और पृथ्वीतल पर स्वयं बहने लगता है। अटक कम्पनी के खौर नामक क्षेत्र में अभी हाल में ऐसा हुआ है। कहीं कहीं ये गैसें तेल को फव्वारे की तरह स्वयं कुएँ से बाहर फेंकने लगती हैं। परन्तु अधिकतर कुओं में तेल पृथ्वीतल से कुछ फीट नीचे तक ही एकत्रित होता है। ऐसे कुओं में से तेल विशेष प्रकार से पम्प करके बाहर निकाला जाता है और फिर तेल के हौजों (Tanks) में एकत्रित करके वहां से स्रवित करके भिन्न भिन्न प्रकार के स्वच्छ तेल बनाने के लिये ले जाया जाता है। तेल के कुओं की प्रत्येक सप्ताह में सफाई करने की आवश्यकता होती है वरना इनमें बालू एकत्रित हो जाने अथवा ठोस बिटुमेन (मोम) जम जाने से इनके रुक जाने का डर रहता है।

भारतवर्ष के मिट्टी के तेल के क्षेत्रः—मिट्टी के तेल के भारतीय क्षेत्र केवल तीन प्राचीन खाड़ियों के स्थान पर वर्तमान हैं—ब्रह्मदेश, आसाम तथा पंजाब-बिलूचिस्तान। इन तीनों ही क्षेत्र-समूहों में तेल तृतीय कल्प की शिलाओं में और एन्टीक्लाइनदार स्थानों पर पाया जाता है। तेल की उत्पत्ति भी कदाचित एक ही प्रकार से हुई है। ब्रह्मदेश में तेल के क्षेत्र अराकनयोमा पर्वत की पूर्वीय और इरावदी नदी तथा उसकी शाखा छिन्न-विन्न की घाटियों में वर्तमान हैं। इन क्षेत्रों में विशेष उल्लेखनीय यनाङ्ग्याङ्ग, सिङ्गू, यनाङ्गयात और मिम्बू इत्यादि क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में यनाङ्ग्याङ्ग क्षेत्र सब से पुराना और अधिक प्रसिद्ध है। इसमें तेलदार शिलाएँ केवल डेढ़ वर्ग मील में ही मिलती हैं परन्तु फिर भी सन् १९३३ के अन्त में अकेले इसी क्षेत्र में ३०१७ कुएँ थे जिन में से तेल निकाला जा रहा था। इन में से कुछ कुएँ बहुत कम गहरे हैं जिस में से हाथों से तेल खींचा जाता है। ब्रह्मदेश में ४००० फीट से अधिक गहराई तक से तेल निकाला जाता है। इस देश में यद्यपि अनेक कम्पनियों के तेल की खानें हैं परन्तु उनमें से मुख्य 'इण्डोब्रह्मापेट्रोलियम' 'कम्पनी' और ब्रह्मा आइल कम्पनी' ही हैं। आसाम प्रान्त में विशेष महत्व के क्षेत्र लखीमपुर ज़िले में तथा खासी और जयन्ती पहाड़ियों के दक्षिणीय तले में हैं। इन क्षेत्र-समूहों के मालिकों में आसाम-आइल कम्पनी लिमिटेड ही प्रधान है। लखीमपुर ज़िले में डिगबाय नामक क्षेत्र सब से बड़ा और प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। यहाँ पर तेल लगभग ५००० फीट नीचे तक से निकाला जा रहा है। डिगबाय क्षेत्र की प्रतिदिन तेल की पैदावार करीब डेढ़ लाख टन है। इस क्षेत्र में प्राकृतिक तेल को स्वच्छ करके उससे अनेक प्रकार के तेल, और मोम जैसे पदार्थ बनाने का एक बड़ा कारखाना भी है। डिगबाय के अतिरिक्त कछार

ज़िले में सुर्मा नामक घाटी में बदरपुर क्षेत्र भी आसाम आइल कम्पनी का एक उन्नतिशील क्षेत्र है।

पंजाब-बिलूचिस्तान के क्षेत्र-समूहों में सब से बड़ी हानि यह हुई है कि यहाँ की तृतीय कल्प की शिलाएँ पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों से अति अधिक वक्र और स्तरभ्रंश हो गई हैं। जिसके कारण बहुत सा तेल, सोतों के रूप में गैस इत्यादि के साथ पहले ही बाहर निकल गया है। यही कारण है कि पंजाब के प्रसिद्ध स्थान ज्वालामुखी में यद्यपि तृतीय कल्प की ही तेल के साथ की शिलाएँ पाई जाती हैं परन्तु यह अनुमान किया जाता है कि अब उन शिलाओं में बहुत थोड़ा तेल रहा होगा। ज्वालामुखी के मन्दिर में इस



डिगबाय (आसाम) के मिट्टी के तेल के गोदाम और कारखाने का एक दृश्य।

(श्री जी० चटर्जी की कृपा से प्राप्त)

समय केवल तेल के साथ पाई जानेवाली गैस ही निकल रही है। पंजाब में तेल के सोते रावलपिण्डी, अटक, मियांवाली, शाहपुर इत्यादि ज़िले में बहुत मिलते हैं परन्तु मुख्य तेल का क्षेत्र केवल "खौर" ही है। खौर क्षेत्र रावलपिण्डी से ४३ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर है। यहाँ की शिलाओं के एन्टीक्लाइनदार निर्माण में काफी तेल मिलने की सम्भावना है। इस क्षेत्र का मालिक 'अटक आइल कम्पनी' है जो सन् १९१५ ई० से सफलता पूर्वक कार्य कर रही है। लेखक को झेलम ज़िले में खिउड़ा की नमक की खान के पास ही एक घाटी में बालू का तेलदार पत्थर मिला है परन्तु कदाचित् वहाँ अधिक तेल नहीं है। बिलूचिस्तान में भी यद्यपि तेल के सोते मारी पहाड़ी, मुग़ल कोट तथा अन्य कई स्थानों पर मिलते हैं परन्तु अभी तक खानों द्वारा निकाले जाने योग्य परिणाम में तेल नहीं मिला है। अभी यहाँ ब्रह्मा आइल कम्पनी अनुसन्धान में लग रही है कदाचित् किसी उपयुक्त क्षेत्र का पता लग जाय।

तृतीय खण्ड

इमारत बनाने के पदार्थ, उपयोगी मिट्टी और बालू तथा रंगकारक खनिजें

(१) इमारतों के लिये उपयोगी पत्थर

साधारण लोगों का यह विचार है कि प्रायः सब पत्थरों से अच्छी पुख़्ता इमारत बन सकती है जो शताब्दियों तक खड़ी रह सके। परन्तु यह केवल भ्रम है। कई पत्थर लकड़ी से भी कम टिकाऊ होते हैं। पत्थरों के क्षय होने का मुख्य कारण वर्षा का जल होता है। यह जल गिरते समय वायुमण्डल से कार्बोनिक एसिड गैस (कार्बन और आक्सीजन तत्वों का सम्मेलन) घोल लाता है। जिन पत्थरों के कण चूनेदार अवयव से जकड़े हुए होते हैं। उनके चूने को यह पानी घोलकर शीघ्र ही पृथक कर देता है और इस कारण उन पत्थरों के कण बिखरने आरम्भ हो जाते हैं। इसी प्रकार पत्थरों के चूनेदार या खारीय बलुआदार खनिजों को (जो साधारणतः जल में अनघुल होती हैं) चूने या सोडा के कार्बोनेट के रूप में परिवर्तित करके यह जल घोल ले जाता है। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े नगरों के वायुमण्डल में फैक्टरी इत्यादि से निकली हुई नमक तथा गंधक-तेज़ाब की गैसें अक्सर मिली रहती हैं जो वर्षा जल के साथ पत्थरों पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहतीं। इमारतों के पत्थर हवा और आँधी से भी बराबर घिसा करते हैं। इनके द्वारा उन पर सदा रेत के कणों की बौछार होती रहती है। इन शक्तियों के अतिरिक्त पत्थरों के भिन्न-भिन्न अवयवों के नित्य दिन में गर्मी से बढ़ने तथा रात्रि के समय ठण्ड से सिकुड़ने के कारण इमारतों की दीवारें कमज़ोर हो जाती हैं और ये गिरने लगती हैं।

इमारतों के पत्थरों की उत्तमता परखने के लिये वैसे तो अनेक इञ्जीनियरिंग के नियम हैं परन्तु साधारणतया किसी पत्थर की उपयोगिता उसकी दबाव सहने की शक्ति (Crushing strength) रंध्रविशिष्टता (Porosity) तथा उसके कणों को जकड़ने वाले पदार्थ पर जल का प्रभाव देखकर सरलता से जानी जा सकती है। इन में से प्रथम परीक्षा एक मशीन द्वारा की जाती है जिससे पत्थर का विशेष आकार का टुकड़ा कितने दबाव पर टूट जाता है यह मालूम हो जाता है। यदि किसी पत्थर के टुकड़े को तौलकर और फिर उसी को जल में डुबो रखने के पश्चात् तौला जाय तो इस बार जितना अधिक वज़न बढ़ेगा वह उस पत्थर की रंध्रविशिष्टता का द्योतक होगा। पत्थर पर जल का प्रभाव उसको २४ घंटे तक पानी में डुबाये रखकर मालूम हो सकता है। उस समय के बाद जल

को यदि खूब हिलाया जाय तो जितना अधिक कमज़ोर पत्थर होगा उतना ही पानी अधिक गंदला हो जायगा।

इमारत के लिये उपयुक्त पत्थर—सब से उत्तम पत्थर ग्रेनाइट (Granite) अथवा अन्य आग्नेय शिलाएँ हैं। आग्नेय शिलाओं पर जल का प्रभाव बहुत धीरे-धीरे पड़ता है और इन में जल प्रविष्ट भी बहुत कम होता है क्योंकि इनकी रंध्रविशिष्टता बहुत



संगमरमर की खान दान्ता राज्य (प्रो० के० के० माथुर की कृपा से)

कम है। परन्तु यह शिलाएँ प्रायः पर्तहीन होती हैं और बहुत कड़ी होती हैं जिनसे उनको काटने-छाँटने में अधिक मेहनत पड़ती है। जलज चूने के पत्थर और संगमरमर (परिवर्तित चूने का शुद्ध पत्थर) हल्के, सुन्दर और बहुत नरम होने के कारण अधिक प्रयोग में आते हैं। परन्तु अन्य पत्थरों के मुकाबिले में ये पत्थर कम टिकाऊ होते हैं। किसी उद्योग कारखाने वाले शहर में तो इनकी बनी हुई इमारतें शीघ्र ही क्षय हो जाती हैं क्योंकि ऐसे नगरों के वायुमण्डल में जो तेज़ाबी गैसें हैं वे इन पत्थरों को शीघ्र ही जल की सहायता से खा जाती हैं। इमारतों के पत्थरों में सब से अधिक प्रचलित बालू का पत्थर है। यह पत्थर न तो ग्रेनाइट जैसा अधिक कड़ा और न चूने के पत्थर जैसा अति नरम और शीघ्र क्षय होने वाला ही होता है। इसके अतिरिक्त बालू का पत्थर तहदार भी होता है जिसके कारण इसकी पतली पतली पटियाँ सरलता से बनाई जा सकती हैं। सबसे उत्तम बलुआ पत्थर वह गिना जाता है, जिस में बालू या रेत के अतिरिक्त अन्य पदार्थ बहुत कम हों। जिस पत्थर में बालू के कण लोहे की उज्जमय भस्म से जकड़े हुये हों वह पत्थर भी

अच्छा है परन्तु जिसमें चूनेदार सीमेन्ट हो वह निकृष्ट श्रेणी का माना जाता है। बालू के पत्थरों का सुर्ख अथवा पीला रंग उसके लोहे दार अवयवों के कारण ही होता है।

उपयुक्त शिलाओं के अतिरिक्त इमारतों की छतों के पाटने में खपरैल की जगह स्लेट भी प्रयोग में आती है। स्लेट की उत्पत्ति जलज मिट्टी की पतली तहदार शिलाओं से है। यह शिलाएँ पृथ्वीतल से नीचे पहुंचकर दबाव द्वारा परिवर्तित होकर स्लेट बन जाती है।

भारतवर्ष के इमारत के पत्थरों का वृतान्तः—इस देश के भिन्न भिन्न स्थानों में जो पास में सबसे उपयुक्त पत्थर होता है उसी का उपयोग इमारतों में कर लिया जाता है। इस प्रकार मद्रास प्रान्त तथा मैसूर राज्य में ग्रेनाइट और चारनोकाइट (Charnockite) नामक स्थानीय आग्नेय शिलाएँ ही अधिकतर काम में लाई जाती हैं। भारत के अन्य दक्षिणी तथा मध्य भाग में प्रथम कल्प से भी पूर्व समय के स्लेट और चूने के पत्थर तथा द्वितीय कल्प के अन्त समय के ज्वालामुखीय बेसाल्ट (Basalt) नामक काले पत्थर की ही इमारतें बनाई जाती हैं। मध्य भारत, मध्यप्रान्त तथा संयुक्त प्रान्त में प्रथम कल्प के आरम्भ में बने हुए विन्ध्याचल पर्वत के बालू और चूने के पत्थरों का इमारतों में बहुत प्रयोग होता है। इस पर्वत में बालू के लाल पत्थर का बड़ा भारी जमाव है जो इमारतों के लिये अति उत्तम प्रमाणित हुआ है। मिर्ज़ापुर, चुनार, कटनी, इन्दौर, ग्वालियर, बून्दी इत्यादि अनेक स्थानों पर इस पत्थर की खानें हैं जिनसे निकला हुआ पत्थर बहुत दूर-दूर तक जाता है। बंगाल प्रान्त और उसके पास के कोयले के क्षेत्रों में गोंडावाना काल के (मुख्यतः बराकर श्रेणी के) बालू के पत्थरों की ही इमारतें अधिक बनाई जाती हैं। काठियावाड़ में जूनागढ़ और पोर बन्दर रियासतों के चूने का पत्थर तथा धरङ्गधरा रियासत का बालू का पत्थर ही अधिक प्रचलित है। उड़ीसा, मध्य प्रान्त तथा मध्य भारत में लेटराइट नामक शिला भी इमारत के काम में आती है। इस पत्थर में एक विशेष गुण यह है कि खान से निकलते समय यह बहुत नरम होता है परन्तु वायु में रहने से कड़ा हो जाता है। इसी कारण से ताज़ी लेटराइट की दीवार स्वयं ही सीमेन्ट बिना पुख्ता हो जाती है।

उपर्युक्त शिलाओं के अतिरिक्त यू० पी०, पंजाब इत्यादि प्रान्तों में कंकड़ नामक चूने का पदार्थ भी इमारतों में काम आता है। कंकड़ प्रायः प्रचीन कछार (Alluvium) में जल द्वारा लाया जाकर एकत्रित किये हुए चूने के कणों से बना है। इसका रासायनिक सङ्गठन चूने के जलज पत्थर के ही समान है। खपरैल के लिए स्लेट हिमालय पर्वत की काङ्गड़ा घाटी, अल्मोड़ा, और गढ़वाल ज़िलों में तथा गुड़गाँव ज़िले में रेवाड़ी नामक स्थान पर पाई जाती है। बिहार के मुंगेर ज़िले में भी अच्छी स्लेट निकलती है।

उत्तम भवनों के लिये भारतीय पत्थरः—भारतवर्ष प्राचीन समय से ही ताजमहल जैसे उत्तम भवनों के निर्माण और कारीगरी के लिए प्रसिद्ध रहा है। कदाचित इसका एक कारण यह है कि इस देश में ऐसें पत्थरों की कमी नहीं है जो पालिश होकर सुन्दरता में किसी विदेशीय पत्थर से टक्कर ले सकते हैं परन्तु फिर भी यहाँ बाहर से

साढ़े सात लाख रुपयों के इमारत के पत्थर प्रतिवर्ष आते हैं। भारत में निम्नलिखित स्थानों के पत्थर पालिश करने पर उत्तम सिद्ध हो चुके हैं।

जोधपुर राज्य के मकराना नामक स्थान का शरबती, सफेद तथा अन्य कई रंगों का संगमरमर पत्थर।

अजमेर, किशन गढ़, जयपुर, अलवर, दान्ता, पटियाला इत्यादि रियासतों के संगमरमर अथवा और दो एक प्रकार के और पत्थर।

मध्य प्रान्त के जबलपुर इत्यादि ज़िलों का संगमरमर। बड़ौदा राज्य के मोतीपुरा नामक स्थान का हरा संगमरमर।

जैसलमेर रियासत तथा ग्वालियर के "बाघ" नामक स्थान के चूने का लाल-पीला और हरा मिला हुआ पत्थर।

इन संगमरमर के बीच में खोदकर टुकड़े सटाने के लिए भारत के अनेक स्थानों की आग्नेय शिलाएँ और खनिजें पालिश हो सकती हैं।

दक्षिणीय भारत के शरबती लाल और भूरे रंग के ग्रेनाइट भी अच्छी तरह पालिश हो सकते हैं परन्तु यह अधिक कड़े होते हैं जिसके कारण पालिश करने में कठिनता पड़ती है।

भारत की कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक इमारतों के पत्थरः—ताजमहल का संगमरमर मकराने (जोधपुर) का है। जैसलमेर और साल्टरेंज (पंजाब) के चूने के पत्थरों के टुकड़े, उदयपुर की काली मिट्टी की शिला के टुकड़े, जयपुर की तांबे की हरी खनिज (मेलेकाइट) के टुकड़े तथा ग्वालियर और मध्यप्रान्त के रंग बिरंगे रवाहीन स्फटिक के टुकड़े ताजमहल के संगमरमर में जड़े हुए हैं। कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल भी मकराने के संगमरमर का ही बना हुआ है।

विन्ध्याचल पर्वत के बालू के पत्थर की इमारतें तो अनेक स्थानों पर मिलती हैं। अशोक महाराजा के बहुत से लाट (कहीं कहीं पालिश किये हुये) काशी की मुख्य ऐतिहासिक इमारतें, फतहपुर सीकरी और भरतपुर की इमारतें, देहली और लाहोर की जुम्मा मसजिदें तथा आगरे और देहली के प्रसिद्ध क़िले विन्ध्याचल पर्वत के लाल बलुआ पत्थर से ही बने हैं।

मद्रास में गंजाम, त्रिचनापली, मैसूर तथा दक्षिण के अनेक स्थानों पर प्राचीन मन्दिर ग्रेनाइट शिला के बने हैं। गया के कुछ मन्दिरों का फर्श तथा पुरी की कुछ मूर्तियाँ भी इसी प्रकार के पत्थरों की बनाई गई हैं।

अजन्ता एलोरा और एलीफेन्टा की प्रसिद्ध गुफाएँ बेसाल्ट नामक काले आग्नेय शिला में बनी हुई हैं। ग्वालियर राज्य की "बाघ" नामक स्थान की पाण्डावों की गुफाएँ स्थानीय चूने के पत्थर से बनी हैं जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

भारत में इमारतों के पत्थर की उत्पत्तिः—यद्यपि ऐसे पत्थरों की उत्पत्ति का ठीक-ठीक व्योरा मिलना कठिन है परन्तु जहाँ तक पता चला है सन् १९३३ ई० में भारत में इमारतों के लिए मुख्य-मुख्य पत्थर इस प्रकार निकाले गये थेः—

नाम पत्थर	परिमाण टनों में	मूल्य रुपयों में	प्रान्तों के नाम जहाँ से निकाला गया
ग्रेनाइट	१५,८६,४६२	१६,१६,४१३	ब्रह्मा, आसाम, बङ्गाल, बिहार, माध्यप्रान्त, मद्रास, पंजाब, यू० पी०, मैसूर।
बलुआ पत्थर	३,४७,०६३	८,४१,३२५	ब्रह्मा, आसाम, बिहार, मध्य भारत, यू० पी०, राजपूताना।
चूने का पत्थर और कंकड़	३१,४३,०३६* (* इन आँकड़ों में सीमेन्ट के लिये निकाले हुए पत्थर का परिमाण तथा मूल्य भी सम्मिलित है)	४०,२६,८४२*	उपर्युक्त सब स्थानों में तथा मद्रास, मैसूर, मध्यप्रान्त, पंजाब, उत्तर, पश्चिमीय देश तथा बिलूचिस्तान में भी।
लेटेराइट	२,१८,१४५	२,२२,६७७	ब्राह्मा, आसाम, बिहार, मध्य-प्रान्त, बम्बई, मद्रास, मैसूर।
संगमरमर	४,७५२	१,६१,७०६	राजपूताना।
स्लेट	११,३७७	१,६०,३८७	बिहार, यू० पी०, पंजाब, राजपूताना मैसूर।
बेसाल्ट	४,३५,०८२	५,८६,३६७	बिहार, बम्बई, मद्रास।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि भारत में उत्तम श्रेणी के इमारतों के योग्य पत्थर रहते हुए भी यहाँ पर इटली इत्यादि देशों से संगमरमर तथा अन्य अच्छे पत्थर मंगाये जाते हैं। इसका मुख्य कारण यही मालूम होता है कि इस देश में अभी तक कोई ऐसी बड़ी कम्पनी नहीं खुली जो संगमरमर जैसे पत्थरों को भिन्न-भिन्न प्रकार की पटियों और टुकड़ों के रूप में स्वयं पालिश करके ग्राहकों के लिये रक्खे जिससे भवन बनाते समय उसके मालिक को पत्थरों के पालिश करने का झंझट और व्यय न करना पड़े। इटली इत्यादि देशों के पत्थरों में यही सुविधा रहती है, भारत में पत्थरों को पालिश करने के पदार्थों की भी कमी नहीं है उदाहरणतः गारनेट (garnet) नामक कड़ी खनिज अनेक स्थानों पर मिलती है जिसके बुरादे से संगमरमर का अच्छी तरह पालिश किया जा सकता है। परन्तु पालिश करने के पदार्थ बनाने के लिये भी अभी भारत में कोई कम्पनी नहीं है।

(२) चूना और सीमेंट के लिये पत्थर

भिन्न-भिन्न प्रकार के सीमेन्ट—सीमेन्ट दो प्रकार के होते हैं। एक तो केवल कुछ पत्थरों को जलाकर उनसे कार्बोनिक एसिड गैस निकाल देने से ही बन जाते हैं।

ये सीमेन्ट प्रयोग किये जाने पर फिर उपर्युक्त अवयवों को वापिस पाकर ठोस हो जाते हैं। और वे इमारत के पत्थरों को जकड़ देते हैं। इस प्रकार के सीमेन्टों में चूने का साधारण सीमेन्ट, 'पेरिस-प्लास्टर' सीमेन्ट इत्यादि आते हैं। दूसरे प्रकार के सीमेन्टों के लिये दो तीन पत्थरों को मिलाकर भट्टियों में जलाया जाता है जिससे उनके संयोग से कुछ नये रासायनिक सम्मेलन बन जाते हैं। ये सम्मेलन अस्थायी होते हैं और जल और वायु के संसर्ग से शीघ्र ठोस पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार इस श्रेणी के सीमेन्टों के ठोस होने का कारण प्रथम श्रेणी के सीमेन्टों से कुछ भिन्न है। इस श्रेणी में जल के भीतर उपयोग होने वाले सीमेन्ट तथा 'पोर्टलैन्ड' सीमेन्ट सम्मिलित हैं।

साधारण सीमेन्ट केवल चूने के पत्थर या कंकड़ को जलाने से बन सकता है। १४००° से १६००° (डिग्री) तक के टेम्प्रेचर पर चूने के पत्थर में से कार्बोनिक एसिड गैस निकल जाती है और केवल चूना रह जाता है। जब इस चूने में जल मिला दिया जाता है तो वह बुझा हुआ चूना कहलाता है। बुझे हुए चूने में बालू मिलाकर चूने का सीमेन्ट बन जाता है। इस चूने को जब इमारतों में लगाया जाता है तो यह वायु मण्डल से कार्बोनिक एसिड गैस खींच लेता है और फिर पहले जैसा चूने का ठोस पत्थर बन जाता है। पतले पदार्थ से ठोस पदार्थ बनने में बहुत अधिक सिकुड़न होने के कारण चूने में सूखकर दरारें हो जाने की सम्भावना होती है। इसी कारण उसमें बालू मिलाया जाता है जिस से बालू के कण चूने को अधिक सिकुड़ने न दें।

पेरिस प्लास्टर हरसोठ (Gypsum) नामक खनिज को जलाकर बनता है। हरसोठ (चूना और गंधक के तेज़ाब का उज्जमय सम्मेलन) को अधिक जलाने पर उसका जल का अंश बिल्कुल निकल जाता है और एनहाइड्राइट (Anhydrite) (चूना और गंधक के तेज़ाब का जलहीन सम्मेलन) नामक खनिज रह जाती है। पेरिस प्लास्टर बनाने में हरसोठ को केवल १६०° डिग्री तक ही जलाते हैं। इस कारण उस से कुल जल का अंश नहीं निकलता और हरसोठ और एनहाइड्राइट के बीच का एक अस्थायी पदार्थ बन जाता है। यह पदार्थ जल के संसर्ग से शीघ्र ही ठोस पदार्थ (हरसोठ) में परिवर्तित हो जाता है परन्तु उसके साथ पानी मिलाने में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है क्योंकि अधिक जल से हरसोठ के कण बिखरे हुए बनेंगे जिससे प्लस्टर ठीक प्रकार से न होगा।

जल के भीतर प्रयोग में आने वाले चूने के "रोमन" नामक सीमेन्ट मिट्टीदार चूने के पत्थरों से बनाये जाते हैं, जिनमें मिट्टी का अंश २३ से ३५ प्रतिशत होता है। मिट्टी एल्यूमीनियम की भस्म बालू और जल के सम्मेलन के रूप में होती है। मिट्टीदार चूने के पत्थरों को भट्टी में जलाने पर पहले उनमें से १४००° से १५००° (डिग्री) पर कार्बोनिक एसिड गैस निकलती है। फिर १६५०° (डिग्री) के लगभग कुछ चूना मिट्टी में के एल्यूमीनियम के अवयवों से तथा २०००° से २६५०° पर शेष चूना मिट्टी में के बालू के अवयवों से मिल जाता है और भिन्न-भिन्न रासायनिक पदार्थ बन जाते हैं। यदि इन

रासायनिक परिर्वतनों के पश्चात् भी कुछ चूना शेष रह जाय तो वह सीमेन्ट के लिए जल में प्रयोग करते समय हानिकारक होता है। इसलिए जितना कम चूना शेष रहे उतना ही अच्छा है।

"पोर्टलैण्ड" सीमेन्ट में उपरोक्त शेष चूने का भाग और भी कम होता है। यह सीमेन्ट खूब बारीक पिसे हुए चूने के पत्थर को और चिकनी मिट्टी के पत्थर को मिला कर बनाया जाता है। उत्तम सीमेन्ट के लिये ३ भाग चूने का पत्थर और १ भाग मिट्टी का पत्थर लिया जाता है और इनके मिश्रण को भट्टी में २६००° से ३०००° तक जलाया जाता है। इस टेम्प्रेचर पर चूने के कई रासायनिक सम्मेलन बन जाते हैं जिन में प्रधान सम्मेलन चूना और एल्यूमीनियम के और चूना और बालू के होते हैं। यह अति आवश्यक है कि चूना और मिट्टी के पत्थर ठीक-ठीक परिमाण में ही मिलाये जाँय, जिससे अन्त में चूना बिल्कुल न बचे। इस क्रिया के पश्चात् चूने के उपरोक्त नये सम्मेलन को फिर बारीक पीसा जाता है और उनके साथ लगभग ५ प्रतिशत भाग हरसोठ का मिलाया जाता है।

भारतवर्ष में सीमेन्ट के लिये उपयोगी खनिज तथा पत्थरः—भारत के अनेक स्थानों पर चूने का पत्थर स्वयं ही ऐसे रासायनिक सङ्गठन का होता है कि उस में मिट्टी बहुत कम मिलाने की आवश्यकता रह जाती है। उदाहरण के लिये ग्वालियर की कम्पनी सीमेन्ट के लिये स्थानीय चूने के पत्थर के साथ केवल एक ही प्रतिशत मिट्टी मिलाती है। बून्दी की सीमेन्ट फैक्टरी में मिट्टी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वहाँ पर भिन्न-भिन्न श्रेणी के मिट्टीदार चूने के पत्थर को ही आपस में मिलाकर उपयुक्त रासायनिक सङ्गठन कर लिया जाता है। विन्ध्याचल पर्वत में उत्तम श्रेणी के चूने के पत्थरों का बड़ा भारी जमाव है। यह जमाव तथा भारत के अन्य स्थानों के चूने के पत्थरों के जमाव प्रायः रेलवे लाइन के पास ही पाये जाते हैं। इस कारण भारतीय सीमेन्ट के सब कारखाने प्रायः चूने के पत्थरों की खानों के पास ही खोले गये हैं। सीमेन्ट के सब कारखाने हरसोठ पंजाब की खेउड़ा नामक नमक की खान से ही मंगाते हैं। यद्यपि हरसोठ की मात्रा थोड़ी ही मंगानी पड़ती है तथापि इस खनिज के लिये रेलभाड़ा काफ़ी पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त प्रायः सब कारखाने कोयले के क्षेत्रों से इतनी अधिक दूरी पर हैं कि कोयले के लिये उनको बहुत व्यय करना पड़ता है। यही कारण है कि भारत का भीतरी भाग यद्यपि भारतीय कारखानों का ही सीमेन्ट प्रयोग करता है परन्तु यहाँ के समुद्रीय किनारे के (कलकत्ता, बम्बई, कराची इत्यादि) मुख्य नगरों में विदेशी सीमेन्ट ही सस्ता पड़ता है। सन् १६३३ ई० में ६१३६१४ टन सीमेन्ट बनाया गया था और उस वर्ष इससे नवाँ भाग बाहर से मंगाया गया था।

साधारण चूने का सीमेन्ट बनाने के लिये मध्य प्रान्त और राजपूताना में चूने के परिवर्तित पत्थरों का, पंजाब में चूने की जलज शिलाओं का तथा संयुक्त प्रान्त में कंकड़ों का बहुत जमाव है।

भारत में सीमेन्ट बनाने के निम्नलिखित कारखाने प्रसिद्ध हैं:—

प्रान्त	स्थान	कम्पनी का नाम
मध्य प्रान्त ...	कटनी	कटनी सीमेन्ट और इण्डस्ट्रीयल कं० लि०
	महगाँव (कटनी)	यूनाइटेड सीमेन्ट कं० लि०
	कैमूर (कटनी ।	सी० पी० पोर्टलैण्ड सीमेन्ट कं० लि०
बिहार ...	जापला (ई० आई० आर०)	सोनवेली पोर्टलैण्ड सीमेन्ट कं० लि०
	राय (जि० रांची)	द्वारकानन्द सीमेन्ट कं० लि०
मध्य भारत ...	बनमोर (ग्वालियर)	ग्वालियर सीमेन्ट कं० लि०
राजपूताना ...	लखेरी (बून्दी)	बून्दी पोर्टलैण्ड सीमेन्ट कं० लि०
हैदराबाद राज्य	शाहाबाद	शाहाबाद सीमेन्ट कं० लि०
काठियावाड़ ...	पोरबन्दर	इण्डियन सीमेन्ट कं० लि०
	द्वारिका	ओखा सीमेन्ट कं० लि०
पंजाब ...	वाह (अटक)	पंजाब पोर्टलैण्ड सीमेन्ट कं० लि०
मद्रास ...	वाशरमेन पेट	साउथ इण्डिया इण्डस्ट्रीयल कं० लि०

(३) उपयोगी मिट्टियाँ

मिट्टी की उत्तमता इस बात में है कि वह गीली होने पर इतनी मुलायम हो जाय कि उसको किसी भी शक्ल में बना सकें। आधुनिक वैज्ञानिकों का विचार है कि मिट्टी और रेत में रासायनिक अन्तर बहुत कम है। यद्यपि साधारणतः रेत में मुक्त सिलीका (बालू) अधिक होता है और मिट्टी में सिलीका और एल्यूमीनियम का सम्मेलन। मिट्टी के कणों का व्यास $\frac{१}{२००}$ इञ्च से भी छोटा होता है। बालू के कण प्रायः $\frac{१}{२५}$ से $\frac{१}{२००}$ इञ्च के व्यास के होते हैं। गीली मिट्टी इतनी मुलायम क्यों हो जाती है इस के कारण का ठीक पता वैज्ञानिकों को भी अभी नहीं लगा है।

साधारण मिट्टी के पत्थर, अन्य पुराने पत्थरों के टूटने पर उनके छोटे छोटे कणों की तह जल में एकत्रित हो जाने से, बनते हैं। मिट्टी की प्रधान उपयोगिता इसलिये है कि उसको तप्त करने पर उसके कुछ अवयव पिघल जाते हैं। और ठण्डे होकर फिर ठोस

बन जाने में वे मिट्टी के अन्य अवयवों को सीमेन्ट के समान जकड़ देते हैं। इसी गुण के कारण मिट्टी से ईटें, वर्त्तन, चीनी के बढ़िया वर्त्तन तथा अन्य हज़ारों पदार्थ बन सकते हैं।

(१) साधारण ईंटों के उपयुक्त मिट्टी:—मामूली ईंटें मिट्टी को थोड़े ही टेम्प्रेचर तक जलाने पर बन जाती हैं। इस कारण इन ईंटों के लिये अधिक ईंधन की आवश्यकता नहीं होती। ये ईंटें अधिक टेम्प्रेचर नहीं सह सकतीं। यदि ऐसी ईंटों की बनी भट्टी को अधिक तप्त किया जाय तो उसकी ईंटें शीघ्र ही पिघल जायेंगी और इस प्रकार स्वयं भट्टी ही खराब हो जायगी। साधारण ईंटें प्रायः इमारतों के बनने में ही काम आ सकती हैं। इन ईंटों के लिये भी उत्तम मिट्टी वह मानी जाती है जिसमें ४५ प्रतिशत एल्लूमीनियम सिलीकेट, (एल्यूमीनियम और बालू का सम्मेलन) ३५ प्रतिशत मुक्त सिलीका (बालू), ३—६ प्रतिशत लोह-भस्म, ३—८ प्रतिशत चूने का कार्बोनेट, १—४ प्रतिशत मेग्नेशिया, ३—६ प्रतिशत पोटाश अथवा सोडा (खार) और ४—६ प्रतिशत जल हो। जिस मिट्टी में उपरोक्त परिमाण से एल्यूमीनियम सिलीकेट अधिक होता है उसकी ईंटें जल कर बहुत छोटे आकार की रह जाती हैं। यदि मिट्टी में बालू का अंश अधिक हो तो उसकी ईंटें शीघ्र टूटने लगती हैं। ईंटों का लाल या पीला रंग मिट्टी में लोह-भस्म के अवयवों के कारण हुआ करता है।



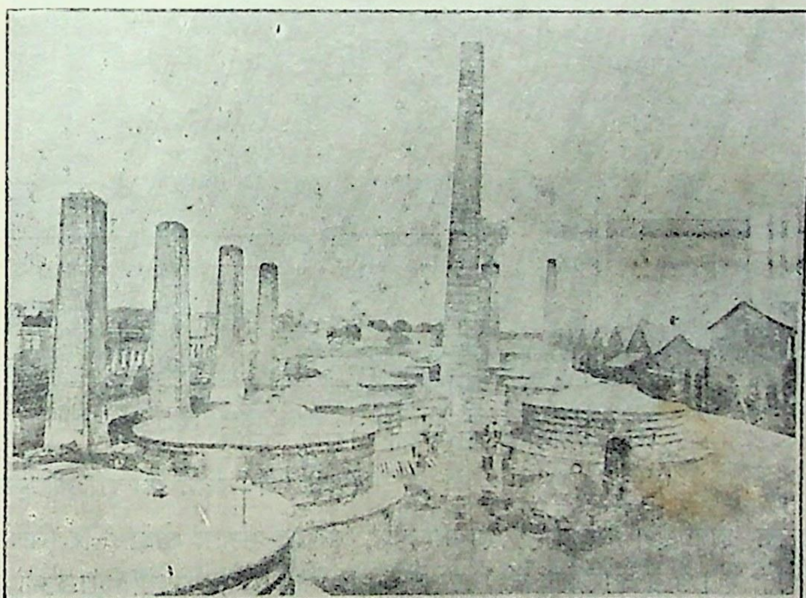
बर्न कम्पनी का खपरैल का कारखाना, दुर्गापुर।

(श्री मैनेजर बर्न कम्पनी की कृपा से)

इस प्रकार की मिट्टी भारत में प्रायः सब प्रान्तों में मिलती है। गंगा तथा सिन्धु नदी के किनारे पंजाब, संयुक्त प्रान्त तथा बिहार और बङ्गाल प्रान्तों में तो इस मिट्टी से ईटें और खपरैल बहुत स्थानों पर बनाई जाती हैं। परन्तु भारतवर्ष का सब से बड़ा और

उत्तम खपड़ैलों का कारखाना मद्रास के मंगलौर नामक स्थान में है। इस कारख़ाने में अनेक प्रकार को खपड़ैल तैय्यार की जाती है।

(२) अग्निप्रतिरोधक मिट्टी (Fire-clay):—जिस मिट्टी में शीघ्र पिघल जाने वाले पदार्थ बहुत कम मात्रा में होते हैं उसको जलाने में बहुत अधिक गर्मी की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी मिट्टी की बनी हुई ईंटें ३४०० डिग्री टेम्प्रेचर तक की गर्मी को सहन कर सकती हैं अर्थात् इस टेम्प्रेचर पर भी वे ईंटें नहीं पिघलतीं। जिन मिट्टियों में पोटाश अथवा सोडा का अंश बहुत कम होता है वे प्रायः अग्निप्रतिरोधक होती हैं। मिट्टी में से इन खारों को पौदे अपनी खुराक के लिये खींचा करते हैं। इसलिये जिस मिट्टी पर किसी समय वनस्पतियों का बाहुल्य रहा होगा वह आजकल पोटाश या सोडा से प्रायः वंचित पाई जाती है। कहीं कहीं मिट्टी के कण जल में एकत्रित होते समय जल द्वारा इस प्रकार धो दिये जाते हैं कि उनके साथ के पोटाश, सोडा अथवा चूना के कण धुल कर पृथक हो जाते हैं। ऐसी प्राचीन मिट्टी की तहें कालान्तर में जल से बाहर निकल कर आजकल अग्निप्रतिरोधक ईंटों के लिये उपयोगी प्रमाणित हो रही हैं।



बर्न कम्पनी के पाईप बनाने के भट्टे, रानीगंज।

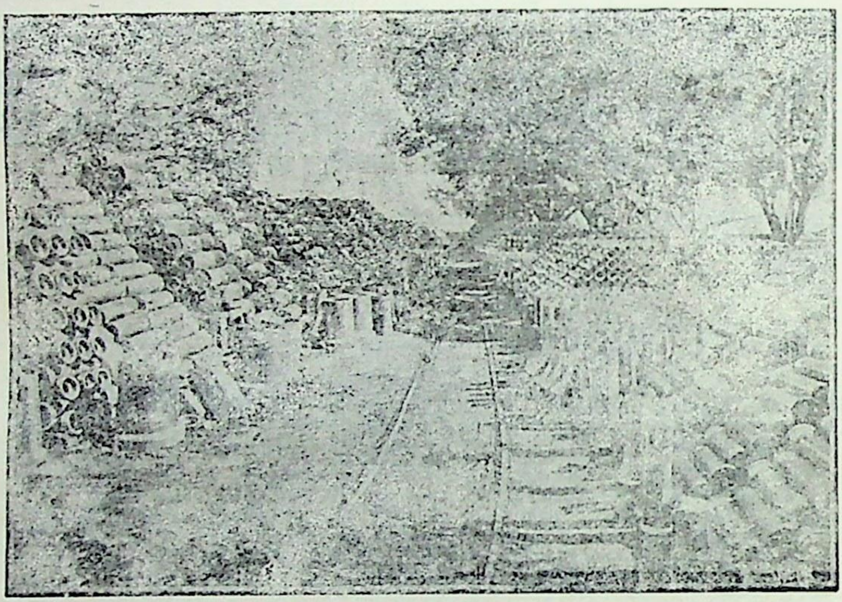
(श्री मैनेजर बर्न कम्पनी की कृपा से)

भारतवर्ष में अग्निप्रतिरोधक मिट्टी की तहें बङ्गाल की राजमहल पहाड़ी के पश्चिमीय भाग में तथा गोंडवाना काल के कोयले की भिन्न भिन्न सीमों के बीच में बहुत मिलती हैं। इसके अतिरिक्त मध्यप्रान्त में जबलपुर तथा अन्य स्थानों पर भी यह मिट्टी पाई जाती है, यह मिट्टी अधिकतर भारतीय कारखानों की भट्ठियों के लिए अग्निप्रतिरोधक ईंटें तथा बालू की ईंटें बनाने के काम में आती है।

ई० आई० आर० पर रानीगंज स्थान पर बर्न कम्पनी का कारखाना, कुमारधूनी

में बर्ड कम्पनी का तथा कुल्टी में मार्टन कम्पनी का कारखाना अग्निप्रतिरोधक ईंटों के लिए बङ्गाल प्रान्त में प्रसिद्ध है। मध्यप्रान्त में जबलपुर और कटनी के कारखाने भी अग्निप्रतिरोधक ईंटें तैयार करते हैं। ईंटों के अतिरिक्त उपरोक्त कारखाने पक्की मिट्टी के बर्तन, मकानों की छत और फर्श के लिए खपड़ैल, नालियों के लिये नालिका तथा अन्य मिट्टी के पदार्थ भी तैयार किया करते हैं।

चीनी मिट्टीः—सब मिट्टियों में बिल्कुल सफेद चीनी नामक मिट्टी अधिक मूल्यवान होती है। यह मिट्टी अधिकतर चीनी के बर्तन बनाने के काम में आती है। यह मिट्टी प्रायः ग्रेनाइट (एक आग्नेय शिला) की फेलस्पार (Felspar) नामक खनिज के



बर्न कम्पनी के पाईप का गोदाम, रानीगंज

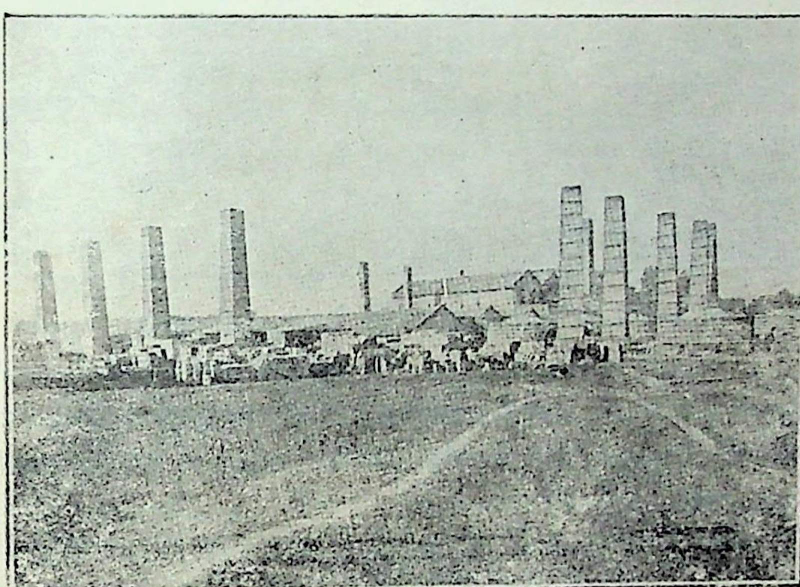
(श्री मैनेजर बर्न कम्पनी की कृपा से)

क्षय से उत्पन्न होती है। फेलस्पार एल्यूमीनियम, पोटास अथवा सोडा और सिलीका का सम्मेलन होता है। वायु और जल की क्रिया से चीनी मिट्टी (जो एल्यूमीनियम का उज्जमय सिलीकेट है) रह जाती है और पोटाश और सोडा के अंश को जल घोल कर पृथक कर देता है। क्योंकि फेलस्पार में लोहे का अंश नहीं होता। इसलिए चीनी मिट्टी प्रायः बहुत सफेद होती है। पोटाश और सोडा न रहने से यह मिट्टी अग्निप्रतिरोधक भी होती है। चीनी के बर्तनों के अतिरिक्त चीनी मिट्टी का प्रयोग कपड़ों में भरने तथा सफेद बढ़िया काग़ज़ बनाने में भी होता है। सफेद रंग के रोग़नों में भी यह मिट्टी मिलाई जाती है।

चीनी मिट्टी भी भारतवर्ष में अनेक स्थानों में पाई जाती है। सब से उत्तम चीनी मिट्टी सिंघभूमि जिले में तथा राजमहल पहाड़ी में मिलती है। इनमें प्रथम स्थान की मिट्टी कपड़ों के कारखाने के लिये भी उत्तम प्रमाणित हुई है। इसके अतिरिक्त बिहार उड़ीसा के भागलपुर, गया, इत्यादि जिलों में भी तथा मद्रास, मैसूर, मध्यप्रान्त और राजपूताने

में चीनी मिट्टी मिलती है। चीनी मिट्टी के उच्च श्रेणी के पदार्थ बनाने के कारखाने कलकत्ता, ग्वालियर, जबलपुर, देहली, मैसूर, काठियावाड़ में स्थापित हुए हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी चीनी मिट्टी की चीजें बनाई जाती हैं।

मुल्तानी मिट्टी:—यह मिट्टी सफेद भूरे अथवा पीले रङ्ग की होती है। साधारण मिट्टी के समान इस मिट्टी को गीला करके उस से किसी आकार विशेष की वस्तुएँ नहीं बनाई जा सकतीं। इस मिट्टी के कण बहुत बारीक होते हैं और उनमें चिकनाई तथा रंग कारक द्रव सोख लेने का गुण होता है। इस कारण यह मिट्टी पहले ऊन से चिकनाई दूर करने के काम में आती थी परन्तु अब इसका मुख्य प्रयोग तेलों को स्वच्छ अथवा रँगहीन करने के लिये तथा कागज़, साबुन और कपड़ों के कारखानों में होता है। भारत



बर्न कम्पनी की अग्नि प्रतिरोधक ईंटों के भट्टे, लाल कोठी।

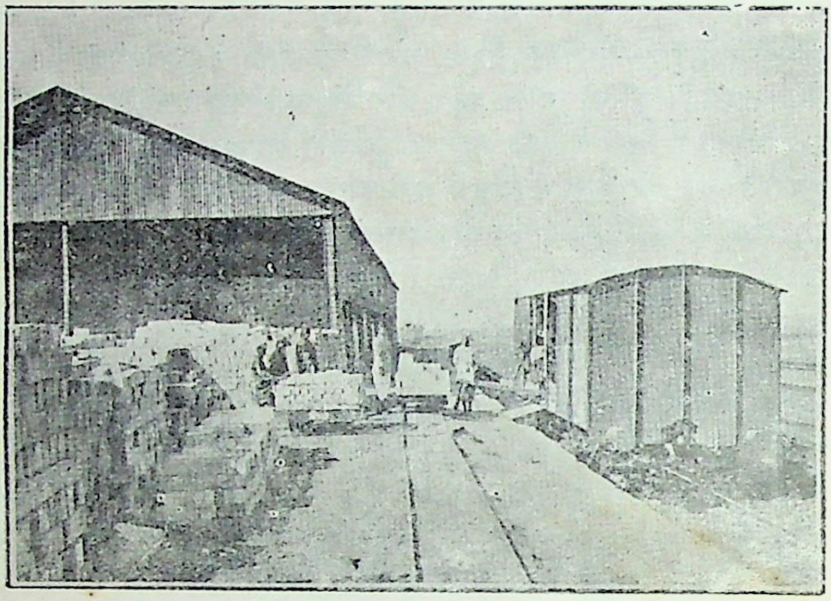
(श्री मैनेजर बर्न कम्पनी की कृपा से)

में संयुक्त प्रान्त, पंजाब इत्यादि स्थानों में इस मिट्टी का प्रयोग सिर के बाल धोने के लिये भी किया जाता है।

मुल्तानी मिट्टी बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, जबलपुर, हैदराबाद और खैरपुर (सिन्ध) तथा मैसूर में बहुत मिलती है। लेखक को मध्य भारत की सुहावल रियासत में एक विशेष प्रकार की सफेद मिट्टी मिली है जो यद्यपि चीनी मिट्टी नहीं है परन्तु कागज़ और कपड़ों की मिलों के लिये वह कदाचित् उत्तम प्रमाणित हो। इस मिट्टी की तहें लेटेराइट नामक शिला में गेरू की तह के साथ मिलती हैं और यह मिट्टी पास की पन्ना इत्यादि रियासतों में भी मिलती है।

भारत में मिट्टियों की उत्पत्ति:—सन् १९३३ ई० में भारत में कुल मिट्टी ४००५२५ टन निकाली गई थी। जिसका मूल्य २८१५१३ रुपये हुआ था। इसमें मुल्तानी

मिट्टी ७६६३ टन ८१८६६ रुपये मूल्य की और २१६३५ टन चीनी मिट्टी ८०६५६ रु० मूल्य की सम्मलित है। भारतवर्ष में मिट्टी तथा उसके बने हुए पदार्थ विदेशों से प्रतिवर्ष



वर्न कम्पनी की अग्नि प्रतिरोधक ईंटें रेल में लादी जा रही हैं
(श्री मैनेजर वर्न कम्पनी की कृपा से)

६८ लाख रुपयों से अधिक के आते हैं। आशा की जाती है कि भारत में औद्योगिक उन्नति होने पर यहाँ की भिन्न भिन्न प्रकार की मिट्टियों से ही उत्तम पदार्थ बना कर स्थानीय मांग पूरी की जाया करेगी।

---

(४) कांच के लिये बालू

साधारण काँच बनाने के लिये मुख्यतः चार पदार्थों की आवश्यकता होती है—बालू, खार (पोटाश या सोड़ा), रंग देने, तथा रंगहीन बनाने वाले पदार्थ। काँच के लिये उत्तम और आदर्श बालू वह माना गया है जिसमें १०० प्रतिशत सिलीका हो और जिसके सब कण बराबर तथा कोणदार आकार के हों। इन कणों के व्यास ०·१ से ०·५ मिलीमीटर तक होने चाहिये। बालू में सिलीका के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ जितना ही कम होता है उतना ही बालू अधिक सफेद होता है और वह काँच के लिये उपयोगी होता है। सिलीका में होकर गर्मी बहुत धीरे धीरे चलती है इस कारण बालू के कण छोटे होने चाहिये जिससे काँच बनाने की क्रिया में अधिक समय न लगे और बालू और खार के कणों में परस्पर शीघ्र ही रासायनिक संयोग हो जाय। बालू के सफेद जलज पत्थरों तथा स्फटिक शिलाओं को भी पीस कर काँच के उपयुक्त बालू बनाया जाता है परन्तु इसमें व्यय और मेहनत अधिक पड़ती है। यद्यपि भारतवर्ष में काँच के लिये उपरोक्त आदर्श

बालू कहीं पर नहीं मिला है परन्तु साधारण काँच के बालू की यहाँ कमी नहीं है। राजमहल पहाड़ में मंगलहाट तथा पाथरघाटा नामक स्थानों पर गोंडवाना काल का उत्तम श्रेणी का सफेद बालू का पत्थर मिलता है जिसको पीस कर काँच के लिये बालू बनाया जा सकता है। विन्ध्याचल पर्वत के लोहगरा और बरगढ़ नामक स्थानों पर बालू का परिवर्तित जलज पत्थर मिलता है जिससे उत्तम बालू प्राप्त होता है और जो संयुक्त प्रान्त के कई काँच के कारखानों में प्रयोग हो रहा है। इन स्थानों के अतिरिक्त बरार, पूना, जब्बलपुर, इलाहाबाद और होशियारपुर (पंजाब) इत्यादि जिलों में तथा जयपुर, बीकानेर, बून्दी, बड़ौदा इत्यादि रियासतों में उत्तम श्रेणी के बालू अथवा बालू के पत्थर पाये गये हैं।

काँच के लिये दूसरा आवश्यक पदार्थ खार है जो प्रायः सोडा-मिट्टी, सोड़ा सल्फेट अथवा शोरा से प्राप्त किया जाता है। भारत के अनेक तेज़ाब इत्यादि के कारखानों में सोडा सल्फेट उपोत्पादन (Bye product) के रूप में रह जाता है। राजपूताना की नमक की झीलों में प्रायः सोडा के कार्बोनेट और सल्फेट दोनों मिलते हैं। मध्यप्रान्त के बुल्दाना ज़िले की कीलोनार नामक झील में सोडा कार्बोनेट जल के सूखने पर शेष रह जाता है। यह सोडा कुछ वर्ष पहले तक काँच और साबुन के लिये प्रयोग किया जाता था। भारत के शुष्क भागों में कहीं-कहीं की भूमि पर "रेह" नामक पदार्थ एकत्रित हो जाता है जो कृषि के लिये हानिकारक है। रेह में प्रायः सोडा के कार्बोनेट, सल्फेट तथा क्लोराइट नामक लवण होते हैं। इसके अतिरिक्त पंजाब, संयुक्त प्रान्त तथा बंगाल और बिहार में अनेक स्थानों की मिट्टी में शोरा होता है जिससे काँच के लिये खार प्राप्त हो सकता है। आजकल भारत के कारखाने सोडा कार्बोनेट प्रायः विदेशों से ही मँगाते हैं। हाँ, छोटे-छोटे कारखाने रेह से ही काम चलाते हैं। अभी हाल में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो० विद्यासागर दुबे जी ने काँच बनाने में किशनगढ़ रियासत के नेफलीन-साइनाइट (Nepheline Syenite) नामक आग्नेय शिला को पीसकर विदेशी सोडा के स्थान पर प्रयोग करके देखा है कि इस प्रकार काँच सस्ता पड़ेगा और जापानी काँच से मुक़ाबिला कर सकेगा। किसी-किसी काँच के लिये सुहागे (Borax) की आवश्यकता पड़ती है। यह तिब्बत की झीलों में बहुत मिलता है। वहीं से पंजाब और संयुक्तप्रान्त के बाज़ारों में प्रतिवर्ष यह खनिज आया करता है।

भिन्न भिन्न रंग के और रंगहीन काँच बनाने के लिये जो रासायनिक पदार्थ मिलाये जाते हैं उनकी बहुत कम मात्रा में ज़रूरत पड़ती है। इन पदार्थों में मुख्य मैङ्गनीज़, निकिल, कोबाल्ट तथा क्रोमियम धातुओं की भस्में होती हैं। मध्य प्रान्त के कई स्थानों की तथा बड़ौदा के पाणी नामक स्थान की मैङ्गनीज़ की खनिज काँच के कारखानों के लिये बहुत उपयोगी है। आजकल अन्य पदार्थ बाहर से मंगाये जाते हैं। क्रोमियम की खनिज (क्रोमाइट) यहाँ पर काफ़ी मिलती है परन्तु उसके शोधने का कोई कारखाना इस देश में नहीं है। कोबाल्ट धातु की "सेहता" नामक खनिज राजपूताने की खेतड़ी रियासत में थोड़ी सी मिलती है परन्तु उससे कोबाल्ट की भस्म बनाना अभी असम्भव सा ही प्रतीत होता है। नेपाल में कोबाल्ट की खनिजें बहुत मिलती हैं और एक भारतीय कम्पनी ने उनको निकालने का ठेका लिया है।

भारत में काँच के पदार्थों की उत्पत्तिः—सन् १९२३ ई० में भारतवर्ष में १ करोड़ २८ लाख रुपये से अधिक का काँच का माल आया था जिसमें लगभग २६ लाख रुपयों की चूड़ियाँ थीं और १४ लाख रुपयों के माला के दाने और नक़ली मोती इत्यादि। यह माल इंग्लैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम, आस्ट्रिया, जापान, इटली इत्यादि देशों से आया था। भारत में काँच के क़रीब ३० बड़े कारखाने हैं जो कलकत्ता, बम्बई, केरा, सितारा, पूना, अम्बाला लाहौर, नैनी (इलाहाबाद), फीरोज़ाबाद, बिजनौर, बहजोई (मुरादाबाद) और अन्य कई स्थानों पर वर्तमान हैं।

उपरोक्त वृत्तान्त से विदित होता है कि भारत में काँच बनाने के पदार्थ पर्याप्त परिमाण में वर्तमान हैं और यहाँ पर काँच की खपत भी काफी है। दुर्भाग्य वश भारत के अधिकतर कारखाने ऐसे स्थानों पर बने हैं जहाँ पर काँच के लिये कच्चे पदार्थ, बालू और खार, तथा काँच बनाने के लिये कोयला बहुत दूर से मँगाने पड़ते हैं। इस कारण ये पदार्थ बहुत मँहगे पड़ते हैं। काँच का कारखाना स्थापित करने का सब से उत्तम स्थान बङ्गाल या बिहार के कोयलों के क्षेत्रों के पास होगा; क्योंकि उस स्थान पर ये सब पदार्थ सस्ते पड़ सकते हैं और वहाँ से कलकत्ता नगर भी पास होगा। प्रो० दुबेजी इस बात का प्रयत्न भी कर रहे हैं कि इस क्षेत्र में एक कारखाना शीघ्र ही खुले। यह आवश्यक प्रतीत होता है कि भारत के सब बालुओं और काँच के लिये उपयोगी अन्य पदार्थों पर विशेषज्ञों द्वारा पूरा पूरा अनुसन्धान पहले करा लिया जाय और फिर एक दो काँच के बड़े कारखाने अधिक पूँजी से उपरोक्त स्थानों पर खोले जायँ जो विदेशी काँच से सफलता पूर्वक मुक़ाबिला कर सकें। हर्ष का विषय है कि हिन्दू विश्वविद्यालय में काँच के विषय में अनुसन्धान करने के लिये एक विभाग खुल रहा है। इसके अतिरिक्त आरम्भ में काँच की कारीगरी की रक्षा करने की आवश्यकता सरकार और जनता को होगी।

(५) रंगकारक खनिज

इस स्थान पर केवल उन्हीं खनिजों का उल्लेख किया गया है जो अपने उत्तम रंग के कारण रोग़न, वार्निश अथवा रंगकारक द्रव के लिये उपयोगी प्रमाणित हुए हैं। इनमें से मुख्य खनिजें गेरू (Red ochre), रामरज (Yellow Ochre), काली-स्याम मिट्टी का 'शेल' या स्लेट नामक पत्थर, ग्रेफाइट (Graphite) हरताल (Orpiment) तथा बेराइट (Barite) हैं।

लाल गेरू लोहे की साधारण भस्म 'हेमेटाइट' (Hematite) और चिकनी मिट्टी का मिश्रण होता है। रामरज अथवा पीला गेरू लोहे की उज्जमय भस्म लाइमोनाइट (Limonite) और चिकनी मिट्टी का मिश्रण है। इन दोनों खनिजों की तहें भारत में, अधिकतर लेटेराइट पत्थर की पहाड़ियों पर, प्राचीन परिवर्तित शिलाओं में अथवा भिन्न-भिन्न काल की जलज शिलाओं की तहों के बीच में पाई जाती हैं। मध्यप्रान्त के जब्बलपुर, द्रुग, बालाघाट, नागपुर, चान्दा ज़िलों में तथा मध्यभारत की पन्ना, रीवाँ, सोहावल, ग्वालियर, भूपाल इत्यादि रियासतों में उत्तम श्रेणी के दोनों प्रकार के गेरू पाये जाते हैं। इन स्थानों के अतिरिक्त मद्रास, मैसूर, बिहार-उड़ीसा तथा बम्बई प्रान्त में भी

गेरू मिलते हैं। इन गेरूओं का रंग बड़ा सुन्दर लाल या पीला होता है। भारत में इनका उपयोग प्राचीन समय से ही मकानों और कपड़ों के रंगने में होता आया है। इस समय भी इन खनिजों के जमाव के क्षेत्रों के गाँवों में इन्हीं से रंगी हुई दीवारें बहुत देखने में आती हैं। बहुत बारीक गेरू को सुनार सोना निखारने के लिये भी प्रयोग करते हैं।

भारत के बड़े-बड़े नगरों में कई कम्पनियाँ इन गेरूओं का प्रयोग रंगीन रोग़न बनाने में कर रही हैं। अनेक स्थानों के कच्चे गेरू और रामरज का रंग यदि अच्छा और गहरा न हो तो उनको जल में धोने (Levigation) से अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इस क्रिया से इन खनिजों में जो रेत अथवा उद्भिज रेशे मिले रहते हैं वे सरलता से दूर हो जाते हैं और अन्त में बहुत ही बारीक गहरे रंग का पदार्थ रह जाता है। अनेक गेरुओं का रंग इस क्रिया के पश्चात् और भी चमकदार हो जाता है।

काले रंग के लिए काले रंग का शेल या स्लेट पत्थर अथवा ग्रेफाइट खनिज प्रयोग में आती है। राजपूताना की किशनगढ़ रियासत में कार्बनदार काले 'शेल' पत्थर से काला रोग़न तय्यार किया जाता है। कहीं-कहीं की काली स्लेट का बुरादा स्लेटी रंग बनाने के काम में आता है। काले रंग की 'ग्रेफाइट' खनिज, जो पेन्सिल बनाने के काम में आती है, मद्रास और उड़ीसा प्रान्तों में तथा ट्रावन्कोर और अजमेर की परिवर्तित शिलाओं में पाई जाती है। इस खनिज से भी उत्तम प्रकार का काला रंग बनाया जा सकता है।

हरताल खनिज संखिया और गन्धक की सम्मेलन है। इसका रंग नीबू अथवा सोने के समान पीला होता है। इसमें चमक बहुत होती है इस कारण हरताल से बना हुआ रंग लाह चढ़ाये हुए (Lacquer) पदार्थों पर प्रयोग किया जाता है। हरताल और नील को मिलाकर एक प्रकार का हरा रंग और हरताल और गोंद को मिलाकर स्वर्ण रंग बन जाता है जो लाख के पदार्थों पर चढ़ाने के लिये बहुत उपयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त मोमजामा इत्यादि पर चित्र बनाने के लिये भी हरताल का रंग काम में आता है। भारत में यह खनिज हिमालय पर्वत पर और कमायूँ में मिलती है।

बेराइट नामक खनिज बेरियम और गन्धक के तेज़ाब का सम्मेलन होती है। यह सफेद और भारी होने के कारण रोग़न और काग़ज तथा कपड़ों इत्यादि में भी काम आती है। सफेद रोग़न में प्रायः सफेदा (White lead) प्रयोग होता है। सफेदा सीसे की गेलेना खनिज से बनाया जाता है। इस कारण वह अधिक मँहगा पड़ता है और उसके रोग़न गर्म और नम देशों में शीघ्र खराब भी हो जाते हैं। सफेदा के स्थान पर बेराइट का बुरादा सस्ता भी पड़ता है और उसके साथ तेल भी कम लगता है। इसलिये अक्सर मूल्यवान रोग़नों में सफेदा इत्यादि के साथ थोड़ी सी बेराइट भी मिली रहती है, परन्तु इसकी मात्रा बहुत अधिक न होनी चाहिये। बेराइट मिला हुआ रोग़न शीघ्र खराब नहीं होता। भारत में यह खनिज मद्रास के नेलोर, सलेम, अनन्तपुर, कडापा, कड़नूल जिलों में, मध्यप्रान्त के जब्बलपुर जिला में, बिहार के मानभूमि जिले में तथा रीवाँ और अलवर राज्यों में पाई जाती है। ब्रह्म देश को बाडविन नामक खानों के क्षेत्र में भी यह खनिज मिलती है। बेराइट प्रायः धारियों में मिला करती है। सन् १९३३ ई० में भारत में कुल

५,६५१ टन बेराइट ४१,५१७ रुपयों के मूल्य की उत्पन्न हुई थी जो केवल मद्रास के कुछ ज़िलों और अलवर राज्य से निकाली गई थी।

सन् १६३३ में भारत में मुख्य रंगकारक पदार्थ—गेरू और रामरज की उत्पत्ति का व्योरा इस प्रकार था:—

स्थान	परिमाण	मूल्य
मध्यभारत	५,३१५ टन	४२,०८२ रुपये
मध्यप्रान्त	५,११८ "	११,३३४ "
ग्वालियर	३८२ "	२,०७७ "
मद्रास	३६३ "	३,१२६ "
राजपूताना	३१८ "	१३१६ "
संयुक्तप्रान्त	१३४ "	६६० "
कुल उपज	११,६३०	६०,८९५ रुपये

चतुर्थ खण्ड

मुख्य मुख्य रत्न और उपरत्न

प्राचीन काल से ही रत्नों की प्रशंसा तथा उनकी सुन्दरता का वर्णन होता चला आ रहा है। पहले पहल रत्नों की बहुमूल्यता केवल आभूषणों में लगाए जाने के कारण ही नहीं होती थी। उनमें मन्त्र और औषधि-सम्बन्धी बहुत से गुण भी बताये जाते थे। अब भी कुछ लोग उनमें वे गुण देखते हैं।

विशुद्ध रत्नों में तीन बड़े गुण होते हैं—सुन्दरता, स्थिरता और दुर्लभता। इनमें से किसी भी गुण से रहित रत्नों को बहुमूल्य नहीं कहा जा सकता। चाहे वह आभूषण बनाने के काम में भले ही आ जाँय। खनिज पदार्थों में से जितने पदार्थों को रत्न की पदवी दी जाती है वे तीन बड़े भागों में विभाजित किये जा सकते हैं (१) निर्मल तथा स्वच्छ (Transparent, पारदर्शक) (२) सुप्रकाश तथा किरणभेद्य (Translucent) (३) अस्वच्छ तथा किरणाभेद्य (Opaque, अपार दर्शक) इनमें से पहले प्रकार के रत्नों का मूल्य तथा प्रयोग सबसे अधिक होता है। ये भी दो प्रकार के होते हैं—रङ्ग रहित तथा रङ्गदार। रङ्ग रहित रत्नों के विषय में मणिकार की मुख्य परख केवल इसी में होती है कि उनके ऊपरी भाग के कणों को काटने की व्यवस्था देख कर यह निश्चय करले कि उनमें से कितना प्रकाश निकल सकेगा। दूसरे प्रकार के (रङ्गदार) रत्नों की मनोहरता उनके आभ्यन्तरिक रङ्ग पर अवलम्बित है न कि उनके कटने के ढङ्ग पर। रङ्ग न तो बहुत फीका हो न बहुत गाढ़ा हो। बहुत फीके रङ्ग वाले रत्नों को बहुत भीतर से काटने तथा बहुत गाढ़े रङ्ग वालों को बहुत ऊपर से काटने से मणिकार उन रत्नों के अवगुणों को बहुत कुछ कम कर सकता है।

सुप्रकाश तथा किरणभेद्य रत्नों में प्रकाश तो जा सकता है, पर इनकी स्वच्छता तथा निर्मलता इतनी नहीं होती कि उनमें से आर-पार देखा जा सके। ऐसे रत्नों के गुणों की प्रशंसा केवल नेत्रों के प्रति आनन्दमय प्रभाव प्रकट करने ही के कारण है न कि इनके आभ्यन्तरिक सुरम्य रङ्ग के कारण। तीसरे प्रकार के अस्वच्छ तथा किरणाभेद्य रत्न साधारण होते हैं। इनको उपरत्न कहना अत्युक्ति न होगा। इन उपरत्नों में ऊपर के परतों से जो तल भाग के बिल्कुल समीप होते हैं, प्रकाश निकलता है। ये केवल अपने रङ्ग तथा स्थिरता के कारण ही प्रयोग किये जाते हैं।

बहुमूल्य रत्नों के विषय में यह आवश्यक है कि वे प्रति दिन की भौतिक और रासायनिक क्षय करने वाली शक्तियों के प्रभाव को रोकें जिससे वे बहुत काल तक ख़राब

न हों। रेत के छोटे-छोटे कण उड़-उड़ कर रत्नों पर सदा पड़ा करते हैं। उनकी रगड़ से घिसने से बचने के लिए रत्नों को कम से कम उनके बराबर कड़ा अवश्य होना चाहिए। रत्नों का नरम होना उनको आभूषणों के कार्य के लिए अयोग्य बना देता है। रासायनिक क्रियाओं से केवल वे ही रत्न कुछ विकृत होते हैं जिनमें छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। उत्तम रत्नों में जल, तेल, तथा खटाई इत्यादि के प्रभाव से कुछ भी परिवर्तन नहीं होता।

यह बात निस्सन्देह है कि मनुष्य दुर्लभ वस्तु को सुन्दर वस्तु से अधिक चाहता है। सुलभ वस्तु कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसका उपयुक्त आदर कभी भी न होगा। यदि आज उन्नत विज्ञान हीरे इत्यादि सब रत्न प्रयोगशालाओं में बनाने में सफल हो जाय तो रत्नों की बहुमूल्यता इतनी कदापि न रहे। बहुत से रत्नों के बनाने में वैज्ञानिकों को सफलता प्राप्त भी हो चुकी है, परन्तु लोक-सम्मति में प्राकृतिक रत्नों का ही मूल्य अधिक माना जाता है। रत्नों के पहचानने में उनका घनत्व (Gravity) और कड़ापन (Hardness) बहुत सहायक होता है। प्रायः सब रत्न काँच से अधिक कड़े होते हैं और काँच पर रगड़ने से रेखा बना देते हैं। रत्नों के घनत्व में भी अन्तर होता है।

(१) हीरा

रङ्ग रहित रत्नों में हरे का स्थान सर्वोच्च है, क्योंकि इसमें से सदा अद्भुत आलोकमय प्रदीप्त वर्ण का विकिरण हुआ करता है, जो कि आकाश की नीलिमा से प्रज्वलित लालिमा तक के सब रङ्गों की छटा को विशेष रूप से झलकाया करता है। हीरा स्वच्छ कार्बन की खनिज है। लकड़ी के कोयले का और हीरे का रासायनिक निर्माण एक ही है। पहला रवाहीन और दूसरा रवादार है। हीरे के रवा अष्ट-फलक (Octahedron) के आकार के होते हैं, परन्तु अधिकतर प्राकृतिक रूप में इस खनिज के छोटे-छोटे गोल रवा पाए जाते हैं जिनमें एक विशेष प्रकार की तैलीय चिकनाहट होती है। साधारण मनुष्य ऐसे टुकड़ों को चिकने काँच इत्यादि के टुकड़े समझ कर फेंक दे सकता है। हीरा यद्यपि लाल हरा अथवा नीला भी पाया गया है, परन्तु अधिकतः वह रङ्गहीन या पांडु-पीत वर्ण का होता है। रंग हीन हीरा ही उत्तम श्रेणी का माना जाता है पांडु-पीत वर्ण हीरा निकृष्ट श्रेणी का होता है। संसार के सब पदार्थों से हीरा अधिक कड़ा होता है। इस कारण इसको काटने तथा पालिश करने के लिए इसी के बुरादे का प्रयोग किया जाता है। प्रकाश की किरणों के लिए हीरे की विकिरण-सामर्थ्य (Dispersive Power) बहुत अधिक है, जिसके कारण सफेद प्रकाश की किरणें (विशेषतः धूप में) जब इसके अन्दर से होकर निकलती हैं तो वे भिन्न भिन्न रङ्ग (इन्द्रधनुष के रङ्ग) की किरणों में विभाजित हो जाती हैं ! इसी को हीरे का प्रकाश (Fire) कहते हैं। हीरे में होकर एक्स-रे (X-ray) नामक किरणें निकल जाती हैं, परन्तु अन्य रत्नों में होकर वे नहीं निकलतीं। हीरे को पहचानने का यह बड़ा उत्तम उपाय है।

अधिकतः हीरा या तो काले और हरे रङ्ग की आग्नेय, ज्वालामुखीय और धारीवाली शिलाओं में पाया जाता है या नदियों की तलछटों में। प्रथम प्रकार की शिलाओं में हीरा दक्षिण अफ्रीका में मिलता है और द्वितीय रूप में भारतवर्ष और ब्रेज़िल देशों में। १८७० ई० तक संसार को हीरे प्रायः ब्रेज़िल और भारत ही देता था, परन्तु अब

प्रति वर्ष संसार के हीरे ९६ प्रतिशत भाग दक्षिण अफ्रीका के ट्रान्सवाल की खानों से उत्पन्न होकर आता है। सन् १९०५ ई० में इसी क्षेत्र में संसार का सब से बड़ा "कुलीनान" नामक हीरा मिला था, जिसका वज़न ३१०६ कैरट अथवा लगभग १$\frac{1}{3}$ पौण्ड था। यह हीरा ट्रान्सवाल की सरकार द्वारा सम्राट एडवर्ड सप्तम को भेंट किया गया। तत्पश्चात् इस हीरे को काट कर नौ बड़े बड़े और ९६ छोटे उत्तम रत्न बनाए गये हैं।

भारतवर्ष हीरा की उत्पत्ति के लिए प्राचीन समय से ही प्रसिद्ध रहा है। लगभग ५००० वर्ष पूर्व भी भारतीय नरेश हीरा की परख जानते थे। पुराणों तथा हिन्दुओं के अन्य धार्मिक ग्रन्थों में हीरे के लिए निम्नलिखित आठ स्थानों का नाम मिलता हैः—

स्थान का प्राचीन नाम	आधुनिक नाम	ऐतिहासिक विवरण
(१) हेम	हिमालय	शिमले के पास हीरा मिलने का पता मिलता है, परन्तु भूगर्भवेत्ताओं को अभी तक हिमालय में कहीं हीरा का पता नहीं लगा।
(२) मतङ्ग	कृष्णा और गोदावरी ज़िले	यहाँ के हीरे 'गोलकुण्डा' के हीरे के नाम से प्रसिद्ध थे परन्तु 'गोलकुण्डा' (हैदराबाद में) कदाचित हीरों का केन्द्र ही रहा होगा क्योंकि वास्तव में हीरा मिलने के स्थान गोलकुण्डा के ज़िले से दूर हैं।
(३) सुराष्ट्र	सूरत	यद्यपि सूरत में हीरा नहीं मिलता, परन्तु यह नगर हीरों को विदेश भेजने के लिए कदाचित् प्रसिद्ध बन्दरगाह रहा हो।
(४) पाण्ड	छोटा नागपुर (बिहार-उड़ीसा)	कालाहाण्डी और पलामू ज़िले में दो एक स्थानों पर हीरा मिलने का उल्लेख है।
(५) कलिङ्ग	उड़ीसा और गोदावरी नदी के बीच का क्षेत्र	इस क्षेत्र में महानदी घाटी तथा मध्य प्रान्त का सम्बलपुर ज़िला भी कदाचित् सम्मिलित है, जहाँ पर हीरा मिलता है।
(६) कौशल	अयोध्या या बरार	इन दो में से बरार की अधिक सम्भावना है। कोई कोई सज्जन इस स्थान को पन्ना राज्य बताते हैं, जहाँ पर हीरे की प्राचीन खानें हैं।
(७) वेण-गङ्गा	बेरागढ़ (मध्य प्रान्त के चाँदा ज़िले में)	इस स्थान का आईन-अकबरी में अबुल-फ़ज़ल ने भी विवरण दिया है।
(८) सौवीर	पञ्जाब में सरहिन्द और सिन्धु नदी के बीच का क्षेत्र	इतिहास में यहाँ के हीरों का वृत्तान्त कहीं नहीं मिलता।

प्राचीन ऐतिहासिक हीरे सब के सब भारतवर्ष की ही खानों से निकले थे। इन हीरों में कोहनूर, ग्रेट मुग़ल, ओरलफ़, पिट इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं। कोहनूर हीरा अति प्राचीन है। कहा जाता है कि यह हीरा राजा कर्ण के और बाद को राजा विक्रमादित्य के पास रहा था।

हीरों की उत्पत्ति के अनुसार भारत के स्थानों को तीन बड़े-बड़े क्षेत्रों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) दक्षिण भारत का क्षेत्रः—इसमें अनन्तपुर, बलारी, कडापा, कर्नूल, गन्टूर, कृष्णा और गोदावारी ज़िले सम्मिलित हैं। अनेक ऐतिहासिक हीरों का जन्म इसी क्षेत्र में हुआ था। यहाँ पर हीरा प्रायः गोदावरी, कृष्णा तथा उनकी सहायक नदियों के तलछट के पत्थर (Conglomerate) या बालू में पाया जाता है।

अनन्तरपुर ज़िले के बज़रा करुर नामक गाँव के पास वर्षा के बाद कभी-कभी हीरा मिल जाया करते थे। कहा जाता है कि एक वर्ष यहाँ पर एक हीरा एक लाख रुपये के मूल्य का मिला था। कदाचित् हीरे का संस्कृत नाम (वज्र) इसी स्थान से दिया गया हो।

कडापा ज़िले के चेनूर, बोपलपली तथा कृष्णा ज़िले में गोलापिली, पारिटिल इत्यादि स्थानों पर बहुमूल्य हीरे मिले हैं।

गन्टूर ज़िले का "कोला" नामक स्थान कोहनूर हीरे का जन्म-स्थान बताया जाता है। टेवर्नियर नामक विदेशी यात्री ने कोला की खानों के विषय में लिखा है कि यहाँ पर उस समय लगभग ६०,००० स्त्रियाँ, पुरुष और बालक हीरे की खदानों में काम करते थे। इस यात्री ने 'ग्रेट मुग़ल' नामक हीरे के विषय में लिखा है कि जब मैं पहली नवम्बर सन् १६६५ ई० के दिन शाहन्शाह औरङ्गज़ेब से बिदा माँगने गया तो शाहन्शाह ने मुझ से शाही जवाहरात देखने को दूसरे दिन फिर आने को कहा। अतएव दूसरे दिन सब से पहले मुझे जो सब से बड़ा हीरा दिखाया गया उसका वज़न ३२० रत्ती के क़रीब था। यह हीरा पहले गोलकुण्डा के राजा के पास था। उससे जब यह शाहजहाँ बादशाह के हाथ लगा उस समय इसका वज़न क़रीब ६०० रत्ती के था। यह रत्न काट छाँट कर पालिश करने के लिए एक बेनिस के कारीगर को दिया गया था। वह कारीगर हीरे को बादशाह की इच्छानुसार न बना सका, इस कारण उससे इनाम के बदले १० हज़ार रुपये जुर्माना वसूल किया गया।

टेवर्नियर ने और भी एक स्थान पर हीरे का वृत्तान्त लिखा है और उसका आकार भी दिया है, जिससे कुछ विद्वान् इतिहास-वेत्ताओं की राय है कि वह हीरा 'कोहनूर' ही था और 'ग्रेट मुग़ल' नाम उसको पहले पहल टेवर्नियर ही ने दिया। इससे वे यह प्रमाणित करते हैं कि 'कोहनूर' और 'ग्रेट मुग़ल' एक ही था और यह हीरा 'कोला' की खदानों से टेवर्नियर की यात्रा से केवल एक या डेढ़ शताब्दी पहले ही निकाला गया था।

(२) पूर्वीय भारत का हीरों का क्षेत्र—यहाँ हीरा प्रायः महानदी और उसकी सहायक नदियों की बालू में मुख्यतः सम्भलपुर और चाँदा ज़िलों में पाया जाता है।

कहा जाता है कि सम्भलपुर नगर के पास महानदी की एक शाखा नदी में

कुएड" नामक स्थान पर सन् १८०४ से सन् १८१८ तक बीस हीरे प्राप्त हुए थे, जिनमें से सबसे बड़ा हीरा ६७२ ग्रेन का था।

मध्यप्रान्त में चाँदा ज़िले में वेरागढ़ नामक स्थान में वेणगङ्गा नदी की शाखानदी की बालू से सन् १८२७ ई० तक हीरा निकाला जाता रहा है।

(३) मध्यभारतीय क्षेत्र—मध्यभारत की बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड एजेन्सी की पन्ना, चरखारी, बिजावर, कोठी, सुहावल, पथार, कछार, बरुएडा तथा चौबेपुर इत्यादि रियासतों में हीरा बहुत समय से निकाला जाता रहा है। इन स्थानों पर हीरा विन्ध्याचल पर्वतीय शिलाओं की दो काङ्गलोमरेट* (Conglomerate) की तहों में मिलते हैं। यह तहें पृथ्वीतल पर निकली हुई उपरोक्त रियासतों में पाई जाती हैं। हीरादार काङ्गलोमरेट को इस क्षेत्र में 'मड्डा' अथवा 'कंकड़' कहते हैं। इन रियासतों में जो नदियाँ काङ्गलोमरेट की तहों पर होकर बहती हैं उनकी बालू में भी कहीं-कहीं हीरा मिलता है। काङ्गलोमरेट को पृथ्वीतल से अथवा नीचे से खोदकर उसको कूट कर बारीक कर लिया जाता है। फिर उसमें से मिट्टी और बालू जल द्वारा नितार कर पृथक् कर दिये जाते हैं। शेष के मोटे तलछट में हीरे को ढूँढ़ा जाता है। उपरोक्त राज्यों में यद्यपि अनेक स्थानों पर हीरा मिलता है, परन्तु कहीं पर भी वैज्ञानिक ढंग से बड़े परिमाण में हीरा निकालने का प्रयत्न नहीं किया गया है। इस कारण प्रायः पृथ्वीतल से ५० फ़ीट से अधिक गहराई का काङ्गलोमरेट निकाला ही नहीं गया, क्योंकि इस गहराई पर (अभ्यन्तर) जल मिल जाता है। हीरे की खानों में काम वर्षा में बन्द कर दिया जाता है और वे पानी से भर जाती हैं। वर्ष के कुछ महीनों में ही जो दो-एक हीरे मिल गये, उसी से राज्य अथवा खान के मालिक सन्तुष्ट हो जाते प्रतीत होते हैं। भला इस प्रकार की खानों से और अफ़्रीका के ट्रान्सवाल की हीरा की खानों से कैसे मुक़ाबिला किया जा सकता है, जिनमें करोड़ों रुपयों की पूँजी लगी है और जहाँ हज़ारों फ़ीट नीचे से हीरेदार पत्थर चानक द्वारा निकाल कर ऊपर लाया जाता है। यही कारण है कि ब्रेज़िल और दक्षिणीय अफ्रीका में हीरा के क्षेत्रों के आविष्कार के फल-स्वरूप भारत का हीरे का व्यवसाय प्रायः मृतक सा हो गया है। सन् १९३३ ई० में केवल २३४२ कैरट हीरा मध्य भारत में उत्पन्न हुआ, जिसका मूल्य ६३,६६५ रुपये हुआ था। इस हीरे का अधिक भाग (२२७१ कैरट) पन्ना राज्य से और शेष चरखारी, अजयगढ़ और बिजावर इत्यादि रियासतों से निकला था।

(२) लाल और नीलम

लाल और नीलम कुरंदम (Corundum) नामक खनिज की स्वच्छ क़िस्में हैं। कुरंदम एल्यूमीनम और आक्सीजन का सम्मेलन है और वह या तो अधिक एल्यूमीनम दार आग्नेय शिलाओं के साथ मिलता है अथवा उन परिवर्तित शिलाओं में मिलता है

---

* 'काङ्गलोमरेट' नामक जलज शिला नदी द्वारा लाये हुए पत्थरों के छोटे गोलाकार टुकड़ोंदार मोटे तलछटों के ठोस हो जाने से बनती है। —लेखक

जिन में पहले एल्यूमीनम का अंश साधारण आवश्यकता से अधिक था और वह बाद को विशेष परिवर्तनीय क्रियाओं द्वारा कुरंदम या उसके रत्न के रूप में बन गया। अस्वच्छ कुरंदम अपने कड़ेपन के कारण पत्थरों इत्यादि को काटने तथा पालिश करने के काम आता है। लाल और नीलम हीरे से कुछ कम कड़े होते हैं परन्तु अन्य रत्नों से ये अधिक कड़े हैं। इन रत्नों में हीरे के समान अद्भुत प्रकाश भी नहीं होता, परन्तु फिर भी ये अपने सुन्दर लाल और नीले रंग के कारण कभी कभी हीरे से अधिक मूल्य में बिकते है। आज कल नीलम का फीका नीला (आकाशी) रंग और लाल का कबूतर के रक्त का सा लाल रंग अधिक पसन्द किया जाता है।

लाल और नीलम के लिये ब्रह्मा, लङ्का और काश्मीर संसार के प्रसिद्ध स्थानों में से हैं। उपरोक्त पत्थरों के अतिरिक्त ये रत्न उन नदियों की बालू में भी पाये जाते हैं जो ऐसे रत्नदार पत्थरों के क्षेत्र में होकर बहती हैं। ब्रह्मदेश में ये रत्न प्रायः नदियों की बालू ही से निकाले जाते हैं। यहाँ मोगक या मोगो (रुबी माइन्स) ज़िले में लाल और नीलम की प्रसिद्ध खानें हैं। इस क्षेत्र में लाल परिवर्तित रवादार चूने के पत्थर पाये जाते हैं। इस प्रकार का चूने का पत्थर मोगक स्थान से इरावदी नदी तक मिलता है। इसी पत्थर में से नदियों द्वारा ये रत्न मोगक नामक घाटी के बालू में भी एकत्रित हो गये हैं। मोगक के लाल केवल ३० वर्ग मील के क्षेत्र में मिलते हैं परन्तु इस छोटे क्षेत्र में ही संसार के प्रसिद्ध लालों का जन्म हुआ है। मोगक की खानें बहुत पुरानी हैं। विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त से पता चलता है कि पहले इन खानों को देखने की विदेशियों को आज्ञा ही न थी। सन् १५९९ ई० में एक विदेशीय यात्री ने लिखा है कि इस स्थान पर लाल का बड़ा भारी केन्द्र था। आज कल इस क्षेत्र की मालिक ब्रह्मा रुबी माइन्स कम्पनी लिमिटेड है परन्तु अब वह दीवालिया हो गई है। तब से यहाँ लाल और नीलम केवल स्थानीय लोग ही ढूँढा करते हैं।

मोगक की खानों में प्रति हज़ार लाल, दो-तीन नीलम भी मिल जाया करते हैं। यहाँ के नीलम लाल से बड़े और अधिक मूल्यवान होते हैं। सन् १९३० ई० में यहाँ पर एक स्वच्छ नीलम (६३० केरेट का) और एक लाल (१०० केरेट का) पाया गया। सन् १९३२ में भी यहाँ दो तीन अच्छे रत्न प्राप्त हुए थे। सन् १९३३ ई० में इस क्षेत्र की खानों से कुल ११०३ केरेट लाल और नीलम निकाले गये जिनका मूल्य केवल ५८३ रुपये हुआ क्योंकि वे उत्तम श्रेणी के न थे और इनमें स्पिनल के रत्न भी सम्मलित थे।

काश्मीर में नीलम का पता पहले पहल सन् १८८१ ई० में लगा। यहाँ पर नीलम पेग्मेटाइट (Pegmatite) नामक धारी में बनने वाली, शिला में मिलता है। इस पत्थर में तामरा टूर्मेलीन तथा काइनाइट-नामक रत्न भी नीलम के साथ मिलते हैं। काश्मीर में यह नीलम-दार पत्थर १४,००० फुट की ऊँचाई पर एक घाटी में पाया जाता है। आरम्भ में काश्मीर दर्बार को यहाँ के नीलमों से काफी आमदनी थी। सन् १९०६ में दर्बार की आज्ञा से यहाँ "काश्मीर मिनरल" नामक कम्पनी ने कार्य्य आरम्भ किया और

इस कम्पनी को कुछ अच्छे रत्न मिले भी। सन् १९०७ ई० में यहाँ पर एक नीलम मिला था जो २ हज़ार पौण्ड में बेचा गया। अधिक ऊँचाई के कारण यह स्थान वर्ष में नौ महीनों तक बर्फ़ से ढका रहता है इस कारण रत्न निकालने में अधिक सफलता नहीं मिलती। सन् १९३३ ई० के पश्चात् अब यहाँ फिर कार्य आरम्भ किया गया है और सन् १९३३ ई० में यहाँ पर २५,१०० तोला नीलम (कुछ कुरंदम सहित) निकाला गया जिसका मूल्य ९२ हज़ार रुपये हुआ था।

(३) स्पिनल (Spinel)

स्पिनल (याक़ूत ?) में एल्यूमीनम, मेग्नेशियम तथा आक्सीजन का सम्मेलन होता है। रासायनिक दृष्टि से मैग्नेशियम की उपस्थिति से ही यह लाल से भिन्न है। परन्तु यह रत्न साधारण लाल से कुछ कम कड़ा और इसके रवा भिन्न आकार के होते हैं। ख़ुर्दबीन द्वारा लाल और स्पिनल का अन्तर बड़ी सरलता से जाना जा सकता है। गुलाबी रंग के स्पिनल को "बैलास-रुबी" तथा गहरे लाल रंग के स्पिनिल को "स्पिनल-रुबी कहते हैं परन्तु साधारण रुबी (लाल) से ये कम मूल्यवान होते हैं। लाल के समान ये भी उसी प्रकार के मैगनेशियमदार पत्थरों अथवा नदियों की बालू में पाये जाते हैं। ब्रह्मदेश में लाल के साथ स्पिनल रत्न भी पाया जाता है।

(४) पुखराज (Topaz)

यह रत्न एल्यूमीनम, सिलीका और फ़्लोरीन गैस का सम्मेलन है और प्रायः परिवर्तित शिलाओं तथा ग्रेनेट के समान आग्नेय शिलाओं की धारियों में मिलता है। अधिकतः राँगे की खनिजदार पत्थरों में भी पाया जाता है। उसका रंग या तो सफेद या मद्रा के समान पीला सा होता है। पीले पुखराज को तप्त करने पर उसका रंग अक्सर सुन्दर शरबती हो जाता है। यदि अधिक तप्त किया जाय तो वह पुखराज सफेद हो जाता है। रङ्गदार पुखराज रङ्ग हीन से अधिक मूल्यवान माना जाता है। उपरोक्त क्रिया में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि तप्त करने में पुखराज की स्वच्छता में विघ्न पड़ सकता है। पुखराज स्पिनल के बराबर ही कड़ा होता है। इसमें एक दिशा में टूटने की रुचि अधिक होती है इस कारण अधिक चोट इत्यादि लगने पर इसके खराब हो जाने का डर रहता है।

भारत में वास्तविक पुखराज केवल ब्रह्मदेश की राँगा और वुल्फ़रम वाली शिलाओं में ही मिलता है और वहीं की नदियों की बालू में से कुछ पुखराज निकाले जाते हैं परन्तु भारतीय जौहरी कुरंदम की पीली किस्म को भी प्रायः पुखराज ही कहते हैं।

(५) पन्ना (Emerald)

पन्ना या ज़मर्रुद बेरिल (Beryl) नामक खनिज की स्वच्छ गहरे हरे (घास के समान) रङ्ग की क़िस्म को कहते हैं। बेरिल का रङ्ग हल्का हरा होता है परन्तु समुद्रीय जल के समान नीले रंग के बेरिल भी बहुत मिलते हैं। इनको एक्वामेरीन (Aquamarine) कहते हैं। बेरिल तथा उसकी उपरोक्त दोनों किस्में एल्लूमीनम बेरीलियम और सिलीका के

सम्मेलन हैं। ये रत्न प्रायः अबरकदार आग्नेय शिलाओं या परिवर्तित शिष्ट नामक शिला में पाये जाते हैं। इन खनिजों तथा रत्नों के रवा षट्भुजीय प्रिज्म (Prism) के आकार के होते हैं। ये रत्न पुखराज और स्पिनल से कम कड़े होते हैं। पन्ना आँखों के लिये लाभदायक माना जाता है।

भारतवर्ष में बिहार के हज़ारीबाग जिले के तथा मद्रास में नैलोर ज़िले के अबरक के क्षेत्र में पेग्मेटाइट (Pegmatite) नामक धारीवाले अबरकदार आग्नेय पत्थर में बेरिल के बड़े-बड़े क्रिस्टल पाये जाते हैं। कभी-कभी ये क्रिस्टल डेढ़ फुट तक लम्बे होते हैं। ये बेरिल अधिकतः बहुत स्वच्छ नहीं होते और इनके रवा टूटे भी होते हैं परन्तु अनेक टुकड़ों में कहीं कहीं पर स्वच्छ एक्वामेरीन के रवा दृष्टि गोचर होते हैं जिनको निकाल कर रत्न बनाये जा सकते हैं। अब तक मद्रास के कोयम्बटूर ज़िले में तथा किशनगढ़ और काश्मीर राज्यों में ही एक्वामेरीन निकालने का प्रयत्न किया गया है। इन स्थानों से अच्छे रत्न प्राप्त हो चुके हैं। कोयम्बटूर में पायूर नामक स्थान पर १६ वीं शताब्दी के आरम्भ में अनेक उत्तम एक्वामेरीन रत्न मिले थे। अजमेर-मेरवाड़ा तथा किशनगढ़ राज्य के सागर नामक स्थान से एक्वामेरीन निकाले जाते हैं। काश्मीर में डासो नामक गाँव के पास बेरिल के साथ अच्छे एक्वामेरीन पाये गये हैं। सन् १६३३ में यहाँ ६८६ तोले एक्वामेरीन निकाले गये जिन का मूल्य १) रु० प्रति तोले के हिसाब से था।

वास्तविक पन्ना भारतवर्ष में कभी नहीं मिलता है। यहाँ के जौहरी हरे रङ्ग के कुरंदम को पन्ना ही कहते हैं। असली पन्ना हरे कुरंदम से कुछ हलका होता है।

(६) क्राइसोबेरिल (Chrysoberyl)

यह खनिज एल्यूमीनम, बेरीलियम और आक्सीजन का सम्मेलन है। इस में बालू (सिलीका) के अंश का अभाव है इसका रङ्ग पीला अथवा कुछ पीला मिला हुआ हरा होता है। ये रत्न पुखराज और स्पिनल से अधिक कड़े परन्तु लाल और नीलम से नरम होते हैं। यह खनिज प्रायः आग्नेय धारी वाली शिलाओं में मिलती है। मद्रास के कोयम्बटूर ज़िले में तथा किशनगढ़ राज्य के गोविन्द सागर स्थान के क़रीब की आग्नेय शिला की धारियों में क्राइसोबेरिल के क्रिस्टल मिलते हैं परन्तु मद्रास के क्रिस्टल बहुत स्वच्छ नहीं हैं। क्राइसोबेरिल की एक मूल्यवान क़िस्म एलेग्ज़ेन्ड्राइट (Alexendrite) कहलाती है। कारण कि इस रत्न का आविष्कार द्वितीय एलेग्ज़ेन्डर की जन्म तिथि के दिन तथा उसी के राज्य में हुआ था। यह रत्न सूर्य के प्रकाश में सुन्दर हरा होता है परन्तु चिराग़ के प्रकाश में सुर्ख़ मालूम पड़ता है। लङ्का द्वीप में क्राइसोबेरिल की यह क़िस्म मिलती है।

(७) तामरा (Garnet)

गार्नेट (संग महताब, चुनरी, तामरा अथवा याक़ूत ?) कई क़िस्म के और कई रंग के होते हैं। रासायनिक दृष्टि से ये प्रायः एल्यूमीनम, लोहे तथा चूना, मैगनेशियम या मैङ्गनीज, और सिलीका के सम्मेलन होते हैं। भारत में लाल, गुलाबी या जामुनी रंग

के ही गार्नेट रत्न अधिक मिलते हैं। गार्नेट मुख्य बहुमूल्य रत्नों से कुछ नरम होता है और न यह इतना दुर्लभ ही है। इस कारण उनके मुकाबिले में अधिक मूल्यवान नहीं गिना जाता। किरणाभेद्य अथवा पिण्डीकार गार्नेट, पदार्थों को काटने या पालिश करने के लिये "गार्नेट के कागज़ या कपड़ा" बनाने के काम में आता है। ऐसा गार्नेट अजमेर में सर्सरी गाँव के पास मिला है। गार्नेट खनिज अधिकतर अबरक़दार परिवर्तित शिलाओं में मिलती है। इस खनिज के रत्न ऐसे पत्थरों में से निकल कर प्रायः नदियों के बालू में और दूसरे रत्नों के साथ पाये जाते हैं। जयपुर राज्य में राजमहल, उदयपुर में शाहपुरा तथा किशनगढ़ रियासत में सरवार नामक स्थानों में गार्नेट रत्न मिलता है। अजमेर मेरवाड़ा में भी दो एक स्थानों पर गार्नेट मिलता है परन्तु किशनगढ़ राज्य के गार्नेट भारतवर्ष में उत्तम समझे जाते हैं। इन स्थानों के अतिरिक्त बिहार के अबरक़ के क्षेत्र में, मद्रास के टिनेवली जिले में तथा ट्रावन्कोर राज्य के समुद्रीय तट की बालू में भी काफी परिमाण में गार्नेट मिलते हैं। चित्राल और अफ़गानिस्तान के बीच की भूमि में तथा हैदराबाद राज्य में भी गार्नेट मिलता है। मध्य-प्रान्त के मैङ्गनीज़ दार पत्थरों में मैङ्गनीज़ गार्नेट बहुत मिलता है जिसके स्वच्छ रवा सुन्दर नारङ्गी रंग के होते हैं। अमरीका इत्यादि देशों में इस किस्म के गार्नेट की भी माँग है।

(८) ज़र्कन (Zircon)

ज़र्कन ज़रकोनियम और सिलीका का सम्मेलन होता है। यह प्रायः आग्नेय ग्रेनिट इत्यादि शिलाओं में अथवा उनसे पृथक होकर नदियों की बालू में पाया जाता है। हीरा के बाद चमक में ज़र्कन का ही नम्बर आता है। इस रत्न का रंग भूरा, पीला या लाल होता है। लाल ज़र्कन गुलमीदक (Hyacinth) कहलाता है। पीले ज़र्कन और हीरे में अन्तर कठिनता से दृष्टिगोचर होता है परन्तु ज़र्कन हीरे के मुकाबिले बहुत कम कड़ा होता है। इसकी कड़ाई पन्ना अथवा गार्नेट के बराबर है।

भारतवर्ष में ट्रावन्कोर राज्य के कई स्थानों की पेग्मेटाइट नामक आग्नेय शिला में तथा वहाँ के समुद्र-तट के बालू में ज़र्कन के रवा बहुत मिलते हैं। यहाँ की बालू में क़रीब ६ प्रतिशत ज़र्कन होता है। बिहार के गया और हज़ारीबाग ज़िलों के अबरक के क्षेत्र में तथा मद्रास के कोयम्बटूर और त्रिचनापली ज़िलों में और ब्रह्मदेश में ज़र्कन मिलता है परन्तु ये बहुत स्वच्छ नहीं होते। अधिकतर स्थानीय ज़र्कन रत्नों के लिये नहीं परन्तु ज़रकोनियम आक्साइड नामक पदार्थ बनाने के लिये निकाला जाता है। अधिक टेम्प्रेचर सह सकने वाले सीमेन्ट अथवा घड़ियाँ (Crucible) तय्यार करने में इस पदार्थ की आवश्यकता होती है।

गुलमीदक—लाल स्वच्छ ज़र्कन—हिमालय पर्वत में केदारनाथ जी के पास गङ्गा जी की घाटी में पाया गया है।

(९) टूर्मेलीन (Tourmaline)

टूर्मेलीन खनिज (लङ्का की भाषा में तुरामली) एल्यूमीनम, मैग्नेशियम और सोडियम अथवा लीथियम तथा बोरन, लोहा और हाइड्रोजन का सम्मेलन है। इस खनिज

की कई किस्में होती हैं। साधारण टूर्मेलीन कोयले के समान काले रंग की होती है। यह खनिज अबरक के आग्नेय या परिवर्तित पत्थरों में भारतवर्ष के अनेक स्थानों में पाई जाती है परन्तु इसका कोई उपयोग नहीं है। जब यह खनिज स्वच्छ लाल, नीले या हरे रंग की होती है तब इसकी गणना रत्नों में की जाती है। लाल टूर्मेलीन को रुबीलाइट (Rubellite) तथा हरी टूर्मेलीन को इण्डीकोलाइट (Indicolite) कहते हैं। लाल टूर्मेलीन ब्रह्मदेश में लाल इत्यादि रत्नों के साथ पाई जाती है। इस शताब्दी के आरम्भकाल में ३ वर्षों में वहाँ पर लगभग १०१ पौण्ड लाल टूर्मेलीन निकाली गई थी जिसका मूल्य ७५० पौण्ड हुआ था। ब्रह्मदेश में सङ्का नामक स्थान पर भी पता चला है कि लाल टूर्मेलीन पाई जाती है। यहाँ डेढ़ या दो शताब्दियों पूर्व चीनी निवासी यह रत्न निकाला करते थे। इस स्थान पर यह रत्न एक प्रकार के ग्रेनिट की धारियों में पाया जाता है। इस जगह की कुछ पुरानी खानें १०० फीट तक गहरी हैं।

हरी और नीली टूर्मेलीन बिहार के हज़ारीबाग जिले के अबरक के क्षेत्र में भी थोड़ी सी मिलती है। काश्मीर के नीलम के साथ भी हरी टूर्मेलीन के रत्न पाये गये हैं। लाल टूर्मेलीन नैपाल में भी मिली है।

(१०) काइनाइट (Kyanite)

यह रत्न एल्यूमीनम और सिलीका का सम्मेलन होता है। इसकी स्वच्छ क़िस्म अपने सुन्दर आकाशीय नीले रंग के कारण रत्न मानी जाती है। यह खनिज प्रायः लम्बे और चाकू के फल के समान रवाओं में मिलती है। इसकी कड़ाई, लम्बाई और चौड़ाई की दिशाओं में भिन्न भिन्न होती है। यह खनिज भारत की प्राचीन परिवर्तित शिलाओं में पाई जाती है। पटियाला राज्य में नारनौल के पास तथा हिमालय पर्वत पर, पंजाब के कन्नौर और बाशहर नामक स्थानों में बहुत मिलती है। पटियाले में जौहरी इसको 'ब्रुज' कहते हैं और वहाँ पर यह ३) से ५) रु० तोले तक बिकती है। नैपाल राज्य में भी स्वच्छ काइनाइट पाई जाने की सूचना मिली है।

(११) रंगीन स्फटिक तथा सिलीका की अन्य क़िस्में

आग्नेय शिला की धारियों में सिलीका सफेद प्रायः पिण्डाकार रूप में होता है। उसको बिल्लौरी पत्थर कहना अत्युक्ति होगा। परन्तु ग्रेनेट इत्यादि आग्नेय शिलाओं में अथवा बेसाल्ट इत्यादि आग्नेय ज्वालामुखीय शिलाओं के सूराखों में सिलीका की अनेक सुन्दर सुन्दर खनिजें पाई जाती हैं। इनकी गणना यद्यपि रत्नों में तो नहीं कर सकते तथापि इनको उप-रत्न नाम दे सकते हैं। कारण कि सिलीका की यह किस्में सस्ते जवाहरात मानी जाती हैं और कभी कभी साधारण मनुष्य की आँख में धूल झोंकने के लिये इनमें से कुछ को जौहरी मूल्यवान रत्नों के स्थान पर बेच भी देते हैं। रवादार सिलीका के स्वच्छ स्फटिकों को उनके रंगों के अनुसार भिन्न भिन्न नाम दिये गये हैं जिसमें से मुख्य ये हैं:—

(१) रंगहीन स्वच्छ स्फटिक (Rock crystal) :—यह खनिज भारत के अनेक स्थानों पर मिलती है। मद्रास के तंजौर ज़िले में इस प्रकार के स्फटिक के टुकड़ों

को सस्ते उपरत्नों के रूप में काटा जाता है। इनको यहाँ के लोग "वेलम के हीरे" कहते हैं। पंजाब में कालाबाग़ और मारी के पास, साल्टरेंज नामक पहाड़ पर, छोटे छोटे सफेद या हल्के सुर्ख स्फटिक के रवा बहुत मिलते हैं। ये यहाँ पर "मारी के हीरे" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनको काटकर माला इत्यादि के दाने तथा शालिग्राम जैसी मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। ब्रह्मदेश में भी स्वच्छ स्फटिक पाया जाता है। करीब आठ वर्ष पहले (कदाचित मोगक क्षेत्र से) एक स्फटिक का ढेला निकाला गया था जो चीन देश में काटा गया और जापान देश में पालिश करा के संयुक्त राज्य अमेरिका के वाशिङ्गटन के अजायबघर में भेजा गया। इस स्फटिक से बनाई हुई गेंद का वज़न १३० पौंड है और इसका व्यास ३० इंच के लगभग है। इसी प्रकार करीब एक फीट लम्बा स्फटिक का स्वच्छ क्रिस्टल नेपाल से कलकत्ता के एक सज्जन द्वारा धनबाद कालिज के ज्यालोजी विभाग को प्राप्त हुआ है। ऐसे स्फटिक चश्मा इत्यादि बनाने के लिये बहुत उपयोगी होते हैं।

(२) गुलाबी स्फटिक (Rose quartz)—इस स्फटिक का रंग गरम करने पर उड़ जाता है परन्तु फिर गीला करने पर लौट आता है। यह उप-रत्न मध्य प्रान्त के छिन्दवाड़ा ज़िले में, हैदराबाद में वरङ्गल नामक स्थान पर तथा बिहार के अबरक के क्षेत्र में अनेक स्थानों पर पाया जाता है।

(३) जामुनी या बैंगनी स्फटिक (Amethyst)—इन में गहरे रंग के स्फटिक अधिक मूल्यवान होते हैं। इसमें से कुछ स्फटिक चिराग़ की रोशनी में सुर्ख दिखाई दिया करते हैं। नर्मदा नदी की घाटी में, जबलपुर इत्यादि स्थानों के पास, तथा सतलज नदी की घाटी में, बाशहर नामक स्थान में, इस प्रकार के उप-रत्न बहुत मिलते हैं।

रवाहीन सिलीका की किस्में प्रायः शिलाओं के सूराखों में पृथ्वी के अन्दर से गर्म वाष्प तथा जल द्वारा लाये हुए सिलीका के अवक्षेपन से बनी हैं। रवाहीन सिलीका की ये खनिज प्रायः सारे दक्षिणी भारत में, बेसाल्ट नामक ज्वालामुखीय काले रंग की शिला के सूराखों में, पाई जाती हैं। दक्षिण की भीमा, गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा तथा अन्य बड़ी बड़ी नदियाँ प्रायः इसी प्रकार की शिला के ऊपर होकर बहती हैं। इस कारण उनकी घाटी में इन उपरत्नों के टुकड़े अधिक मिलते हैं। सिलीका की इन किस्मों में मुख्य ये हैं:—

१—अक़ीक़, गोमेद या यमनी (Agate)—इस खनिज में भिन्न भिन्न रंग की अथवा एक ही रंग की गहरी और फीकी धारियाँ होती हैं। कृत्रिम उपायों से ये धारियाँ और भी सुन्दर बनाई जा सकती हैं। उपरोक्त स्थानों के अतिरिक्त राज पीपला रियासत में रत्नपुर नामक स्थान पर गोमेददार काङ्गलोमरेट की एक तह (तृतीय कल्प की) पाई जाती है। यहाँ से गोमेद दो हज़ार वर्ष पूर्व भी निकाली जाती थी। एगेट को पालिश करने पर उसके अन्दर का मैल कभी कभी फूल, पत्ती या अति सूक्ष्म चिड़िया इत्यादि की शक्ल का दिखाई दिया करता है।

२—गोमेद सन्नाभि (Chalcedony) धारीहीन गोमेद होती है।

३—**लाल गोमेद** (Carnelian)—धारीहीन गोमेद की सुप्रकाश (Translucent) क़िस्म है। पालिश होकर इसके टुकड़े अंगूठी इत्यादि के नगों के लिये उत्तम होते हैं।

४—केलई हरी और अंगूरी हरी गोमेद (यश्म) (Prase and chrysoprase) ये धारीहीन गोमेद की हरी क़िस्में हैं। यदि केलई रंग की गोमेद किरणाभेद्य हो तो उसे 'प्लास्मा' (Plasma) कहते हैं और यदि इस रंग में कहीं कहीं कुछ खून के रंग की सी बूंदें हों तो उस खनिज को 'ब्लडस्टोन' (Bloodstone) कहते हैं।

(५) **जेस्पार** (Jasper)—लाल किरणाभेद्य धारीहीन गोमेद होती हैं।

(६) **संग सुलेमानी** (Onyx)—यह प्रायः काले रंग की धारीहीन गोमेद होती है जिसमें एक दो (सफेद अथवा नीली) सीधी धारियाँ होती हैं।

(७) **दूधिया** (Opal)—यह प्रायः सफेद उज्जमय रवाहीन सिलीका होता है। इसकी कोई कोई किस्म बड़ी प्रकाशवाली तथा अग्नि-वर्ण होती है। उसको फायर-ओपाल (Fire-Opal) कहते हैं। कई किस्मों में बैंगनी, हरे और सफेद रंगों की चमक दमक होती है, इनको बहुमूल्य ओपल (Precious-Opal) कहते हैं।

इन सब खनिजों को पालिश करके भिन्न भिन्न प्रकार की चीज़ें जैसे बटन, डिब्बी इत्यादि बनाई जाती हैं। इन पत्थरों का व्यवसाय बाँदा, जबलपुर तथा मध्यप्रान्त के अन्य स्थानों पर बहुत है परन्तु विदेशों को भेजने के लिये इन पत्थरों का सब से बड़ा बाज़ार बम्बई प्रान्त के केम्बे शहर में है जहाँ पर अति प्राचीन समय से ही इन उप-रत्नों को काटने, पालिश करने तथा उनसे भिन्न भिन्न वस्तुएँ बनाकर विदेशों को भेजने का व्यवसाय चला आ रहा है।

पंचम खण्ड

अन्य उपयोगी खनिज-पदार्थ

(१) अबरक

अबरक एल्यूमीनम तथा खारों (Alkalies) के सिलीकेट होते हैं और कई अबरकों में इनके साथ मेग्नेशियम और लोहे के आक्साइड (Oxide) भी सम्मिलित होते हैं। अबरकों में मुख्यतः बायोटाइट (काला अबरक) तथा मस्कोवाइट (सफेद अबरक) ही अधिक मिलते हैं। सफेद अबरक में काले अबरक से सिलीका (बालू) अधिक और एल्यूमीना बहुत अधिक परिमाण में होता है; परन्तु लोहे के आक्साइड और मेग्नेशिया बहुत कम होते हैं। दोनों प्रकार के अबरकों में जल का भी कुछ अंश रहता है। इसका परिमाण सफेद अबरकों में ७ प्रतिशत तक और काले में १५ प्रतिशत तक होता है। जल का यह अंश अबरकों में से उनको अधिक तप्त करने पर ही निकल सकता है।

अबरकों को प्रायः अत्यन्त पतली-पतली परतों में पृथक् किया जा सकता है। ये परतें अधिकतः पारदर्शक (Transparent) होती हैं। सफेद अबरक की पतली परतें काँच के समान रंग-हीन होती हैं।

अबरक के उपयोग—प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों में अबरक की कई किस्मों का उल्लेख है। इन ग्रन्थों में रंग हीन या सफेद अबरक को ब्राह्मण-वर्ण, लाल को क्षत्रिय-वर्ण, पीले को वैश्य-वर्ण तथा काले को शूद्र-वर्ण का अबरक लिखा है। औषधीय गुणों के अनुसार अबरकों को 'पिनका', 'दादुर' 'नाग' तथा वज्र नामक श्रेणियों में विभाजित किया गया है। पिनका-अबरक को अग्नि में डालने से उस की परतें अलग-अलग हो जाती हैं और इसके सेवन से मनुष्य को कुष्ट रोग हो जाता है। दादुर-अबरक अग्नि में पड़ने पर मेढक के बोलने के समान आवाज करता है। इसके सेवन से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। नाग अबरक को तप्त करने पर सर्प की फुफकार के समान शब्द होता है। इस को खाने से मनुष्य के शरीर में घाव हो जाता है। वज्र अबरक पर अग्नि का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसके सेवन से मनुष्य की निर्बलता दूर होती है और वह अकाल मृत्यु से बचता है। आयुर्वेद में औषधियों में केवल काला अबरक ही प्रयोग होता है। पश्चिमीय देशों में भी प्राचीन काल में अबरक का प्रयोग औषधियों में होता था। संग्रहणी रोग में शराब के साथ अबरक के बुरादे का सेवन तथा फोड़ों में जले हुए बुरादे का प्रयोग किये जाने के वृतान्त पश्चिमीय ग्रंथों में मिलते हैं।

आधुनिक काल में काले अबरक का प्रयोग कहीं नहीं होता। हाँ, सफेद अबरक तथा पीतवर्ण अबरक (Philogopite) बहुत उपयोगी है। ये अबरक अपनी स्वच्छता, लचक (Elasticity), तड़क (Cleavage) तथा बिजली और गर्मी के लिए अचालकता (Non-conductivity) इत्यादि गुणों के कारण बड़े उपयोगी प्रमाणित हुये हैं। इन गुणों के अतिरिक्त इन अबरकों पर—विशेषतः सफेद अबरक पर रासायनिक पदार्थों का भी बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

चमकदार होने के कारण अबरक का भारतवर्ष में पुराने समय से ही हिन्दू-देवताओं की प्रतिमाओं के सजाने, मुसलमानों के ताज़ियों के बनाने तथा विवाह इत्यादि उत्सवों पर वर के मुकुट और फुलवाड़ी इत्यादि के लिये उपयोग होता रहा है। भारतीय स्त्रियों के मस्तक की बिन्दी के लिये तथा कपड़ों के रंगने में भी इसका प्रयोग होता है। दो एक भूगर्भवेताओं का विचार है कि पाण्डवों के महल में जो दुर्योधन को थल के स्थान पर जल का भ्रम हुआ था वहाँ कदाचित अबरक का प्रयोग किया गया होगा।

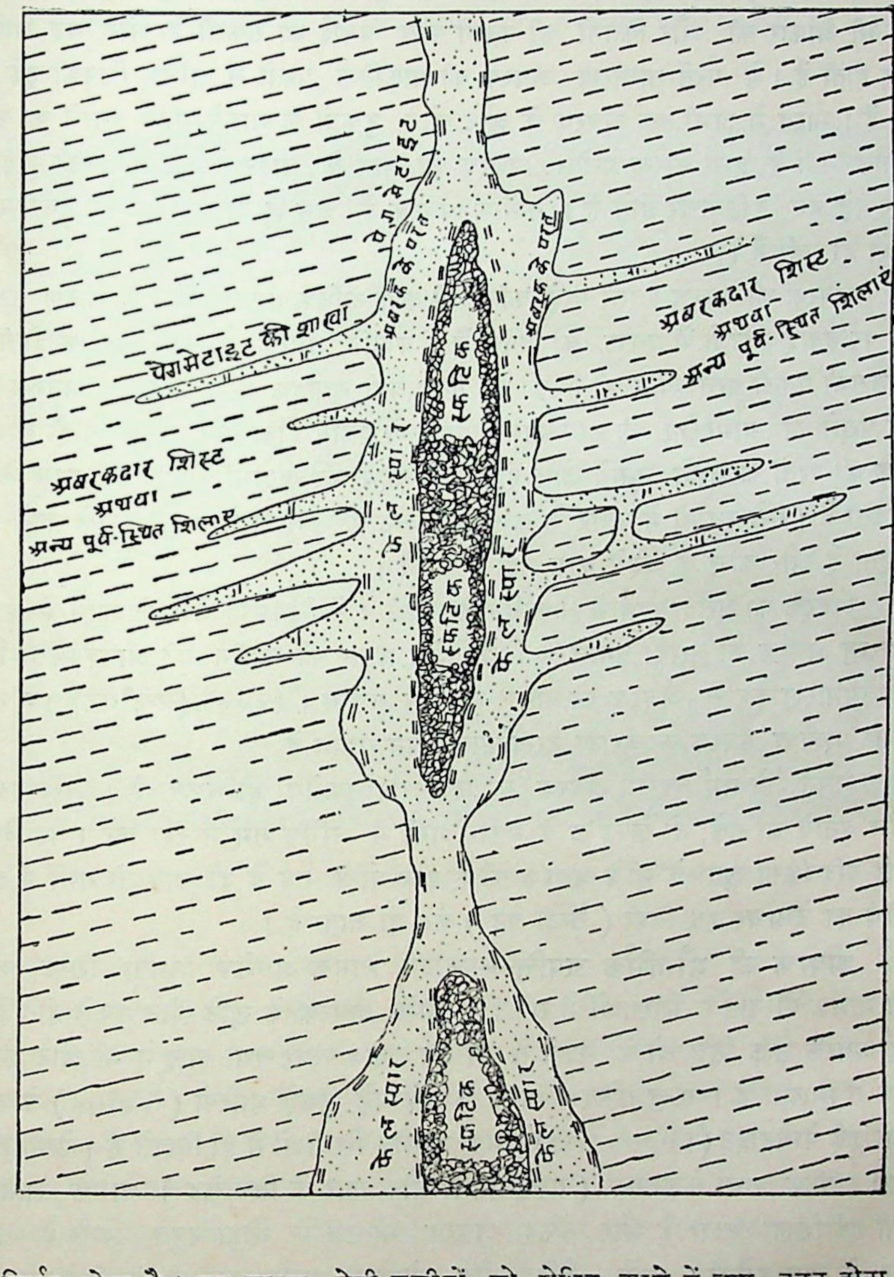
अपनी स्वच्छता तथा पतली पतली परतों में पृथक् हो जाने की रुचि के कारण अबरक लालटेन की चिमनियों और मकानों की खिड़कियाँ में बहुत समय से काम आ रहा है। इन चीज़ों में काँच का आविष्कार होने से पहले कदाचित अबरक का ही प्रयोग होता होगा। आजकल भी चिमनियाँ बनाने में काँच से अबरक अधिक उपयोगी होता है, क्योंकि ठंडी वायु के झोकों से अथवा मेंह की बूंदों से अबरक की चिमनियों के चटक जाने का डर नहीं रहता।

अबरक में होकर गर्मी शीघ्र आर-पार नहीं जाती। ४००°-६००° (सेंटीग्रेड) तक अबरक की स्वच्छता में भी कोई अन्तर नहीं पड़ता; इस कारण कारखानों में भट्ठियों के मुंह पर स्वच्छ अबरक लगा रहता है। अबरक में से भट्टी के अन्दर की क्रियाएँ सरलता से देखी जा सकती हैं और ऐसा करते समय, अग्नि की गर्मी से मुँह झुलस जाने का डर भी नहीं रहता। इसके अतिरिक्त अबरक अन्य-प्रतिरोधक पदार्थों के समान बायलर (Boiler) के ऊपर भी लगाया जाता है जिससे वे अधिक ठंडे नहीं पड़ते, और इस कारण, उनसे अधिक कार्य लिया जा सकता है।

ताप के समान ही अबरक बिजली को भी अपने आर-पार नहीं निकलने देता। इस गुण के कारण ही अबरक आधुनिक काल में बिजली की मशीनों के लिये एक अत्यन्त उपयोगी पदार्थ सिद्ध हुआ है। इन मशीनों में अबरक की परतों का रोधक-पदार्थ (Insulator) के रूप में प्रयोग होता है। छोटे-छोटे डाइनामों (Dynamo) और बिजली के मोटरों के कमूटेटर (Commutator) में स्वच्छ अबरक की .०६ से १.० मिलीमीटर तक पतली परतों की आवश्यकता होती है। इन के लिये अबरक ताँबे के बराबर मुलायम होना चाहिये, क्योंकि ताँबे के साथ हो अबरक की परतों को भी मोड़ कर लगाया जाता है। इस दृष्टि से पीला अबरक (Philogopite) अधिक उपयुक्त है; यह अबरक ट्रावन्कोर में थोड़ा सा मिलता है। परन्तु सफेद अबरक के मुकाबिले पीला बहुत कम मिलता है। इस कारण हरे रंग का भारतीय अबरक इस प्रयोग में अधिक लाया जाता है।

बिजली की बड़ी बड़ी मशीनों में रोधन के लिये स्वच्छ अबरक के बहुत बड़े परतों की आवश्यकता होती है। क्योंकि अबरक का मूल्य उसकी स्वच्छता और आकार

अबरकदार पेग्मेटाइट का चित्र



पर निर्भर होता है। इस कारण ऐसी मशीनों को रोधित करने में व्यय बहुत होता है। परन्तु आज कल यह कार्य अबरक के छोटे छोटे टुकड़ों को चपड़े इत्यादि से चिपका कर माइकेनाइट नामक पदार्थ बनाकर किया जाता है। इस प्रकार माइकेनाइट की बड़ी

बड़ी परतें अबरक की परतों के समान तैयार कर ली जाती हैं और अबरक से वे सस्ती भी पड़ती हैं। सस्तेपन के अतिरिक्त उक्त प्रकार से तैयार किया हुआ माइकेनाइट अबरक के मुकाबिले अन्य प्रकार से भी अच्छा प्रतीत होता है। अबरक की परत एक समान पतली भी कठिनता से जा सकती है और अबरक में कभी कभी लोहे के आकसाइड इत्यादि के अनेक धब्बे होते हैं जिनसे उनकी रोधन-शक्ति कम हो जाती है। परन्तु माइकेनाइट की किसी भी आकार की और कितनी ही पतली परत बनाई जा सकती है और वह अधिक स्वच्छ होती है। ये परतें साधारण अबरक की प्राकृतिक परतों से अधिक चिपकी हुई भी रहती हैं। भारत में अभी तक अबरक के छोटे छोटे टुकड़ों के माइकेनाइट बनाने का कोई कारखाना नहीं है, इसी कारण प्रत्येक अबरक की खान के बाहर सैकड़ों मन रद्दी अबरक के ढेर पड़े हुए दृष्टिगोचर होते हैं। क्योंकि अबरक के इन छोटे छोटे टुकड़ों की माँग बिल्कुल ही नहीं है।

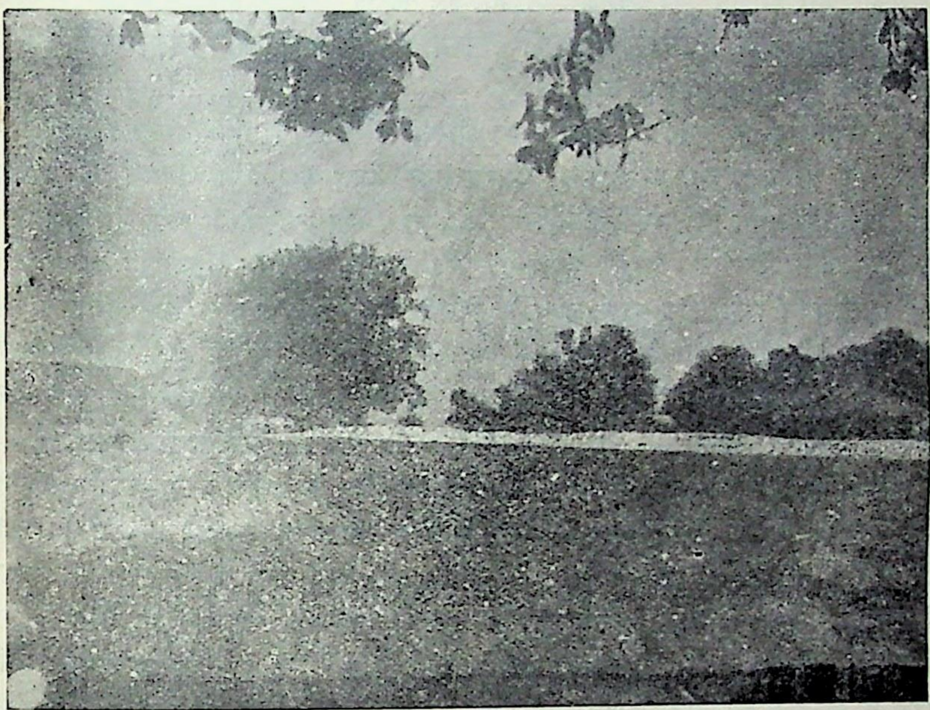
अबरक की स्वच्छ पतली परतें काँच से कहीं अधिक हल्की होने के कारण उसके स्थान पर हवाई जहाज़ों में प्रयुक्त की जाती हैं। क्योंकि अबरक में बहुत लचक होती है और उसकी पतली परत ध्वनि की तरङ्गों के लिए बड़ी सुग्राहक हैं; इस कारण अबरक की पतली परतों का ग्रामोफोन के डायाफ्राम बनाने में प्रयोग होता है। लचक के ही कारण अबरक की परतों के चश्मे बनाये जाते हैं जिनको पहन कर खदानों इत्यादि में काम किया जा सकता है। ऐसे स्थानों में पत्थर के कणों के उचट कर आँखों के अन्दर चले जाने का डर रहता है और कांच के चश्मे काम नहीं दे सकते।

अबरक का बुरादा रंगों में मिलाने तथा मशीनों में चिकनाई देने के काम में आता है। परन्तु अबरक का बुरादा बनाने के लिये विशेष प्रकार की मशीन की आवश्यकता है। क्योंकि साधारण रूप से अबरक को पीसा नहीं जा सकता। १००० (सेन्टीग्रेट) तक गर्म करने के पश्चात् अबरक का बुरादा सरलतापूर्वक बन सकता है।

भारत जैसे गर्म देश में अबरक का एक और उपयोग हो सकता है। यदि इसके खपड़ैल बनाये जा सकें, तो खपड़ैल के मकान गर्मी में अधिक गर्म न रहा करें। यह देखा गया है यदि किसी छत के नीचे अबरक की ६ इंच मोटी तह दे दी जाय तो गर्मी में छत के नीचे का टेम्प्रेचर १५ डिग्री (सेन्टी ग्रेट) कम हो जाता है।

अबरक की भौगर्भिक उत्पत्ति—ग्रेनाइट नामक आग्नेय अथवा शिष्ट और नाइस नामक परिवर्तित शिलाओं में सफेद या काले अबरक के छोटे छोटे टुकड़े होते हैं। सफेद अबरक उक्त शिलाओं के कणों से बने हुए जलज पत्थर तथा बालू में भी छोटे कणों के रूप में मिलता है। परन्तु सफेद अबरक के बड़े बड़े टुकड़े धारियों (Veins) के रूप में बनी हुई पेग्मेटाइट (Pegmetite) नामक आग्नेय शिलाओं में ही मिलते हैं। पेग्मेटाइट मुख्यतः स्फटिक तथा फेलस्पार (एल्यूमीनम और खार के सिलीकेट) नामक खनिजों से बनी हुई शिला होती है और सफेद अबरक भी उस में थोड़ा बहुत रहता है। इन खनिजों के साथ टुर्मेलीन, गार्नेट, बैरिल और एपेटाइट नामक खनिज भी पेग्मेटाइट में बड़े बड़े क्रिस्टल के आकार में मिलते हैं। इन खनिज के निर्माण में बोरन (Boron) फ़्लोरीन (Flourine) जल तथा सिलीका इत्यादि के वाष्पों का अधिक कार्य रहता है,

इस कारण भूगर्भवेत्ताओं का विचार है कि जिस द्रव पदार्थ से पेग्मेटाइट बनी है उसमें इन वाष्पों का बाहुल्य रहा है और इन्हीं के कारण यह पदार्थ पृथ्वी तल के नीचे बहुत धीरे धीरे ठंडा हुआ होगा जिससे अबरक तथा अन्य खनिजों के इतने विशाल आकार के क्रिस्टल पेग्मेटाइट में बन सके। पेग्मेटाइट का साधारण रासायनिक तथा खनिजात्मक सङ्गठन ग्रेनाइट नामक शिला के समान ही है और वह प्राय: ग्रेनाइट के पिण्डों के आस पास ही अधिकत: मिलती भी है इस कारण खनिज शास्त्र के विद्यार्थियों का विचार है



एक अबरक की खान के पास रद्दी अबरक का ढेर (श्री एन० प्रसाद की कृपा से प्राप्त)

कि पृथ्वी तल के नीचे जब किसी (ग्रेनाइट बनाने वाले) द्रव पदार्थ का प्रवेश होता है और उस पदार्थ के ऊपर धीरे धीरे ठंडा पड़कर ग्रेनाइट नामक शिला का निर्माण होने लगता है, तब अन्त में जमे हुए भाग के नीचे कुछ द्रव पदार्थ शेष रह जाता है और सम्भवत: उसमें वाष्पों का बाहुल्य होता है जिसके कारण वह पदार्थ कम तापक्रम (Temperature) पर भी द्रव दशा में रह सकता है। बाद को ऊपर के दबाव के कारण वह पदार्थ ग्रेनाइट के ठोस परत की अथवा उसके ऊपर की पूर्व-स्थित शिलाओं की दरारों में घुस जाता है और उनमें बहुत धीरे धीरे ठंडा होने लगता है क्योंकि उसमें वाष्पों का बाहुल्य रहता है। इस प्रकार विशाल क्रिस्टलदार पेग्मेटाइट नामक शिला उत्पन्न होती है, जो कालान्तर में पृथ्वी की ऊपरी सतह के, जल इत्यादि की क्रियाओं से धुल कर, नष्ट हो जाने पर पृथ्वीतल पर दृष्टिगोचर होने लगती है।

पेग्मेटाइट से अवरक की प्राप्ति—उक्त वृत्तान्त से यह स्वयं सिद्ध है कि पेग्मेटाइट पृथ्वी तल से दीवार के समान खड़ी या कुछ झुकी अन्दर चली जाती है। इस दीवार में से दोनों ओर पेग्मेटाइट की कई शाखाएँ भी निकल जाती है। ये शाखाएँ पूर्व स्थित शिलाओं की तड़क तथा तह इत्यादि के तलों से पर्याप्त लाभ उठाकर उन्हीं के रास्ते अधिक प्रवेश करती हैं। किसी पेग्मेटाइट की मोटाई प्रत्येक स्थान पर एक नहीं होती। अधिकतः यह बीच-बीच में पतली हो जाती है। इस प्रकार किसी एक पेग्मेटाइट में बहुत दूर तक कार्य नहीं कर सकते। यह आवश्यक नहीं है कि किसी पेग्मेटाइट में प्रत्येक स्थान पर एक ही प्रकार और आकार की खनिज प्राप्त हो, इस कारण प्रत्येक पेग्मेटाइट को अवरक के लिये कई स्थानों पर निरीक्षण करने की आवश्यकता होती है और आरम्भ में पेग्मेटाइट का उचित मूल्य नहीं कहा जा सकता।

भारतीय पेग्मेटाइट में अवरक का औसत परिमाण ६ प्रतिशत होता है। अर्थात् १०० मन पत्थर खोदने पर ६ मन अवरक प्राप्त होता है। इस अवरक को काट-छांट कर केवल एक मन ही उपयोगी अवरक रह जाता है। यह देखा गया है कि पेग्मेटाइट के बीच में स्फटिक का बाहुल्य होता है जिसमें काले टुर्मेलीन और हरे बैरिल के बड़े-बड़े क्रिस्टल (कई फीट तक लम्बे) मिलते हैं। स्फटिक से दोनों तरफ अर्थात् पेग्मेटाइट के दोनों ओर के किनारों में फेलस्पार नामक खनिज होती हैं। अवरक की बड़ी-बड़ी परतों के उपयोगी समूह (Books) या तो फेलस्पार और स्फटिक के बीच में दोनों ओर या फेलस्पार और पूर्व-स्थित शिलाओं के बीच में दोनों तरफ मिलते हैं। यही कारण है कि, अवरकदार पेग्मेटाइट के दोनों किनारों के पास अवरक निकाला जाता है पेग्मेटाइट पत्थर को खदान बनाकर निकालते हैं। और जब गहराई अधिक हो जाती है तब लकड़ी या लोहे की सीढ़ियों द्वारा नीचे जाकर और खोद कर पत्थर ऊपर लाया जाता है। पेग्मेटाइट पत्थर बहुत कड़ा होता है और इसको प्रतिदिन पहले बारूद से तोड़ा जाता है। बारूद के विस्फोटन से खान की वायु ख़राब हो जाती है इस कारण प्रायः यह क्रिया दिन के अन्त में की जाती है और दूसरी सुबह उन टूटे हुए पत्थरों में से अवरक निकाला जाता है। फल स्वरूप रात में अक्सर खानों में से अवरक की चोरी हो जाया करती है पेग्मेटाइट पत्थर के खोदने या तोड़ने में बड़ी सावधानी रक्खी जाती है क्योंकि अवरक के परतों के समूह (Books) पर हथोड़ा या छेनी की चोट से अवरक की स्वच्छता से हाथ धो बैठने का डर रहता है। अवरक के ये समूह खान के पत्थर से निकाल कर कारखाने में लाये जाते हैं जहाँ पर उनके चारों ओर के टूटे हुए तथा धब्बेदार भागों को हँसिये (sickle) से काट-छाँट कर निकाल दिया जाता है। जहाँ तक सम्भव हो अवरक के अच्छे परतों को बड़े-से-बड़ा गोल कोनेदार चतुर्भुजीय आकार देने का प्रयत्न किया जाता है। भारतीय अवरक के क्षेत्रों के मजदूर अवरक की काट-छांट की निपुणता में संसार में प्रसिद्ध हैं। मशीन द्वारा इतनी अच्छी तरह से अवरक को ठीक उचित परिमाण में नहीं काटा जा सकता। इन मज़दूरों को प्रायः ।।-) से ।।=) तक प्रति दिन के हिसाब से मज़दूरी मिलती है। इस काट-छांट में १०० मन अवरक में से केवल २० मन अवरक अच्छा प्राप्त होता है। इस क्रिया के पश्चात् कहीं-कहीं पर इन अवरक के समूहों में से

अबरक के भिन्न-भिन्न परत पृथक किये जाते हैं। अबरक का टुकड़ा जितना ही अधिक स्वच्छ और बड़े आकार का होगा उतना ही वह अधिक मूल्यवान होगा। धब्बेदार या छींटेदार अबरक किसी काम के नहीं होते चाहे उनके टुकड़े कितने ही बड़े हों। प्रत्येक अबरक के व्यापारी का उद्देश्य अबरक के स्वच्छ और बड़े-बड़े टुकड़े प्राप्त करने का होता है। बिहार प्रान्त में छांटे हुए अबरक के आकार के अनुसार अबरक की निम्नलिखित श्रेणियाँ नियत की गई हैं:—

श्रेणी का नम्बर	**आकार**	
श्रेणी विशेष	४८—६४ वर्ग इंच	अबरक का मूल्य सदा घटता बढ़ता है। नं० १ का स्वच्छ अबरक १३००) प्रति मन के हिसाब से बिक चुका है। औसत मूल्य अबरक को मिलाकर एक रु० प्रति पौंड पड़ता है।
,, नं० अ	३६—४८ ,, ,,	
,, ,, १	२४—३६ ,, ,,	
,, ,, २	१५—२४ ,, ,,	
,, ,, ३	१०—१५ ,, ,,	
,, ,, ४	६—१० ,, ,,	
,, ,, ५	३—६ ,, ,,	
,, ,, ५½	२½—३ ,, ,,	
,, ,, ६	२½ से १ वर्ग इंच	
,, ,, ७	१ वर्ग इंच से छोटा	

इन श्रेणियों में अधिकत: नं० ४ तथा उस से बड़े आकार के अबरक की मांग विदेशों में होती है परन्तु अब पश्चिमीय देशों में छोटे आकार के अबरक के टुकड़ों को चपड़ा इत्यादि से जोड़ कर माइकेनाइट (Micanite) नामक पदार्थ बनाया जाता है जो प्राय: बड़े टुकड़ों के ही समान काम में आता है।

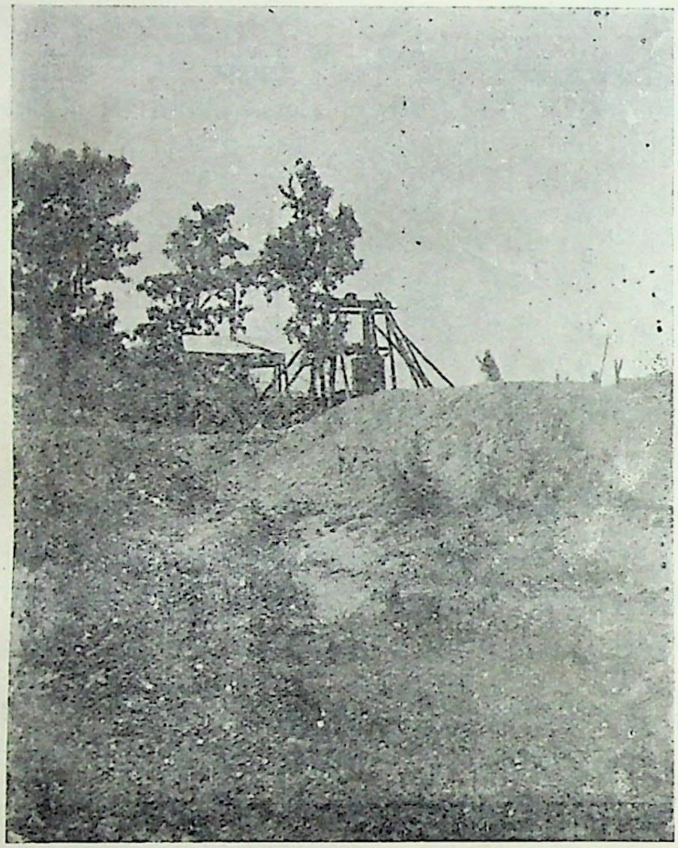
भारतवर्ष में अबरक में क्षेत्र—इस देश में अबरकदार पेग्मेटाइट अनेक स्थानों पर मिलती है। बिहार, मद्रास, ट्रावनकोर, मैसूर तथा अजमेर-मेरवाड़ा में अबरक बहुत मिलता है। इन सब स्थानों में से मुख्य क्षेत्र प्रथम दो प्रान्तों में ही हैं

बिहार में अबरक का क्षेत्र गया, हज़ारीबाग और मुङ्गेर ज़िलों में वर्तमान है। यह क्षेत्र १२ मील चौड़ा और ६० मील लम्बा है। अधिकतः अबरक की खानें कुडर्मा दोमचान्य, धाब, गवन तथा तिसरी इत्यादि स्थानों पर है। इन स्थानों के नाम विदेशों में भी विख्यात हैं। ये सब खानें हज़ारीबाग ज़िले में कुडरमा के जंगल में हैं। इस क्षेत्र के अबरक को 'बंगाल का अबरक' अथवा बंगाल का लाल अबरक' कहते हैं कारण कि यहाँ के अबरक का (विशेषतः परतों के समूह का) फीका लाल रंग होता है और यह अबरक बंगाल की राजधानी कलकत्ता से ही विदेशों को भेजा जाता है।

अबरक का दूसरा प्रसिद्ध क्षेत्र मद्रास के नैलोर ज़िले में है। यह भी क्षेत्रफल में बिहार के क्षेत्र के ही बराबर है। कालीचेडू तथा तेलाबोड्डू नामक यहाँ की प्रसिद्ध खाने हैं नैलोर का अबरक हरे रंग का होता है। बिहार का अबरक अनियमित आकार में हँसिया से काट कर ही विदेशों को भेज दिया जाता है परन्तु नैलोर का अबरक सम चतुर्भुजीय आकार

के परतों में कैंची से काटकर भेजा जाता है। इस कारण से यहां के अबरक की श्रेणियां बिहार के अबरक की श्रेणियों से भिन्न होती हैं।

भारतवर्ष के अबरक की कुल उपज का ९९ प्रतिशत से अधिक भाग केवल बिहार और मद्रास के इन्हीं दो क्षेत्रों से उत्पन्न होता है।



कुडर्मा की एक अबरक की खान का दृश्य (प्रो० राय की कृपा से प्राप्त)

भारतवर्ष में अबरक की उपज—गत ३५ वर्षों से भारत अबरक की उपज में संसार में अग्रदेश रहा है। संसार में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा भारत ही अबरक के लिये प्रसिद्ध हैं, परन्तु इन तीनों देशों की उपज का ८५ प्रतिशत अबरक भारत का ही होता है। प्रायः यह देखा गया है कि भारत में अबरक की उपज के आंकड़े इस देश से बाहर भेजे हुए अबरक के आकड़ों से प्रति वर्ष कुछ कम हुआ करते हैं। उदाहरणतः सन् १९३० ई० में भारत में लगभग २६३६ टन अबरक उत्पन्न हुआ परन्तु उस वर्ष लगभग ४१४५ टन (अर्थात् ५७ प्रतिशत अधिक) अबरक बाहर भेजा गया। इस से यह अनुमान किया गया था कि यहां की खानों में से अबरक चोरी से निकाल कर बाहर काफ़ी भेजा जाता था। सन् १९३० ई० में बिहार उड़ीसा की प्रान्तीय कौंसिल में अबरक की चोरी रोकने के लिये एक बिल पास हुआ जिससे अबरक को क्षेत्र से बाहर लेजाने तथा उसका व्यापार

करने के लिये काफी रोक-टोक हो गई है। सन् १९३३ ई० में अबरक की उपज का ब्यौरा इस प्रकार था:—

स्थान		परिमाण—टनों में		मूल्य रुपयों में	
बिहार उड़ीसा					
गया	ज़िला	४२०·१	टन	२,२६,६०६	रुपये
हजारी बाग	,,	१२१३·३	,,	१०,२९,१०२	,,
मुङ्गेर	,,	०·३	,,	१६६	,,
मद्रास					
नेलौर	,,	३६६·६	,,	३,९७,४६२	,,
नीलगिरी	,,	३·६५	,,	१२,२७५	,,
राजपूताना					
अजमेर-मेरवाड़ा		१६·३	,,	१०,१२८	,,
जैपुर राज्य		३·५	,,	३,०००	,,
कुल		२०५३·७५	,,	१६,८२,०४५	,,

इस अबरक का अधिक भाग संयुक्त राज्य अमेरिका, इङ्गलैण्ड, जर्मनी तथा फ्रान्स देशों को भेजा गया था।

(२) मेग्नेसाइट

मेग्नेसाइट (Magnesite) मेग्नेशियम का कार्बोनेट होता है। इसका रंग बरफ़ के समान सफेद होता है। भारतीय मेग्नेसाइट साधारण मेग्नेसाइट से अधिक कड़ा होता है और इसके कणों के रवा इतने छोटे होते हैं कि वह प्रायः रवा हीन खनिज प्रतीत होता है।

मेग्नेसाइट मुख्यतः मेग्नेशिया (मेग्नेशियम और आक्सीजन का सम्मेलन) बनाने के काम में आता है। मेग्नेसाइट को १०००° डिग्री सेन्टीग्रेट तक भट्टी में जलाने से जो मेग्नेशिया बनता है उसमें से दो या तीन प्रतिशत कार्बोनिक एसिड गैस शेष रह जाती है। यह मेग्नेशिया भिगो कर वायु में रखने से शीघ्र ठोस हो जाता है, इस कारण यह अन्य पदार्थों से मिला कर "सोरल" नामक सीमेन्ट बनाने के काम में आता है। सोरल सीमेंट बहुत कड़ा और अग्नि प्रतिरोधक होता है इस कारण यह पदार्थ कृत्रिम पत्थर, खपड़ैल तथा अग्नि प्रतिरोधक दीवारें बनाने के काम में आता है।

मेग्नेसाइट को १५००° डिग्री सेन्टीग्रेट से अधिक टेम्प्रेचर पर भट्ठी में जलाने पर जो मेग्नेशियम बनता है वह उपरोक्त मेग्नेशिया से भिन्न गुण का होता है। इस मेग्नेशिया में केवल ½ प्रतिशत कार्बोनिक एसिड गैस शेष रहती है। इसकी अच्छी क़िस्म में १३ प्रतिशत से अधिक मैल नहीं होता। यह मेग्नेशिया ऐसा जड़ पदार्थ होता है कि इस पर अग्नि का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इस गुण के कारण फौलाद, सीसा तथा तांबा इत्यादि शोधने की भट्टियों की दीवारों का भीतरी भाग इस पदार्थ की ईंटों से बनाया जाता है।

मेग्नेसाइट खनिज से मेग्नेशियम के कई अन्य लवण जो दवाइयों में प्रयोग होते हैं, बनाये जाते है ।

भारतवर्ष में मेग्नेसाइट खनिज का मुख्य जमाव मद्रास में सलीमनगर के पास 'चाक' (Chalk) नामक पहाड़ पर मिलता है । यह खनिज प्रायः अधिक मेग्नेशियदार आग्नेय शिलाओं की कुछ खनिजों के (जल और वायु द्वारा) परिवर्तन से बनती है । चाक के पहाड़ पर ऐसी ही शिलाएँ मिलती हैं । इन शिलाओं में ४½ वर्ग मील के क्षेत्र में मेग्नेसाइट धारियों के रूप में पाया जाता है । यहाँ खनिज का परिमाण अपरिमित कहा जाता है । उत्तम सफेद मेग्नेसाइट की कई पहाड़ियां मैदान से १४० फुट तक ऊँची खड़ी दृष्टिगोचर होती हैं, इसी कारण से शायद स्थानीय लोगों ने पहाड़ का नाम चाक का पहाड़ रक्खा होगा ।

इस स्थान के अतिरिक्त मैसूर राज्य के मैसूर और हसन जिलों में, ईडर राज्य के देवमोरी नामक स्थान पर तथा डूंगरपुर राज्य के पश्चिमीय भाग में भी मेग्नेसाइट मिलता है । ईडर राज्य का मेग्नेसाइट कुछ लोह-मय है ।

संसार में मेग्नेसाइट के लिये केवल चार ही देश प्रसिद्ध हैं—आस्ट्रिया, संयुक्त राष्ट्र अमरीका, यूनान और भारत । भारत की खनिज प्रायः सीमेंट बनाने के लिये ही विदेशों में जाती है । अमरीका ही भारत के मेग्नेसाइट का सबसे बड़ा खरीदार है । सन् १९३३ ई० में मद्रास में ११२३१ टन और मैसूर में ४०७५ टन मेग्नेसाइट निकाला गया जिसका मूल्य क्रम से ६७५५७) रु० तथा ३०१२३) रु० हुआ था । इस प्रकार उस वर्ष इस देश में कुल ९७६८०) रु० की यह खनिज उत्पन्न हुई ।

(३) एस्बस्टस

एस्बस्टस (Asbestos) दो प्रकार के होते हैं—एक ज़हरमोहरा (Serpentine) नामक खनिज की रेशेदार क़िस्म है और दूसरी एक प्रकार की हानब्लेण्ड (Hornblende) नामक खनिज की । इन दोनों प्रकार के एस्बस्टस में साधारणतः कुछ भी अन्तर दृष्टगोचर नहीं होता । परन्तु संसार में प्रथम प्रकार का एस्बस्टस अधिक मिलता है । ज़हरमोहरा भी मेग्नेसाइट खनिज के समान अत्यधिक मेग्नेशियमदार आग्नेय शिलाओं की कुछ खनिजों के परिवर्तन से बनता है । वास्तव में ज़हरमोहरा से ही बाद को जल और वायु की क्रिया से विशेष अवस्था में मेग्नेसाइट बन जाता है । कहीं-कहीं पर यह ज़हरमोहरा स्वयं पतली-पतली धारियों में रेशेदार एस्बस्टस में परिवर्तित हो जाता है ।

एस्बस्टस मेग्नेशिया, सिलीका और जल का सम्मेलन होता है । इस खनिज की उपयोगिता उसके रेशों के चिमड़ेपन और लचीलेपन तथा उसके अग्निप्रतिरोधक गुण के कारण ही है । एस्बस्टस के रेशे रुई के समान काते और बटे जा सकते हैं । जितने लम्बे रेशों का एस्बस्टस हो उतना ही अधिक मूल्यवान होता है । एस्बस्टस के रेशों से एस्बस्टस के के मोटे कागज, कपड़े तथा तख्ते तैयार किये जाते हैं । एस्बस्टस के कपड़ों पर अग्नि का कुछ असर न होने के कारण ये प्रायः तैल अथवा भक से जल उठने वाले अन्य पदार्थों के बक्सों में लगाये जाते हैं । अग्नि बुझाने वाले आदमियों के कपड़े भी इसी खनिज के बनते

हैं। एस्बस्टस के पदार्थ गर्मी को आरपार जाने से रोकते हैं इस कारण इस खनिज के तख़्ते रेल के डिब्बों तथा जहाज़ों में प्रयोग होते हैं जिससे गर्मी के मौसम में ये तपने न पायें और मुसाफ़िरों को गर्मी अधिक न लगे। एस्बस्टस के कागज़ अथवा चटाइयां बौइलर और इंजिन इत्यादि को ढकने के काम में आती हैं जिसमें वे ठण्डे न होने पावें।

पोर्टलैण्ड सीमेंट में मिलाकर एस्बस्टस से खपड़ैल तथा छत पाटने के पट्टे इत्यादि तैयार किये जाते हैं। इनके उपयोग से भारत जैसे गर्म देश में ग्रीष्म ऋतु में पक्के मकान अधिक गर्म न होने पायेंगे। मोटर कार के ब्रेक इत्यादि में भी एस्बस्टस लगाया जाता है।

एस्बस्टस के रेशों की तेज़ाब जैसे द्रवों को छानने के लिये आवश्यकता होती है। यह खनिज अबरक के समान ही बिजली के लिये अचालक है। इसलिये बिजली-घरों में भी इसका बहुत उपयोग होता है।

भारत में एस्बस्टस निम्नलिखित स्थानों पर अधिक मिलता है:—बिहार प्रान्त में सरायकेला और मयूरभञ्ज राज्यों में तथा मुंगेर ज़िले की परिवर्तित शिलाओं के क्षेत्र में एस्बस्टस की बड़ी-बड़ी धारियां मिलती हैं। मैसूर राज्य के शिमोगा, कडूर, हसन और मैसूर नामक जिलों में बहुत एस्बस्टस मिलता है। कहीं-कहीं पर कई फीट लम्बी एस्बस्टस की लकड़ी मिलती हैं। परन्तु यह एस्बटस शीघ्र टूटने वाला है इस कारण अधिक उपयोगी नहीं है। मद्रास के कडापा ज़िले में भी एस्बस्टस निकाला जाता है।

गुजरात के ईडर राज्य में देवमोरी नामक स्थान पर उत्तम प्रकार के एस्बस्टस की बड़ी-बड़ी लकड़ी के समान टुकड़ों को पानी में भिगो कर सुखाने पर सफेद रेशम जैसे रेशेदार एस्बस्टस प्राप्त हो जाता है। मध्यप्रान्त के भण्डारा ज़िले में तथा मध्यभारत में भी दो एक स्थान पर एस्बस्टस पाया जाता है।

सन् १९३२ ई० में इस देश में केवल ९० टन एस्बस्टस उत्पन्न हुआ जिसका मूल्य ९०००) रु० था। यह खनिज केवल बिहार-उड़ीसा प्रान्त के सरायकेला राज्य से निकाली गई थी।

(४) सेलखरी

सेलखरी (Steatite or Soapstone) टाल्क (Talc) नामक खनिज की एक अस्वच्छ या पिण्डाकार क़िस्म है। टाल्क अबरक के समान परतोंदार और सफेद होता है परन्तु यह अबरक से बहुत नरम और चिकना होता है। टाल्क की चमक मोती के समान होती है। उपरोक्त सब खनिजें मेग्नेशिया, सिलीका और जल का सम्मेलन हुआ करती हैं और मेग्नेशियमदार परिवर्तित शिलाओं में पाई जाती हैं। साधारण सेलखरी के प्याले, तश्तरी तथा अन्य बर्तन प्रायः हिन्दुओं के घर में एक दो अवश्य रहते हैं। उत्तम सफेद रंग की सेलखरी सुन्दर खुदाई के कार्य के लिये तथा मेजों के ऊपरीय भाग, स्नानागृह और गैस के चूल्हे बनाने में प्रयोग होती है। टाल्क की बहुत चिकनी क़िस्में चेहरे के लिये पाउडर तथा चिकने काग़ज़ बनाने में काम आती हैं। शोक की बात है कि कलकत्ता जैसे सभ्य नगरों में सफेद सेलखरी के बुरादे को सस्तेपन के कारण वहां के स्वार्थान्ध व्यापारी आटे में मिला देते हैं। परिणाम स्वरूप ऐसे नगरों में आटा जैसा खाद्य पदार्थ भी पवित्र

पाना कठिन है। कच्ची दालों में कीड़ों से बचाने के लिये सेलखरी का बुरादा मिलाया जाता है।

सेलखरी का बर्तनों में उपयोग होने के कारण भारत में पुराने समय से ही इस का व्यवसाय होता आया है। इस देश में अनेक स्थानों पर सेलखरी के जमाव मिलते हैं जिनमें से मुख्य-मुख्य ये हैं:—

जयपुर राज्य में डोगेथा, गिसगढ़, मौरा इत्यादि कई स्थानों पर सफेद सेलखरी मिलती हैं जो दौसा नामक स्टेशन के बाहर भेजी जाती है। ईडर राज्य में देवमोरी के पास एस्बस्टस के साथ ही अच्छी सेलखरी मिलती है। यहां पर सेलखरी की एक तह एक मील लम्बी और २०० फीट मोटी है। अनुमान किया जाता है कि पृथ्वीतल से केवल २० फीट ही नीचे तक लगभग २० लाख टन सेलखरी इस जमाव में वर्तमान है।

मध्यप्रान्त में जब्बलपुर के पास नर्मदा नदी के किनारे सङ्गमरमर के साथ उत्तम प्रकार की सफेद सेलखरी पाई जाती है। इस सेलखरी को पीसकर स्थानीय बर्न नामक कम्पनी कलकत्ता भेज रही है।

बिहार उड़ीसा प्रान्त की मयूरभंज और सराय केला रियासतों में तथा सिंघभूमि ज़िले में अच्छी सेलखरी मिलती है। मध्य भारत की बीजावर रियासत में तथा संयुक्त प्रान्त के हमीरपुर और झांसी ज़िलों में भी सेलखरी निकाली जाती है।

सन् १९३० ई० में भारत में सेलखरी की उपज इस प्रकार हुई थी:—

प्रान्त	परिमाण (टन में)		मूल्य (रुपयों में)	
राजपूताना (जैपुर राज्य)	१५१	टन	१२८६४३	रुपये
मध्य प्रान्त (जब्बलपुर)	११५४	,,	६०८८	,,
बिहार उड़ीसा (मयूरभंज, हजारी बाग, सिंघभूमि)	१११४	,,	१०२८४	,,
मद्रास (नैलेर, सलेम)	२४४	,,	५०१५	,,
मैसूर राज्य	११५	,,	८१४	,,
मध्य भारत (बीजावर,राज्य)	६०	,,	२७००	,,
सयुक्तप्रांत (हमीरपुर,झांसी)	८२१०	,,	२६४२०	,,
कुल उपज	१७०४८	टन	१८२६६४	रुपये

(५) मोनेज़ाइट

मोनेज़ाइट (Monazite) खनिज सीरियम, लेन्थेनम इत्यादि कई दुर्लभ तत्वों का फोस्फेट नामक सम्मेलन है। इस खनिज की उपयोगिता इस कारण है कि इससे थोरियम नामक तत्व का आक्साइड प्राप्त होता है जिससे थोरियम नाइट्रेट सम्मेलन तय्यार किया जाता है। यह पदार्थ गैस के लम्पों की झल्लियां बनाने के काम में आता है।

मोनेज़ाइट ग्रेनेट, पेग्मेटाइट जैसी आग्नेय शिलाओं में बहुत थोड़े परिमाण में पाई जाती है परन्तु यह खनिज उनसे प्रथक होकर अक्सर स्थानीय बालू में अन्य भारी खनिजों के साथ मिला करती है।

मोनेज़ाइट कुछ-कुछ पीले रंग की होती है। इसमें प्रायः एक प्रतिशत से १२ प्रतिशत तक थोरियम आक्साइड होता है। भारतीय मोनेज़ाइट की संसार की उत्तम मोनेज़ाइट में गणना की जाती है। इसमें प्रायः ८ प्रतिशत थोरियम आक्साइड मिलता है। इस देश में मोनेज़ाइट मुख्यतः ट्रावन्कोर राज्य के समुद्र तट के बालू में मिलती है। इस खनिज के छोटे-छोटे कण जर्कन, चुम्बक पत्थर, इलमेनाइट (टाइटेनियम और लोहे की खनिज), गार्नेट, स्फटिक इत्यादि अन्य खनिजों के कणों के साथ बालू में मिलते हैं। इस बालू से अभी मोनेज़ाइट, इलमेनाइट और ज़र्कन ही उपयोगी पदार्थ प्रथक किये जाते हैं।

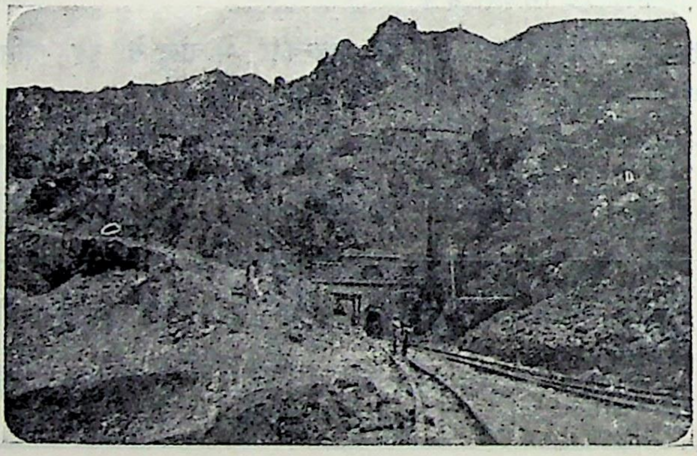
ट्रावनकोर के अतिरिक्त कन्याकुमारी तथा विज़गापट्टम के समुद्र तट के बालू में भी मोनेज़ाइट मिलती है। ब्रह्मदेश में तथा बिहार प्रान्त में गया ज़िले की अबरकदार पेग्मेटाइट में भी थोड़ी सी मोनेज़ाइट मिलती है।

सन् १९३१ और १९३२ ई० में ट्रावन्कोर में बालू से यह खनिज इस प्रकार निकाली गई थी:—

वर्ष	मोनेज़ाइट का परिमाण	मूल्य (पौण्डों में)
१९३१	८९.६ टन	८९० पौण्ड
१९३२	६५४.३ टन	६१४७ पौण्ड

(६) नमक

नमक सोडियम और क्लोरीन गैस का सम्मेलन है। नमक का मुख्य उत्पत्ति स्थान समुद्र का अथवा झीलों का खारी जल होता है। समुद्रीय जल में नमक के अतिरिक्त मेग्नेशियम, केलशियम और पोटेशियम के सल्फेट तथा मेग्नेशियम और पोटेशियम के क्लोराइड इत्यादि लवण भी घुले रहते हैं। जब समुद्र का थोड़ा सा भाग मुख्य जलनिधि से प्रथक हो जाता है तो उसका जल सूखना आरम्भ हो जाता है। लगभग ३७ प्रतिशत जल सूख जाने पर पहले केल्शियम सल्फेट नामक लवण का हरसोट (Gypsum) के रूप में अवक्षेपन (Precipitation) आरम्भ होता है। तत्पश्चात् जब केवल ७ प्रतिशत जल शेष रह जाता है तो नमक का अवक्षेपन होने लगता है। मेग्नेशियम और पोटेशियम के क्लोराइड जैसे तीते लवण जल में अन्त तक घुले ही रहते हैं। ये सब जल सूख जाने पर ही एकत्रित होते हैं। अनुमान किया गया है कि समुद्र के १००० फीट जल की तह के सूखने से नमक की केवल १५ फीट मोटी तह बनेगी। यदि ऐसे स्थान पर फिर समुद्रीय जल आ जाय तो पहले अवक्षेपन हुए मेग्नेशियम और पोटिशियम क्लोराइड नये जल में फिर घुल जायेंगे और फिर उसी क्रम से हरसोठ और नमक की तहें पहली तहों के ऊपर बनने लगेंगी। उपरोक्त अनुमान के अनुसार संसार के समुद्रों के सूख जाने से अधिक से अधिक ४५० फीट मोटी तह नमक और लवणों की बनेगी क्योंकि समुद्र की गहराई ३०००० फीट है। परन्तु वास्तव में संसार के नमक के कई प्राचीन जमाव हजारों फीट मोटी तह के हैं।



साल्टरेंज (नमक के पहाड़) का एक दृश्य।

भारतीय नमक मुख्यतया तीन प्रकार से उत्पन्न होता है—समुद्रीय जल से, खारी झीलों तथा खारी कुओं के जल से और पत्थरों में नमक के जमाव से। भारतीय नमक की वार्षिक उपज का $\frac{3}{4}$ भाग समुद्रीय जल से, आठवां हिस्सा नमक की खानों से तथा शेष भाग झीलों अथवा खारी कुओं से प्राप्त होता है।

(१) समुद्र तट के नमक के कारखाने बम्बई और मद्रास प्रान्तों में वर्तमान हैं। बम्बई में बलसर के पास धरासना तथा दरवाड़ा नामक स्थानों पर गवर्नमेन्ट के प्रसिद्ध

कारखाने हैं। इस क्षेत्र के अन्य कारखाने बम्बई शहर से तीस मील के भीतर-भीतर वर्तमान हैं। यहां पर समुद्रीय जल हौज़ों में भर कर सूर्य के ताप से सुखाया जाता है। जब उस जल में से चूने के सल्फेट और कार्बोनेट नामक लवणों का अवक्षेपन हो चुकता है तो शेष नमकीन जल को कढ़ाइयों में भर कर उसमें से नमक निकाला जाता है। कच्छ की खाड़ी में खरगोदा उड्डू और कुदा नामक स्थानों पर भी नमक के कारखाने हैं। यहां की भूमि में से खारी जल १८ से ३० फुट तक नीचे कुएँ खोदकर निकाला जाता है।

मद्रास प्रान्त के समुद्र के तूतीकोरन इत्यादि स्थानों पर नमक तैयार किया जाता है। यहां के कुल नमक की खपत प्रायः इसी प्रान्त में तथा इसके पास की रियासतों में हो जाती है। इस नमक में से लगभग १५,००० टन प्रति वर्ष लङ्का देश को भी भेजा जाता है।

ब्रह्म देश के समुद्र तट पर भी कई नमक के कारखाने हैं परन्तु उनके नमक से उस देश की एक चौथाई ही आवश्यकता पूर्ण होती है।

(२) झीलों तथा खारी कुओं से नमक राजपूताने में ही अधिक बनाया जाता है। साम्भर, डिंडवाना, लोनकरनसर नामक खारी झीलें इस प्रान्त में अति प्रसिद्ध हैं। खारी कुओं से नमक राजपूताना तथा भारत के उत्तरी प्रान्तों में बहुत बनाया जाता है। इस प्रकार नमक बनाने का केन्द्र राजपूताने के पचभद्रा नामक स्थान में है। राजपूताने की खारी भूमि तथा झीलों के नमक की उत्पत्ति के विषय में भूगर्भवेत्ताओं का विचार है कि अरब सागर की ओर से जो हवायें ग्रीष्म ऋतु में राजपूताने भर में चलती रहती हैं उनके साथ कच्छ की खाड़ी से नमक के छोटे-छोटे कण चले आते हैं। राजपूताना तक पहुँचते-पहुँचते इन हवाओं की चाल कम हो जाती है जिसके कारण ये नमक के कणों को आगे नहीं ले जा सकतीं और वे कण इस प्रान्त की मरुभूमि में गिर जाते हैं। इन्हीं असंख्य कणों के मिश्रण से यहां की भूमि खारी हो गई है। वर्षा ऋतु में इस नमक का अधिकांश भाग जल में घुलकर साम्भर जैसी झीलों में एकत्रित हो जाता है। यही कारण है कि यद्यपि साम्भर झील छोटी सी ही है परन्तु वर्षा ऋतु में इसका जल ९० वर्ग मील के क्षेत्रफल में फैल जाता है। साम्भर झील के तले की मिट्टी में कम से कम १२ फुट तक ५-२१ प्रतिशत के हिसाब से नमक का अंश है। इस झील के नमक का परिमाण लगभग ५ करोड़ टन कूता जाता है।

(३) पंजाब के साल्टरेंज नामक पहाड़ में, सीमा प्रान्त के कोहाट ज़िले में तथा मण्डी राज्य में नमक पत्थरों में मिलता है। साल्टरेंज में खेउड़ा, वारछा, कालाबाग़ इत्यादि अनेक स्थानों पर नमक निकाला जाता है।

साल्टरेंज भूगर्भ शास्त्र के अध्ययन के लिये एक अति उत्तम स्थान है, कारण कि भारतीय भौगर्भिक इतिहास के प्रथम कल्प के आरम्भकाल से तृतीय कल्प के अन्त समय तक की सब शिलाएँ यहाँ पर मिलती हैं। नमक यहां पर हरसोठ और साल्ट-मार्ल (Salt-marl) नामक एक विशेष लाल मटियाले पत्थर के साथ अन्य शिलाओं के नीचे पाया जाता है। नमक की आयु के विषय में भूगर्भवेत्ताओं के भिन्न-भिन्न मत हैं। कोहाट और मण्डी का नमक तृतीय कल्प का माना जाता है। खेउड़ा इत्यादि स्थानों का नमक प्रथम कल्प का माना जाता था। क्योंकि प्रथम कल्प की शिलाओं के नीचे पाया जाता है। परन्तु

अब यह नमक भी तृतीय कल्प का माना जाता है। भारत में जहां पर पत्थरों में नमक मिलता है वे स्थान किसी समय में समुद्र के नीचे थे और यह नमक उस समुद्र के जल के सूख जाने से बना है।

भारत में नमक की सबसे बड़ी खान पंजाब में झेलम जिले के खेउड़ा नामक स्थान में है। "मेओ साल्ट माइन्स" के नाम से यह खान गवर्नमेन्ट के उत्तरीय भारत के नमक के महकमे के निरीक्षण में है। खेउड़ा की यह खान वास्तव में देखने योग्य है। पहाड़ के अन्दर से यहां पर "लाहोरी" या "सेंधा नमक निकाला जाता है। इस स्थान पर नमक की मुख्य दो बड़ी तहें ५५० फुट मोटी हैं जिनमें पांच बहुत ही स्वच्छ नमक की छोटी-छोटी तहें हैं। इन पांच तहों की मोटाई २७५ फीट होती है। ये तहें कितनी दूर तक लम्बाई में चली गई हैं। इसका पता नहीं हैं खेउड़ा की खान में जिन स्थानों से नमक निकल आता है उन स्थानों की छत को गिरने से रोकने के लिये पहले ही मोटे खम्भे नमक के छोड़ दिये जाते हैं। ये स्थान देखने में हाल के समान होते हैं। कुछ ऐसे ही स्थान जहां से नमक निकाला जा चुका है, २०० फीट ऊँचे तथा ७०० फीट लम्बे हैं। इन अंधेरे स्थानों में जब दर्शकों को दिखाने के लिये आतिशबाज़ी का प्रकाश किया जाता है तो उन बड़े-बड़े हाल की छतों और दीवारों से चमकते हुए स्वच्छ नमक के क्रिस्टल किसी राजा महाराजा के शीश महलों का स्मरण दिलाते हैं। इस नमक की खान में नमक के अतिरिक्त हरसोठ भी निकाली जाती है जो भारत के सीमेन्ट के कारखानों को भेजी जाती है। साल्टरेंज में नमक का परिमाण अपरिमित माना जाता है।

भारत में नमक की उपज—सन् १९३३ ई० में यहां पर नमक की उत्पत्ति का व्यौरा इस प्रकार था:—

स्थान	परिमाण	मूल्य
(१) बम्बई और सिन्ध प्रांत	४१५५३८ टन	२१८१७५२ रुपये
मद्रास प्रान्त	४६०५१० ,,	२८६३९११ ,,
ब्रह्म देश	३५७८९ ,,	४८१६२१ ,,
(२) राजपूताना तथा उत्तरीय भारत (सेंधा नमक को छोड़ कर)	२६२२१९ ,,	२४८१८११ ,,
ग्वालियर राज्य	३५ ,,	१७६८ ,,
(३) साल्टरेंज	१४५६४७ ,,	११९४२०१ ,,
कोहाट	२०५७७ ,,	६५११६ ,,
मण्डी राज्य	३६४० ,,	१०४५९० ,,
कुल उपज	१४,०४,२५५ टन	६३,२४,७७० रुपये

साल्टरेंज में इतने नमक का जमाव तथा समुद्र तट पर इतने कारखाने होते हुए भी भारत में विदेशों से काफी परिमाण में नमक आता है। सन् १९३३ ई० में भारत में क़रीब ६ लाख टन नमक, ७० लाख रुपयों से अधिक मूल्य का, विदेशों से आया था जिनमें इङ्गलैंड, जर्मनी, स्पेन, मिश्र देश, इटैलियन पूर्वीय अफरीका तथा अदन उल्लेखनीय हैं।

(७) गंधक के तेज़ाब के लिये खनिजें

गधक का तेज़ाब मिट्टी के तेल को स्वच्छ करने, रंग बनाने तथा रंग उड़ाने के पदार्थ तय्यार करने, कलई करने और लोहे फौलाद को साफ़ करने में प्रयोग होता है। युद्धकाल में यह तेज़ाब बारूद इत्यादि बनाने के लिये भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य कामों में यह तेज़ाब प्रयोग होता है। कई रसायनज्ञों की राय है कि किसी देश की सभ्यता का अनुमान उस देश में तेज़ाब की खपत के आंकड़ों से किया जा सकता है। गंधक का तेज़ाब बनाने के लिये मुख्य खनिज या तो गंधक होना चाहिये अथवा किसी धातु का सल्फ़ाइड (धातु और गंधक का सम्मेलन)।

गंधक—यह खनिज प्राय: ज्वालामुखी पहाड़ में से अथवा गरम पानी के झरनों से निकलकर पृथ्वीतल की शिलाओं की तहों में या उनके ऊपर एकत्रित हुआ करती है। गंधक के गर्म या ठण्डे जल के सोतों में हाइड्रोजन सल्फ़ाइड नामक गैस होती है। यह गैस गंधक और हाइड्रोजन का एक प्रकार का रासायनिक सम्मेलन है। ऐसे सोतों के मुंह पर गंधक के जमाव कई स्थानों पर मिलते हैं। यहां पर वायु की आक्सीजन नामक गैस की क्रिया से हाइड्रोजन सल्फ़ाइड में से गंधक पृथक कर दिया जाता है। भारतवर्ष में गंधक का उत्तम जमाव विलूचिस्तान के सुल्तान नामक पहाड़ पर तथा वहां के क़लात राज्य के कच्छी ज़िले में है। क़लात का गंधक है तो अच्छा परन्तु वहां पर केवल १०००० टन गंधक का अनुमान किया गया है जिससे भारत की कदाचित एक वर्ष की मांग भी पूर्ण नहीं हो सकती।

बंगाल की खाड़ी के 'बेरिन' नामक द्वीप में, सिन्धु प्रान्त और काश्मीर राज्य में तथा पंजाब के डेरा इस्माइलखां ज़िले में भी थोड़ा सा गंधक पाया जाता है। १६३३ ई० में भारत में विदेशों से २०२१२ टन गंधक मंगाया गया था। इस गंधक का अधिक भाग इटली देश से आया था। संसार में संयुक्तराज्य अमरीका, इटली और जापान ही गंधक के लिये प्रसिद्ध देश हैं। गंधक से तेज़ाब बनाने के लिये गंधक खनिज सल्फ़ाइड से अधिक उपयोगी होती है क्योंकि एक टन गन्धक से ४ टन से अधिक तेज़ाब बनता है और इस के जलाने पर कुछ भी पदार्थ शेष नहीं रह जाता।

रुपा-माखी (Iron Pyrite)—उपरोक्त गन्धक के वृत्तान्त से विदित है कि भारत में गन्धक अधिक नहीं मिलता। इस कारण इस देश को गन्धक का तेज़ाब बनाने के लिये धातुओं के सल्फ़ाइड पर निर्भर रहना पड़ेगा। धातुओं के सल्फ़ाइड ब्रह्मदेश की बाडविन की खानों तथा भारत के अन्य प्रान्तों में भी मिलते हैं परन्तु इसके लिये सब से सस्ता सल्फ़ाइड लोहे का होता है। लोहे के तीन प्रकार के सल्फ़ाइड होते हैं परन्तु इन में रुपामाखी (Pyrite) ही अधिक मिलती है। रुपा-माखी लोहे और गन्धक का सम्मेलन है। यह खनिज पीतल के समान पीले रंग की होती है। परन्तु इसका बुरादा काले रंग का होता है। साधारणत: एक टन रुपा-माखी से केवल २ टन के लगभग गन्धक का तेज़ाब प्राप्त होता है। इस कारण यद्यपि तेज़ाब बनाने के लिये गन्धक से यह खनिज अच्छी नहीं है परन्तु यह उस से कहीं अधिक सस्ती है और इस को जलाने पर लोहे की खनिज शेष रह जाती है जिससे लोह धातु निकाली जा सकती है।

भारतवर्ष में रुपा-माखी के क्रिस्टल अनेक स्थानों में मिलते हैं। भारत की कई खानों के कोयले में रुपामाखी के क्रिस्टल मिलते हैं। आसाम प्रान्त के मक्रूम ज़िले में, पंजाब के मियांवाली ज़िले में तथा अजमेर में खडवा, खेतड़ी, सिन्घाना इत्यादि स्थानों में रुपामाखी, मिट्टी की जलज शेल या स्लेट नामक शिलाओं में, बहुत मिलती है। बिहार उड़ीसा की दालभूमि रियासत में तथा हैदराबाद राज्य के गुलबर्गा नामक स्थान के पास यह खनिज परिवर्तित सेलखरी या चूनेदार पत्थरों में मिलती है। पटियाला राज्य में जो रवादार चूने के पत्थर में रुपामाखी मिलती है उस में बहुत थोड़ा सा सोना भी बताया जाता है। सन् १९३० ई० में पटियाला राज्य में क़रीब २३ टन रुपामाखी निकाली गई। अन्य धातुओं की खनिज के साथ भी रुपामाखी कई स्थानों पर धारियों में मिलती है।

पंजाब और राजपूताने की रुपामाखी-दार मिट्टी की शिलाओं से अब तक फिटकिरी (Alum) बनाई जाती थी। ऐसी शिला से गर्मी तथा जल द्वारा रुपामाखी के कारण लोहे का सल्फेट और कुछ गंधक का तेज़ाब स्वयं बन जाता है। गन्धक का तेज़ाब मिट्टी के एल्यूमीनम के अंश से सम्मिलित होकर एल्यूनम सल्फेट बनाता है। लकड़ी की राख द्वारा इसमें पोटेशियम का लवण मिलाकर पोटाश-फिटकिरी तथा साधारण नमक मिलाकर सोड़ा-फिटकिरी बन सकती है। रुपामाखी-दार मिट्टी को स्वाभाविक रूप से स्वयं परिवर्तित होने में अधिक समय लगता है इस कारण इस मिट्टी को जलाने के बाद जल द्वारा एल्यूमीनम सल्फेट पृथक कर लिया जाता है। इसमें पोटेशियम या सोडियम के लवण मिलाकर और जल को सुखाकर फिटकिरी शीघ्र तय्यार हो जाती है। आजकल विदेशी फिटकिरी देशी से अधिक सस्ती मिलजाने के कारण फिटकिरी बनाने का यह व्यवसाय छोड़ दिया गया है।

भारत में गंधक के तेज़ाब के कारखाने—इस समय भारतवर्ष में लगभग ३० हज़ार टन गंधक के तेज़ाब की प्रतिवर्ष आवश्यकता पड़ती है। इसको पूर्ण करने के लिये बंगाल बिहार, बम्बई, मद्रास, पंजाब, यू० पी० और ब्रह्मा में लगभग २० कारखाने हैं परन्तु मुख्य बड़े बड़े कारखाने कलकत्ता तथा बिहार के कोयले के क्षेत्रों में ही वर्त्तमान हैं। सन् १९३३ ई० में भारतीय कारखानों से २९४२८ टन तेज़ाब बनाया गया। उस वर्ष केवल २३२ टन तेज़ाब विदेशों से मँगाया गया था।

(८) खाद के लिये उपयोगी खनिजें।

कृषि के लिये उचित खाद अति आवश्यक है। पुरानी लकीर पर चलने वाले हमारे कृषकगण केवल वही गोबर की खाद अब भी सब स्थानों पर डाल रहे हैं। सब प्रकार की भूमि के लिये और सब पौंदों के लिये एक ही प्रकार की खाद कदापि उपयोगी नहीं हो सकती। यही कारण है कि भारत की भूमि की पैदावार दिन प्रतिदिन घटती जाती है जब कि विदेशों में आजकल भूमि की उत्पादन शक्ति पहले से पंचगुनी करदी गई है।

खाद के लिये अनेक कृत्रिम पदार्थ प्रयोग में आते हैं परन्तु यहां पर केवल प्राकृतिक खनिजों का ही उल्लेख किया जायगा। खाद के लिये उपयोगी खनिज मुख्यतः वे होती हैं जिनमें नाइट्रोजन अथवा फास्फोरस होता है। किसी किसी भूमि के लिये पोटेशियम अथवा चूने की खनिज भी उपयोगी पाई गई हैं।

(१) नाइट्रोजन दार मुख्य खनिज 'शोरा' है। भारतीय शोरा (Saltpetre)

पोटेशियम, नाइट्रोजन और आक्सीजन का सम्मेलन है। गोबर इसी श्रेणी की खाद होती है। कुछ पौदे अपनी खुराक के लिये आवश्यक नाइट्रोजन गैस स्वयं वायु मण्डल में से खींच लेते हैं। ऐसे पौदों के द्वारा भूमि में काफी नाइट्रोजन पहुँच जाता है और उसकी सहायता से अन्य पौदे (जो स्वयं यह पदार्थ वायु से नहीं लेते परन्तु पृथ्वी में से लेते हैं) भी सरलता से उग सकते हैं। यदि किसी स्थान पर प्रथम श्रेणी के पौदों का बाहुल्य न हो तो वहां की भूमि में नाइट्रोजन का अंश कम हो जाता है और उस स्थान पर अन्य पौदे भी अच्छी तरह नहीं उगते। ऐसी भूमि में नाइट्रोजनदार खाद डालना अति आवश्यक हो जाता है।

शोरा भारतवर्ष में पंजाब, विहार और संयुक्त प्रान्त के गांवों के पुराने घरों की मिट्टी में अधिक मिलता है। शोरे की उत्पत्ति के विषय में भूगर्भवेत्ताओं का विचार है कि उपरोक्त प्रान्तों में मनुष्य गणना अधिक है और इन प्रान्तों के प्रायः कृषि प्रधान होने के कारण यहां पर गाय बैलों का भी बाहुल्य है, इस प्रकार इन सब जीवों के मल मूत्र से काफ़ी नाइट्रोजन का अंश मिट्टी में मिलता रहता है। इन प्रान्तों में लोग लकड़ी का ईंधन ही अधिक प्रयोग करते हैं जिसकी राख में पोटाश अधिक होता है। यहां की जलवायु अनुकूल होने के कारण इन दोनों पदार्थों के मिश्रिण से, एक विशेष प्रकार के बेक्टेरिया (Bacteria) द्वारा, पोटेशियम नाइट्रेट बन जाता है। वर्षा ऋतु में अधो-भौमिक जल में यह लवण घुल कर मिट्टी में मिल जाता है और खुश्की के समय यह जल जब पृथ्वीतल पर नीचे से धीरे धीरे चू कर आने पर सूख जाता है तो इस लवण की एक पतली झल्ली सी मिट्टी के ऊपर एकत्रित हो जाती है। इस प्रकार की शोरादार पुरानी मिट्टी को 'लोनी' मिट्टी कहते हैं। इस मिट्टी को खुरच कर जल द्वारा उस में से शोरा निकाला जाता है। शोरा के अतिरिक्त नमक इत्यादि और भी लवण इस मिट्टी में मिले हुए होते हैं।

खाद के अतिरिक्त शोरा बारूद बनाने के भी काम में आता है। भारत में चाय के बाग़ों में शोरा के खाद का प्रयोग किया जा चुका है और इससे चाय की उपज में उन्नति होती देखी गई है। खाद के लिये थोड़ा सा शोरा बचा कर शेष भारतीय शोरा विदेशों को भेज दिया जाता है। बम्बई कलकत्ता तथा कराची शोरा को बाहर भेजने के मुख्य बन्दरगाह हैं। सन् १९३३ ई० के यहां से क़रीब १८९५६७ टन शोरा, १५५७९१६) रु० का, बाहर भेजा गया था।

(२) पोटेशियम की खनिजें भी खाद के लिये उपयोगी मानी जाती हैं। लकड़ी की राख में भी यही पदार्थ होता है। पर्वतों के ऊपर खेतों में प्रायः लकड़ी जला कर ही राख से खाद का काम ले लिया जाता है। पोटेशियम के अनेक लवण पंजाब साल्टरेंज के नमक के साथ पाये जाते हैं। इनमें से मुख्य लवण पोटेशियम क्लोराइड और इसके साथ पोटेशियम और मेग्नेशियम के सल्फेट हैं। इन लवणों में से मेग्नेशियम का अंश सरलता से रासायनिक क्रियाओं द्वारा पृथक किया जा सकता है। पोटेशियमदार दूसरी खनिज पोटाश फेलस्पार (Microcline felspar) है। यह खनिज एक साधारण खनिज है, इसी के परिवर्तन से चीनी मिट्टी बनती है। यह फेल्सपार हज़ारीबाग, नेलोर, किशनगढ़ तथा अजमेर इत्यादि स्थानों की अबरकदार पेग्मेटाइट नामक पत्थर की धारियों में बहुत अधिक मिलता है। फेलस्पार खनिज बड़ी कड़ी और पिण्डाकार होती है। खाद के लिये इसमें से

पोटेशियम के अंश को निकाल कर उसे पानी में घुल जाने वाले सम्मेलन का रूप देना पड़ेगा। ऐसा करने के लिये फेलस्पार को चूना और अन्य पदार्थों के साथ जलाने से शीघ्र खाद तैयार हो सकता है परन्तु इस क्रिया में व्यय अधिक करना पड़ेगा।

(३) हरसोठ नामक चूने का सल्फेट भी थोड़े परिमाण में भूमि में डालने पर उपयोगी खाद प्रमाणित हुआ है। यह खनिज पंजाब के साल्टरेंज में नमक के हर स्थान पर मिलता है। इसके अतिरिक्त बिलूचिस्तान, सिन्ध, कच्छ तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में तृतीय कल्प की जलज शिलाओं में (अधिकतः मिट्टी की शेल नामक शिला में) हरसोठ बहुत मिलती है। बीकानेर और जोधपुर राज्यों में जमसर और नागौड़ इत्यादि स्थानों के पास हरसोठ काफी मिलती है। संयुक्तप्रान्त के देहरादून, नैनीताल, हमीरपुर और झांसी ज़िलों में भी अनेक स्थानों पर मिट्टी में हरसोठ मिलती है।

(४) फास्फोरसदार खाद अनाज के दानों या फलों की बाढ़ के लिये अति आवश्यक हैं। हड्डी के बुरादे का खाद फास्फोरस के कारण ही उपयोगी माना जाता है। फास्फोरसदार मुख्य खनिज एपेटाइट (Apatite) है। एपेटाइट में चूने के फास्फेट का अंश अधिक होता है। इस खनिज की स्वच्छ और सुन्दर रंग की किस्में रत्न मानी जाती हैं।

वैसे तो एपेटाइट के फास्फोरस का अंश जल में घुलने वाला नहीं होता परन्तु इस खनिज पर गंधक के तेज़ाब का प्रयोग करने से इसका फास्फोरस अन्य घुलने वाले पदार्थों में परिवर्तित होकर निकाला जा सकता है। एपेटाइट इत्यादि फास्फोरसदार खाद भारत के मुख्य अनाज गेहूँ की खेती में बड़े उपयोगी होते हैं।

बिहार-उड़ीसा के हज़ारीबाग़ तथा मद्रास के नेलोर ज़िले की अबरकदार पेग्मेटाइट की धारियों में एपेटाइट के क्रिस्टल बहुत मिलते हैं। अबरक निकाल कर जो पत्थर अबरक की खान के बाहर फेंक दिये जाते हैं उनमें से काफी परिमाण में इस खनिज के टुकड़े चुने जा सकते हैं। एपेटाइट खनिज का सब से बड़ा जमाव बिहार के सिंघभूमि ज़िले में स्वर्ण-रेखा नदी के किनारे पथरगढ़ा नामक गांव के पास मिलता है। यहां की मुख्य खनिज एपे-टाइट और चुम्बक खनिज के मिश्रण से बना हुआ पत्थर है जिसके अनियमित पिण्ड स्थानीय परिवर्तित शिलाओं में १२ मील तक मिलते हैं। इस जमाव में लगभग २५०,००० टन चूने के फास्फेट का अनुमान लगाया जाता है। इस स्थान के पास ही एक और दूसरा इसी आकार का जमाव है।

मद्रास के त्रिचनापली ज़िले के चूने के पत्थर के अन्दर फास्फेट के पिंडीकरण टुकड़े मिलते हैं जिनमें ५६ से ५६ प्रतिशत तक चूने का फास्फेट और १६ प्रतिशत चूने का कार्बो-नेट होता है। यह अनुमान किया जाता है कि यहां के चूने के पत्थर की तह में २०० फीट की गहराई तक लगभग ८० लाख टन फास्फेट के टुकड़े मिलेंगे। यहां से सन् १९३३ में ३७ टन खनिज करीब ३७२) रु० के मूल्य की निकाली गई थी।

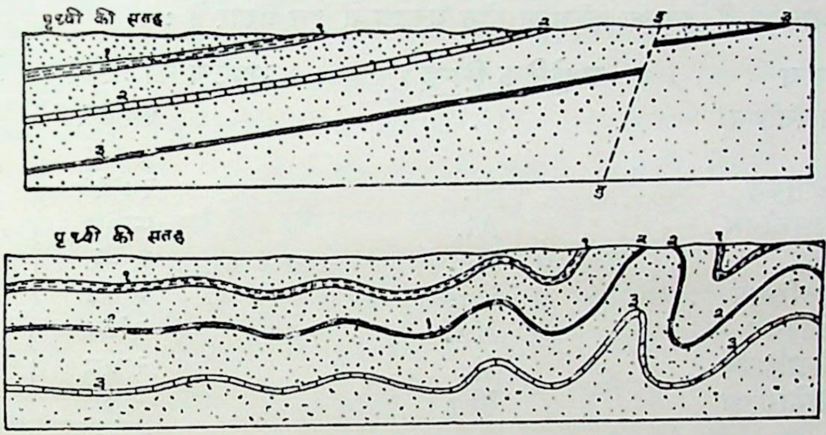
इसी प्रान्त के विज़गापट्टम ज़िले की परिवर्तित शिलाओं में भी एपेटाइट एक मुख्य अवयव है। राजपूताना की डूंगरपुर रियासत में 'शिस्ट' नामक परिवर्तत शिला में थोड़ी सी एपेटाइट मिलने का पता चला है।

पंजाब के झेलम ज़िले में तथा यू० पी० में मसूरी के पास मिट्टी की 'शेल, नामक जलज शिला की तह में चूने के फास्फेट के पिंडीकरण टुकड़े मिले हैं।

परिशिष्ट १

भूपटल की मुख्य खनिजें

जिस पृथ्वी पर मनुष्य जाति ने जन्म लिया, जिस भूमि ने उसके पालन पोषण के लिये सामग्री दी तथा जिस भूतल पर परमात्मा की अनेक लीलाएँ हो रही हैं, उसके बारे में जानने की इच्छा प्रत्येक मनुष्य को होना स्वाभाविक है। पृथ्वी की उत्पत्ति, उसकी आयु और आदिम काल से उसका इतिहास जानने से पहले यह आवश्यक है कि हमको यह मालूम हो जाय कि यह किन किन पदार्थों से बनी हुई है। सच बात तो यह है कि



पृथ्वी की सतह पर नीचे की शिलाएँ।

जिस ग्लोब (Globe) पर हम रहते हैं उसके थोड़े ही भाग से हम परिचित हैं। पृथ्वी का केन्द्र हमसे ४००० मील नीचे पाताल में है और हमारी गहरी से गहरी खानें तथा बोरिङ्ग (Boring) दो मील से अधिक गहराई तक भी नहीं पहुँची है। परन्तु फिर भी पृथ्वी की ऊपरी तहों के टेढ़ी मेढ़ी और झुकी हुई हो जाने के कारण अथवा उनके प्रस्तर-भ्रंश हो जाने से जो पत्थर प्रायः कई मील नीचे हैं वे भी कहीं कहीं पृथ्वी की सतह पर दिखाई पड़ जाते हैं। इस से हमको पृथ्वी के लगभग दस-पन्द्रह मील मोटे ऊपरी ठोस भाग का ज्ञान कुछ न कुछ अवश्य है। पृथ्वी के मुख्यतः इसी भाग को भूपटल (Earth's Crust) कहते हैं।

इस भूपटल का ९३ प्रतिशत भाग ठोस तथा ७ प्रतिशत भाग जल का है। महाद्वीपों के भौगर्भिक सर्वे से पता चलता है कि ठोस भूपटल में ६५ प्रतिशत भाग आग्नेय शिलाओं (Igneous Rocks—जिनकी उत्पत्ति पिघले हुए पिण्ड से हुई है) और ५ प्रतिशत जलज शिलाओं (Sedimentary Rocks—जिनकी उत्पत्ति जल में कणों के एकत्रित होने से हुई है) का है। जलज शिलाओं में ४ प्रतिशत मिट्टी-दार पत्थर

(Shales), ०·७५ प्रतिशत बालू-दार पत्थर (Sandstone) और ०·२५ प्रतिशत चूने-दार पत्थर (Limestone) मिलते हैं। इसी प्रकार आग्नेय शिलाओं में भी भिन्न भिन्न प्रकार के पत्थरों का अंश मालूम कर लिया गया है।

रासायनिक अनुसन्धानों से पता चला है कि भूपटल के सब पदार्थों में करीब ९० मूलतत्वों (elements) के अतिरिक्त कोई मूलतत्व नहीं है और प्रत्येक पदार्थ जो हम को दिखाई देता है इन्हीं मूलतत्वों में से या तो कोई मूलतत्व होता है या कई मूलतत्वों के समिश्रण अथवा उनके संयोग से बना हुआ सम्मेलन होता है।

भूपटल के हज़ारों पत्थरों के रासायनिक विश्लेषणों (analyses) के बाद यह प्रमाणित हुआ है कि उपरोक्त ९० मूलतत्वों में केवल २१ मूलतत्व ही ऐसे हैं जिनका अथवा जिनके सम्मेलनों (Compounds) का भूपटल में बाहुल्य है। शेष कोई भी मूलतत्व भूपटल का दस-लाखवाँ हिस्सा भी नहीं बनाता। इन २१ तत्वों में भी प्रधान मूलतत्व आठ ही हैं जिन का परिमाण ठोस भूपटल में इस प्रकार है :—

मूलतत्व	साङ्केतिक चिन्ह	भूपटल का प्रतिशत अंश	
(१) आक्सीजन	O.	४६·४६	७४·०७ (१, २)
(२) सिलीकन	Si.	२७·६१	
(३) एल्यूमीनम	Al.	८·०७	२४·१७ (३–८)
(४) लोहा	Fe.	५·०६	
(५) कैलशियम	Ca.	३·६४	
(६) सोडियम	Na.	२·७५	
(७) पोटाशियम	K.	२·५८	
(८) मेग्नेशियम	Mg.	२·०७	
		९८·२४	

इस से विदित होता है कि भूपटल का क़रीब तीन चौथाई भाग केवल आक्सीजन और सिलीकन (अर्थात् बालू के अवयवों) का बना हुआ है और एक चौथाई से कुछ कम अन्य छः मूलतत्वों से। लोहे और एल्यूमीनम के अतिरिक्त अन्य उपयोगी धातुएँ— सोना, चाँदी, ताँबा सीसा और राङ्गा बहुत ही कम मिलती हैं।

भूपटल के तत्वों में सोना, कार्बन और गन्धक तो भूमि में तत्व के रूप में भी मिलते हैं, परन्तु अन्य मूलतत्व एक दूसरे के साथ रासायनिक सम्मेलनों के रुप में ही अधिकतः पाये जाते हैं। इन सम्मेलनों को खनिज (mineral) कहते हैं। एक या एक से अधिक मूलतत्वों से स्वयं बने हुए पदार्थ ही खनिज होते हैं और यद्यपि किसी खनिज के भिन्न भिन्न नमूनों के रासायनिक सङ्गठन में कुछ अन्तर हो सकता है परन्तु उसका रासायनिक सङ्गठन प्रायः एक विशेष रासायनिक संकेत (Chemical formula) से बताया जा सकता है। उदाहरणतः स्फटिक (Quartz) एक साधारण खनिज है। नदियों के बालू में इसी का बाहुल्य होता है। रासायनिक विश्लेषण से मालूम हुआ है कि यह केवल दो मूलतत्वों सलीकन और आक्सीजन) के सम्मेलन से बनी है जिसमें १४ भाग सिलीकन के साथ १६सिभाग आक्षीजन होता है। इस से इस खनिज का रासायनिक संकेत $Si\,O_2$ लिखा

जाता है जिस का अभिप्राय यह है कि स्फटिक के निर्माण में एक अणु सिलीकन का (जिसका वज़न हाइड्रोजन से २८ गुना है) और दो अणु आक्सीजन (प्रत्येक अणु हाईड्रोजन से १६ गुणा भारी है) के हैं। इस प्रकार इस संकेत से खनिज के तत्वों और उनके परिमाणों का पता शीघ्र ही लग जाता है। रासायनिक विश्लेषण के अतिरिक्त भिन्न भिन्न खनिजों को पहिचानने के लिये उनके निम्नलिखित गुणों से बड़ी सहायता मिलती है—

(१) **क्रिस्टल** (Crystals) प्रायः सब खनिजें रवादार (Crystalline)—होती हैं अर्थात् उनके अणुओं की विशेष अन्तिरिक रचना होती है जिसके कारण कभी कभी वे खनिजें विशेष आकार के क्रिस्टल के रूप में मिलती हैं। क्रिस्टल की सीमा समतल फलों (Plane faces) से निर्मित होती है और प्रत्येक खनिज के क्रिस्टल किसी न किसी रूप से दूसरी खनिज के क्रिस्टल से भिन्न होते हैं। कुछ खनिजें रवाहीन (amorphous) भी होती हैं जिन में अणुओं की कोई रचना नहीं होती। इन खनिजों के क्रिस्टल नहीं बनते।

(२) **तड़क** (Cleavage)—अधिकांश खनिजों में विशेष विशेष दिशाओं में टूटने की रुचि होती है। उन दिशाओं में टूटने पर खनिज की चिकनी तल बनी रहती है। उदाहरणतः नमक की तड़क तीन दिशाओं में होती है जो परस्पर समकोण पर झुकी रहती हैं और जिनमें से प्रत्येक दिशा एक घनमूलीय (Cubic) क्रिस्टल के फल (Face) के समानान्तर होती है। इस प्रकार की तड़क के कारण नमक के क्रिस्टल घनमूलीय आकार के ही टुकड़ों में टूटते हैं। इसी तरह अबरक में एक दिशा में बहुत अच्छी तड़क होती है जिस के कारण अबरक के बहुत पतले परत प्राप्त हो सकते हैं।

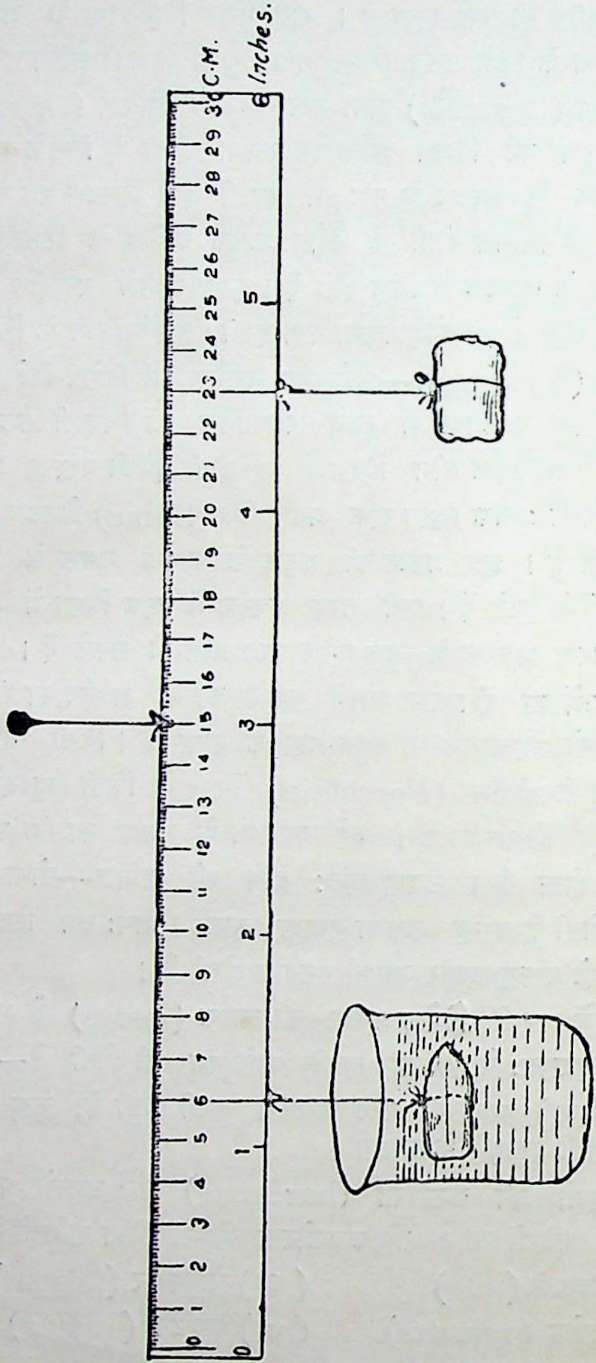
(३) **खनिजों का रंग** तथा उनके बुरादे का या लकीर का रंग (Colour of Streak) भी उनको पहिचानने में बहुत सहायक होता है। किसी खनिज के बुरादे का रंग उस खनिज को पोरसीलेन (Porcelain) मिट्टी के किसी खुरदरे टुकड़े पर रगड़ने से सरलता से मालूम हो सकता है। कई खनिजों के बुरादे का रंग उनके साधारण रंग से बिल्कुल भिन्न होता है। उदाहरणतः तांबे की खनिज—सोनामाखी (Copper pyrite) पीली होती है परन्तु उसका बुरादा काला। प्रायः सब सिलकन-वाली खनिजें यद्यपि रंगदार भी हो परन्तु लकीर उनकी रंगहीन होती है।

(४) खनिजें अपनी विशेष प्रकार की चमक (lustre) से भी पहिचानी जाती हैं। कई खनिज (मुख्यतः वे जिनकी लकीर काले रंग की होती है—लोहे, तांबे, सीसा की गंधक-दार खनिजें) धातु की तरह चमकने वाली होती हैं, कुछ टूटे कांच के समान और कुछ हीरा, मोती इत्यादि के समान।

(४) **खनिजों की कठोरता** (hardness) भी उनको पहिचानने में बहुत सहायक होती है। खनिजों की आपेक्षिक कठोरता निम्नलिखित खनिजों से देखी जाती है:—

(१) सेलखरी (talc)	(६) फेलस्पार (felspar)
(२) हरसोठ (gypsum)	(७) स्फटिक (quartz)
(३) केल्साइट (Calcite)	(८) पुखराज (topaz)
(४) फ्लोराइट (fluorite)	(९) कुरंद (Corundum)
(५) एपेटाइट (apatite)	(१०) हीरा (diamond)

उपरोक्त सूची में प्रत्येक खनिज अपने से कम नम्बर वाली खनिज पर खुरचने का चिन्ह कर देगी परन्तु अपने से अधिक नम्बर की खनिजों से वह स्वयं खुरच जायेगी। इन



खनिजों के अतिरिक्त, किसी खनिज की कठोरता मालूम करने के लिये निम्नलिखित वस्तुओं का उपयोग सरलता से किया जा सकता है :—

नाखून की कठोरता २ से कुछ अधिक है क्योंकि यह हरसोठ को खुरच सकता है, केल्साइट को नहीं। पैसे की कठोरता ३ से कुछ ही अधिक है और वह केल्साइट को खुरच सकता है। अच्छे चाक़ू की कठोरता ५ से कुछ अधिक है और कांच के टुकड़े की कठोरता ५½ है और ये दोनों एपेटाइट को खुरच सकते हैं परन्तु फेलस्पार को नहीं सिलीकन-दार खनिजें प्रायः बहुत कठोर हुआ करती हैं।

(२) **खनिजों के आपेक्षिक घनत्व** (Specific Gravity) से भी वे पहिचानी जाती हैं। अधिकतः खनिजों का आपेक्षिक घनत्व २·० से ४·० तक होता है। कुछ खनिज इस से थोड़ी हल्की और कुछ बहुत अधिक भारी होती हैं। असंस्कृत धातुएँ (Metallic ores) भारी होती हैं और सोने का आपेक्षिक घनत्व तो १९·० तक होता है। आपेक्षिक घनत्व निकालने के अनेक तरीक़े हैं परन्तु सब से सरल तरीक़ा 'वाकर' के बेलेन्स के आधार पर एक 'फुट-स्केल' से निकाल लेने का है यद्यपि इस से केवल प्रथम दशमलव तक ही ठीक उत्तर आवेगा।

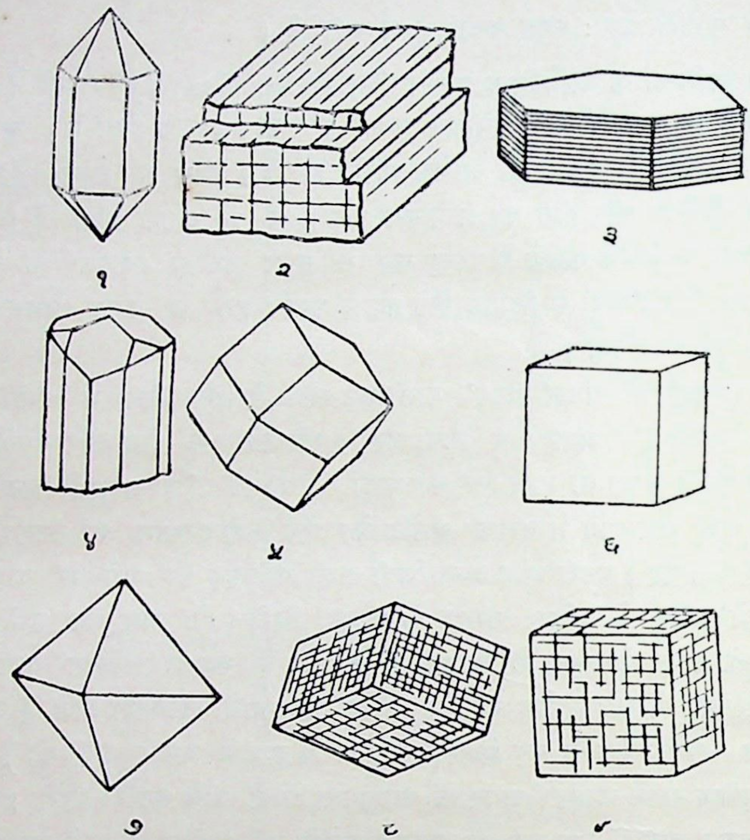
एक अच्छी सी 'मिलीमीटर' वाली फुट-स्केल के ठीक बीच में एक छोटा सा सूराख़ करके उस में एक धागा बांध लिया जाय। यदि स्केल के दोनों सिरे उसको लटकाने पर क्षितिज रेखा में न हो तो भारी सिरे को थोड़ा रेती से रेत दें या चाक़ू से काट दें। धागे से बांई ओर एक और धागे में बांधकर खनजि को एक विशेष स्थान पर लटका दें। और हर समय वह वहीं रहे। दूसरी ओर अन्य किसी पत्थर के टुकड़े को धागे में बांधकर इधर उधर खसकावें ताकि स्केल फिर तराज़ू के समान क्षितिज हो जाय, तब उस पत्थर के टुकड़े की दूरी, स्केल के केन्द्र से, कितने मिलीमीटर है यह देख लिया जाय। इस के पश्चात् एक गिलास में स्वच्छ जल भर कर खनिज को उसमें लटकाया जावे (उससे वायु के बुदबुदे न चिपके रहें और वह गिलास के बीच में जल के अन्दर डूबी रहे) इस बार स्केल को क्षितिज रखने के लिये पत्थर के टुकड़े को थोड़ा पीछे हटाना पड़ेगा। कारण कि खनिज का वज़न जल में कुछ कम हो जाता है क्योंकि यह खनिज के दोनों वज़नों में और स्केल के केन्द्र से पत्थर के टुकड़े के दोनों फ़ासलों में सीधे अनुपात (direct proportion) में सम्बन्ध है इस कारण यह सरलता से सिद्ध किया जा सकता है कि खनिज का आपेक्षिक

$$\text{घनत्व} = \frac{\text{पहली क्रिया में लिया हुआ फ़ासला}}{\text{दोनों क्रियाओं में लिखे हुए फ़ासलों का अन्तर}}$$

इस लेख में केवल २० साधारण खनिजों के विषय में लिखा जायेगा। अधिकतः पत्थरों में यही खनिजें मिलती हैं। इन खनिजों में उपयोगी खनिज कम हैं। भारत की उपयोगी खनिजों का विवरण इस पुस्तक में पहिले ही दिया जा चुका है।

(१) **स्फटिक** (Quartz—SiO_2)—यह खनिज सिलीकन और आक्सीजन का सम्मेलन है। इसके क्रिस्टल प्रिस्म (prism) के आकार के होते हैं। परन्तु उनके दोनों सिरों पर पिरेमिड (pyramid) के समान त्रिभुजाकार फल होते हैं। सीधे फलों पर कभी कभी क्षितिज रेखाएँ पड़ी रहती हैं। साधारणतः स्फटिक, यदि पारदर्शक (transparent) हुआ, तो रंग-हीन होता है; परन्तु अन्य किसी मूलतत्व या सम्मेलन की ज़रा सी

भी मिलावट से इसका रंग भिन्न होता है। इस प्रकार स्फटिक काला, पीला, बैंगनी, गुलाबी, हरा तथा अन्य रंग का भी हो सकता है। इसकी कठोरता ७ और आपेक्षिक घनत्व २.६५ है। इसमें तड़क बिल्कुल नहीं होती और टूटने पर इसकी चमक टूटे कांच के समान



होती है। अक़ीक इत्यादि इसकी रवा-हीन क़िस्में हैं। बालू तथा बालूदार पत्थरों में स्फटिक ही का बाहुल्य होता है। अन्य पत्थरों में भी प्रायः यही खनिज अधिक मिलती है। उपयोगी खनिजों के साथ धारियों में स्फ़टिक बहुत मिलता है।

(२) **फेलस्पार** (Felspar)—एल्यूमीन, खार, सिलीकन और आक्सीजन के सम्मेलन होते हैं। तीन प्रकार के फेलस्पार मिलते हैं—आरथोक्लेज़ (orthoclase, $K\,Al\,Si_3\,O_8$); माइक्रोक्लीन (microcline, $K\,Al\,Si_3\,O_8$) और प्लेजिओक्लेज़ (Plagioclase, $Na\,Al\,Si_3\,O_8$—$Ca\,Al_2\,Si_2\,O_8$)।

आरथोक्लेज़ और माइक्रोक्लीन का रासायनिक सङ्गठन यद्यपि एक ही है परन्तु उनकी अणु-रचना तथा क्रिस्टल में अन्तर होता है। आरथोक्लेज़ प्याज़ू रंग का और माइक्रोक्लीन हरे रंग का भी होता है। प्लेजिओक्लेज़ सफेद या मटियाले रंग का होता है और उपरोक्त सोडे-दार तथा चूने दार अणुओं के परिमाण के हिसाब से इस फेलस्पार की कई क़िस्में है।

फेलस्पार की कठोरता ६ है। आपेक्षिक घनत्व पोटाश-फेलस्पार का २·५४—२·५७ तक और सोडा-चूना-दार फेलस्पार का २·६२ से २·७६ तक है। प्रत्येक फेलस्पार में दो दिशाओं में तड़क होती है जिनके बीच का कोण क़रीब ९०° के होता है। इस तड़क के कारण पत्थरों में फेलस्पार के छोटे छोटे क्रिस्टल भी चमकते रहते हैं और इस गुण से स्फटिक और फेलस्पार को पहिचाना जा सकता है। यह खनिज जल और वालू की क्रियाओं से सफेद मिट्टी में धीरे धीरे परिवर्तित होती रहती हैं।

फेलस्पार आग्नेय शिलाओं तथा परिवर्तित रवा-दार शिलाओं में मिलते हैं। यह पेग्मेटाइट नामक अवरकदार आग्नेय शिला में बहुत परिमाण में मिलता है।

(३) **नैफ़लीन** (Nephelene मुख्यतः $Na\ Al\ Si\ O_4$) के अवयव सोडा-फेलस्पार के ही हैं परन्तु इसमें सिलीका ($Si\ O_2$) का परिमाण कम है कुछ पोटेशियम का अंश भी इस खनिज में रहता है, नैफ्लीन और स्फटिक साथ साथ किसी आग्नेय शिला में नहीं मिल सकते, कारण कि सिलीका का बाहुल्य होने पर उस आग्नेय पिण्ड से नैफ्लीन के स्थान पर फेलस्पार का बन जाना सम्भव है। नैफ़लीन-दार आग्नेय शिलाएँ भूपटल में अधिक नहीं मिलतीं। नैंफ्लीन का रंग फेलस्पार के समान सफेद, मटियाला या लाल सा होता हैं। स्फटिक के समान इसमें टूटे कांच की सी (परन्तु कुछ चिकनी सी) चमक होती है। यह खनिज स्फटिक से कम कठोर (कठोरता ५½-६) होती है और इसमें कुछ तड़क भी होती है। इसका आपेक्षिक घनत्व २·४५ से २·६५ तक होना है। यह केवल आग्नेय शिलाओं में मिलती है। कांच बनाने में सोडा के स्थान पर इसका उपयोग हो सकता है। किशनगढ़, जूनागढ़ तथा मद्रास में यह खनिज एक आग्नेय शिला में मिलती हैं।

(४) **अवरक** (mica) दो प्रकार का होता है—सफेद (Muscovite, $H, K\ Al\ Si\ O_4$) और काला [Biotite $(H, K)_2\ (Mg, Fe)_2\ Al_2\ (Si\ O_4)_3$]। सफेद अवरक के पतले पर्त रंगहीन, गुलाबी या हरे होते हैं। ये पारदर्शक भी होते हैं। सफेद अवरक की कठोरता २ से ३½ तक और काले की २½ से ३ गुने होती है और उनका आपेक्षिक घनत्व २·७ से ३·१ तक होता हैं। काले अवरक के पतले परतों का रंग धुआँ का सा होता है। दोनों प्रकार के अवरकों में एक दिशा में उत्तम तड़क होती है जिससे उनके अति अधिक पतले परत हो सकते हैं। यह परत लचीले होते हैं।

अवरक आग्नेय तथा परिवर्तित शिलाओं में मिलते हैं। सफेद अवरक के कण नदियों के बालू में भी बहुत दिखाई पड़ते हैं। अवरक (विशेषतः सफेद अवरक) एक अत्यन्त उपयोगी खनिज है और पेग्मेटाइट नामक आग्नेय शिला में उसके बड़े बड़े परत मिलते हैं अवरक का वृत्तान्त दिया जा चुका है।

(५) **हार्नब्लेण्ड** [Hornblende मुख्यतः $Ca\ (Mg, Fe)_3\ (Si\ O_\cdot)_4$ कुछ एल्यूमीना सहित] प्रायः काले या हरे रंग की होती है। इसके क्रिस्टल प्रिस्म के समान ६ सीधे फल वाले होते हैं और इसमें दो दिशाओं में तड़क होती है। ये दिशाएँ प्रिस्म के फल के समानान्तर होती है और उनके बीच ५६° या १२४° का कोण होता है। इस खनिज की कठारता ५ से ६ तक होती है और आपेक्षिक घनत्व २·९ से ३·४ तक होना

है। इसकी कई क़िस्में हैं जिनके रासायनिक सङ्गठन में अन्तर होता है। यह खनिज प्रायः आग्नेय और परिवर्तित काली शिलाओं का एक मुख्य अवयव है। ये शिलाएँ भारत में अनेक स्थानों पर मिलती है।

(६) **आगाइट** [Augite, मुख्यतः Ca (Mg, Fe) $(Si\ O_3)_2$ कुछ एल्यूमीना सहित] प्रायः काले रंग की होती है और रासायनिक सङ्गठन में हार्नब्लेण्ड के ही समान होती है। दोनों की लकीर भी रंगहीन होती है। आगाइट के क्रिस्टल भी प्रिस्म के समान होते हैं परन्तु उनमें आठ सीधे फल होते हैं और इसकी प्रिस्म के फलों के समानान्तर दोनों तड़क की दिशाओं में ६० का कोण होता है। इस खनिज में हार्नब्लेण्ड जैसी चमक नहीं होती और टूटने पर तड़क तल उतने चिकने नहीं होते हैं। इस खनिज की कठोरता और घनत्व हार्नब्लेण्ड के बराबर ही है और उसके समान इस खनिज की भी कई क़िस्में हैं। यह खनिज काली आग्नेय शिलाओं में बहुत अधिक मात्रा में मिलती है और उनमें खुर्दबीन आगाइटदार शिला भी भारत में कई स्थानों पर मिलती हैं (microscope) से सरलता से पहिचानी जा सकती है।

(७) **आलोवीन** [Olivine $(Mg, Fe)_2\ Si\ O_4$] के अंगूरी रंग के दानेदार क्रिस्टल होते हैं। इसकी कठोरता ६½ से ७ तक और आपेक्षिक घनत्व ३·२७ से ३·३७ तक होता है। यह उन्हीं आग्नेय शिलाओं में मिलती है जिनमें मेग्नेशियम और लोहे का परिमाण अधिक होता है और जो प्रायः काले रंग की होती हैं। गिरनार पर्वत पर और कई स्थानों पर इस खनिज की शिलाएँ मिलती हैं।

(८) **मेग्नेटाइट** (Magnetite, $Fe_3\ O_4$) काले रंग की खनिज होती है जो चुम्बक से लोहे के समान आकर्षित होती है। मेग्नेटाइट की कुछ क़िस्में स्वयं स्वाभाविक चुम्बक होती है अर्थात् चुम्बक के समान लोहे को खींच लेती हैं। मेग्नेटाइट की लकीर का रंग अति काला होता है। इसका परिमाण किसी स्थान पर अधिक हो तो यह लोहे की एक उपयोगी खनिज है क्योंकि इसमें लोहे का अंश ७२ प्रतिशत तक रहता है।

मेग्नेटाइट की कठोरता ६ है और आपेक्षिक घनत्व ५·१७ से ५·१८ तक होता है। इस प्रकार इसकी गणना भारी खनिजों में है। मेग्नेटाइट के क्रिस्टल आठ फलों के आक्टेहीडरन (octahedron) होते हैं जिनमें तड़क नहीं होती। मेग्नेटाइट काले आग्नेय पत्थरों में थोड़े से परिमाण में अक्सर मिलता है और कहीं कहीं पर उन्हीं में अधिक मात्रा में निविष्ट (concentrated) हो जाता है। समुद्रीय तट के काले बालू में भी यह खनिज मिलती है। मद्रास तथा मैसूर राज्य में यह खनिज बहुत है।

(९) **गेरू** (Hematite—$Fe_2\ O_3$) का रंग लाल या काला होता है परन्तु लकीर सदा लाल होती है। साधारण गेरू (red ochre) में मिट्टी का अंश मिला रहता है परन्तु असली ठोस गेरू खनिज केवल लोहे और आक्सीजन का सम्मेलन होती है और उसमें लोहे का परिमाण ७० प्रतिशत होता है। इसलिये यह लोहे की एक मुख्य खनिज है। लाल रंग के कारण यह लाल रोंगनों (paints) में भी काम आती है। पत्थरों का लाल रंग (उदाहरणतः चुनार के बालूदार पत्थर का रंग) प्रायः उनमें गेरू के थोड़े से ही परिमाण के कारण हो जाता है। थोड़ी मात्रा में यह प्रायः अनेक पत्थरों में मिलता है

परन्तु अधिक परिमाण में परिवर्तित शिलाओं की तहों में या 'लेटेराइट' नामक पत्थर में मिलता है। इस खनिज की ठोस किस्म की कठोरता ५½ से ६½ तक होती है और आपेक्षिक घनत्व ४·९ से ५·३ तक। इस खनिज की उत्पत्ति का ब्यौरा 'लोहे' के वृतान्त में दिया है।

(१०) भूरा गेरू (Limonite 2 Fe_2 O_3 3 H_2 O)—यह प्रायः भूरे या पीले रंग का होता है और इसकी लकीर पीले-भूरे रंग की होती है। मिट्टी का अंश अधिक मिले रहने पर इसको रामरज (yellow ochre) कहते हैं जो पीले रोगन बनाने के काम आती है। पत्थरों की लोहेदार खनिजें वायु और जल के प्रभाव से गल कर अन्त में भूरे गेरू के रूप में ही रह जाती हैं। यही कारण है कि प्रायः सब पत्थरों की ऊपर की सतह भूरे मटियाले या पीले रंग की होती है। ठोस भूरे गेरू की कठोरता ५ से ५½ तक और घनत्व ३·६ से ४·० तक होता है। इस खनिज में ५९·८ प्रतिशत तक लोहे का अंश होता है और इस कारण यदि अधिक मात्रा में मिलती है तो यह खनिज धातु निकालने के काम में आती है। रानीगंज, झरिया के कोयले के क्षेत्र में तथा अन्य अनेक स्थानों पर इस खनिज के टुकड़े मिलते हैं।

(११) रूपामाखी (Pyrite, Fe S_2) लोहे और गन्धक की सम्मेलन होती है। गन्धक के कारण यह लोहे की खनिज नहीं है परन्तु गन्धक निकालने तथा उसका तेजाब बनाने के काम में आती हैं। इसका रंग पीतल का सा होता है परन्तु लकीर काली होती है। इसकी कठोरता ६ से ६½ तक और घनत्व ४·९५ से ५·०१ तक होता है। इसके क्रिस्टल प्रायः घनमूलीय आकार के (cube) होते हैं जिनके फलों पर कभी कभी बहुत बारीक समानान्तर रेखाएँ पड़ी रहती हैं।

धातुओं के गन्धकदार सम्मेलनों में यह मुख्य खनिज है और प्रायः धारियों (veins) में मिलती है। कहीं कहीं कोयले में इसके क्रिस्टल मिला करते हैं जिनके कारण कोयला शीघ्र चूर चूर होने लगता है क्योंकि रूपामाखी जलवायु में शीघ्र ही नष्ट होने लगती है और अन्त में उसका गंधक पृथक होकर वह केवल भूरे गेरू में परिवर्तित हो जाती है। भारतीय कोयले के क्षेत्रों में कोयले के साथ इसके रवा बहुत मिलते हैं।

(१२) एपेटाइट (Apatite, Ca_5 cl F $[PO_4]_3$)—फास्फोरस, पेड़ों, जानवरों और मनुष्यों के जीवन के लिये एक अति आवश्यक पदार्थ है। पृथ्वी के सब फास्फोरस को जन्म देने वाली मुख्य खनिज एपेटाइट ही है जो प्रायः आग्नेय शिलाओं में बहुत थोड़े परिमाण में मिला करती है और उसमें से फास्फोरस जल द्वारा समुद्र में अथवा नदियों में पहुँच जाता है जहाँ पर वह मछली इत्यादि जन्तुओं, वनस्पतियों तथा जानवरों और मनुष्यों की हड्डियाँ बढ़ाने में काम आता है।

एपेटाइट हरे रंग की खनिज है। इसकी कठोरता ५ है और घनत्व ३·१७ से ३·२३ तक होता है। इसके क्रिस्टल कभी कभी पारदर्शक होते हैं और वे एक प्रकार के रत्न होते हैं। बिहार की अबरक की खानों में तथा सिङ्घभूमि ज़िले में यह खनिज मिलती है।

(१३) तामरा (Garnet साधारणतः Fe $_3Al_2$ $[Si\ O_4]_3$) कई रंग के होते हैं जिनके रासायनिक सङ्गठन में उपरोक्त लोहे और एल्यूमीनम के स्थान पर अन्य

धातुएँ भी होती हैं। साधारण तामरा का रंग लाल या भूरा लाल होता है और इसके क्रिस्टल १२ या २४ फलदार होते हैं। पारदर्शक क्रिस्टल रत्न माने जाते हैं। इसकी कठोरता ६½ से ७½ तक होती है जिसके कारण इसका बुरादा पत्थरों या अन्य पदार्थों को घिसने तथा पालिश करने के काम में आता है। इसका घनत्व ३.१५ से ४.३ तक होता है। यह प्रायः परिवर्तित रवादार शिलाओं में अक्सर मिलता है। जहाँ से नदियों के बालुओं में भी आ जाता है। बिहार, राजपूताना, मद्रास, उड़ीसा प्रान्तों में यह खनिज मिलती है।

(१४) टूर्मेलीन (Tourmaline) बोरोन, एल्यूमीनम तथा लोहे या मेग्नेशियम का एक पेचीदा सिलीकेट है जो प्रायः काले रंग का होता है। इसके क्रिस्टल प्रिस्म के समान ३, ६ या ९ सीधे फल वाले होते हैं। इन फलों पर प्रायः सीधी बारीक समानान्तर रेखाएँ पड़ी रहती हैं। टूर्मेलीन के क्रिस्टल के दोनों सिरों पर एक दूसरे से भिन्न आकार के फल होते हैं। हरे नीले और लाल रंग की टर्मेलीन प्रायः पारदर्शक होती हैं और उनकी गणना रत्नों में है। टूर्मेलीन की कठोरता ७ से ७½ तक और घनत्व २.९८–३.२ तक होता है। इस खनिज के बड़े बड़े क्रिस्टल प्रायः अबरकदार पेग्मेटाइट नामक आग्नेय शिला में बहुत मिलते हैं। टूर्मेलीन में तड़क बिल्कुल नहीं होती और टूटने पर कोयले सी लगती है परन्तु भारी उससे कहीं अधिक है। बिहार के अबरक के क्षेत्रों में यह बहुत मिलती है।

(१५) केल्साइट (Calcite, $CaCo_3$) चूने की स्वच्छ खनिज है। यह प्रायः रंगहीन या सफेद होती है। पारदर्शक क्रिस्टल खुर्दबीन की प्रिस्म बनाने के काम में आते हैं। इसकी कठोरता ३ है और घनत्व २.७१ है। नमक के हल्के तेज़ाब की ठंडी बूंद से भी इसमें से कार्बोनिक गैस (Carbon dioxide) निकलती है जिससे खनिज की सतह से बुदबुदे उठने लगते हैं। इसके क्रिस्टल प्रायः समचतुर्भुजीय आकार के ६ फलों के होते हैं और उनकी तड़क इन फलों के समानान्तर— तीन दिशाओं में—होती है जिससे टूटने पर भी खनिज का वही आकार रहता है। भारत में यह खनिज कई प्रान्तों में मिलती है। यह खनिज चूने के पत्थरों तथा संगमरमर का तो मुख्य अवयव ही है। धारियों (veine) में भी यह प्रायः असंस्कृत धातुओं तथा उनकी खनिजों के साथ बहुत मिलती है।

(१६) डोलोमाइट (Dolomite, Ca, Mg $[Co_3]$) गुणों में केल्साइट के ही समान है परन्तु इसकी कठोरता केल्साइट से कुछ अधिक (३½ से ४ तक) और घनत्व भी कुछ अधिक (२.८ से २.९ तक) होता है। ठंडी तथा हल्के नमक के तेज़ाब से इससे कार्बोनिक गैस के बुदबुदे नहीं निकलते परन्तु तेज़ तेजाब से अथवा गर्म करने पर गैस निकलने लगती है। कुछ चूने के पत्थरों तथा संगमरमर में डोलोमाइट का भी अंश होता है। और यह धारियों में भी मिलती है। इसका मुख्य उपयोग अग्नि-प्रतिरोधक ईंटें बनाने के लिये है जो भट्टियों में काम आती हैं। पंजाब व राजपूताना में इसके पत्थर मिलते हैं।

(१७) हरसोंठ (Gypsum, $CaSo_2 \cdot 2H_2O$) प्रायः सफेद रंग की होती है इसके क्रिस्टल पारदर्शक और काँच के समान रंगहीन होते हैं और एक दिशा में अबरक के समान तड़क होती है। इस खनिज की कठोरता २ है जिससे यह नाखून से भी खुरच जाती है। इसका आपेक्षिक घनत्व २.३२ के क़रीब है। यह 'पेरिस का प्लास्टर' नामक

सीमेन्ट बनाने के काम में आती है। जल हीन हरसोठ को एनहाइड्राइट (Anhydrite, Ca SO_4) खनिज कहते हैं। हरसोठ जलज शिलाओं में (मुख्यत: मिट्टी और चूने के पत्थरों के साथ) मिलती है। पहाड़ी नमक की तहों के साथ इसकी भी तहें अक्सर मिलती हैं। ये दोनों खनिज किसी समय समुद्रतट के धीरे धीरे सूखने पर बनी होंगी। पहाड़ी नमक (Rock Salt, Na Cl) सोडियम और क्लोरीन का सम्मेलन होता है। इसके क्रिस्टल घनमूलीय आकार के होते हैं और उनमें तीन दिशाओं में तड़क होती है। नमक और हरसोठ पंजाब के साल्टरेंज व मण्डी राज्य में बहुत मिलते हैं।

(१८) **क्लोराइट** (Chlorite) मेग्नेशियम और एल्यूमीनम का पेचीदा सिलीकेट (सिलीका का सम्मेलन) है। यह हरे रंग की होती है और अबरक के समान तड़क वाली होती है परन्तु इसके परतों में उतनी लचक नहीं होती। इसकी कठोरता २ से २½ तक है और आपेक्षिक घनत्व २·६५ से २·८५ तक होता है। यह खनिज प्राय: पूर्व-स्थित काली खनिजों के विनाश से (उदाहरणत: काले अबरक, आगाइट और हार्नब्लेण्ड से) बनती है। पत्थरों का हरा रंग (मुख्यत: परिवर्तित शिलाओं का) उनमें इसी खनिज के कणों के कारण होता है। बिहार व मद्रास प्रान्त में इस खनिज की शिलाएँ मिलती हैं।

(१९) **ज़हरमोहरा** (Serpentine, $H_4 Mg_3 Si_2 O_9$) प्रायः अंगूरी हरे रंग का होता है। इसमें चिकनी (मोम की चमक के समान) चमक होती है। इसकी कठोरता २½ से ४ तक और घनत्व २·५ से २·६५ तक होता है। क्लोराइट की तरह यह भी मेग्नेशियम और लोहे की खनिजों के विनाश से (मुख्यत: आलीवीन से) उत्पन्न होता है। इसकी रेशेदार किस्म 'एस्बस्टस (Asbestos) होती है जो सफेद होती है और रुई के समान कत सकती है। वह खनिज अग्नि-प्रतिरोधक होने के कारण बड़ी उपयोगी होती है। जहरमोहरा के टुकड़े संगमरमर में जड़ने के काम में आते हैं। बिहार, राजपूताना व मद्रास प्रान्तों में इसकी शिलाएँ मिलती हैं।

(२०) **चीनी मिट्टी** (Kaolin. $H_4 Al_2 Si_2 O_9$) अन्य मिट्टियों के समान ही एल्यूमीनम और सिलीका का जलमय सम्मेलन होती है परन्तु इसका रंग बहुत सफेद होता है। इसकी कठोरता २ से २½ तक और घनत्व २·६ से २·६३ तक होता है। इस खनिज की उत्पत्ति प्राय: 'फेलस्पार' नामक खनिज के जल और वायु द्वारा परिवर्तन होने से हुई है जिससे फेलस्पार में से खार का अंश कार्बोनेट बनकर जल में घुलकर पृथक हो जाता है। इसलिये यह खनिज प्रायः फेलस्पार-दार आग्नेय शिलाओं में मिलती है और पोरसीलेन के पदाथ और चीनी के बर्तन बनाने, तथा कागज़ और कपड़े की मिलों में काम आती है। लेटेराइट नामक शिला में गेरू के साथ भी सफेद मिट्टी की तहें प्राय: मिला करती हैं परन्तु इसमें शुद्ध चीनी मिट्टी के साथ अन्य कई अवयवों की मिलावट होती है और इस मिट्टी को **लिथोमार्ज** (Lithomarge) कहते हैं। चीनी मिट्टी राजमहल पहाड़, बिहार प्रान्त तथा अन्य कई स्थानों पर मिलती है।

उपरोक्त २० खनिजें भूपटल को बनाने वाली मुख्य खनिजें हैं और भूगोल के प्रत्येक विद्यार्थी को इन खनिजों से परिचित होना चाहिये। खेद है हमारे स्कूलों में इसका अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं है।

परिशिष्ट २

भू-पटल की मुख्य शिलाएँ

भूपटल शिलाओं से बना है और प्रत्येक शिला एक या अधिक खनिज से बनी है। खनिज मूलतत्वों के रासायनिक सम्मेलन से बनी है परन्तु शिलाओं में खनिजों का केवल समिश्रण रहता है। अनेक शिलाओं में कम से कम थोड़े से खनिजात्मक अवयव तो हम सरलता से पहिचान सकते हैं परन्तु कई शिलाओं में वे ख़ुर्दबीन से ही पहिचाने जा सकते हैं। शिलाओं को शब्दों के समान कह सकते हैं और खनिजों को अक्षरों के। बारीक अक्षर बिना चश्मे के नहीं पढ़े जा सकते इसी प्रकार अनेक शिलाओं की खनिजें भी बिना ख़ुर्दबीन के नहीं दिखतीं।

भूपटल की शिलाएँ तीन प्रकार की होती हैं—(१) आग्नेय (Igneous) जो पृथ्वी के अन्दर से आये हुए पिघले पिण्ड के ठोस होने पर बनती हैं (२) जलज (Sedimentary) जो पूर्व-स्थति शिलाओं के (जल अथवा वायु इत्यादि से पृथक किये हुए) टुकड़ों के एकत्रित होने से बनती हैं। और (३) परिवर्तित (Metamorphic) जो पूर्व-स्थित शिलाओं के गर्मी अथवा दबाव से रुपान्तरित होने से बनती हैं।

आग्नेय शिलाएँ प्रायः रवादार होती हैं। इन के खनिजात्मक अवयव एक दूसरे में सटे हुए होते हैं। ये अवयव द्रव पदार्थ के ठोस होते समय बने थे और तभी एक दूसरे में जुड़ गये थे। परन्तु जलज शिलाओं के अवयव आपस में किसी अन्य प्रकार के सीमेन्ट से जुड़े रहते हैं। उदाहरणतः बालू-पत्थर में बालू के कण, मिट्टी, चूने या लोहेदार बारीक पदार्थ के कारण जुड़े रहते हैं। जलज शिलाएँ प्रायः जल अथवा वायु द्वारा बनती हैं। इस कारण उन में छोटे और बड़े कण अथवा पुराने और उसके बाद के लाये हुए कण अलग अलग एकत्रित होते हैं, जिससे इन शिलाओं में तह होती हैं। इसी कारण इन शिलाओं को प्रस्तरदार शिलाएँ भी कहते हैं। आग्नेय शिलाओं में छोटे बड़े अवयव एक साथ ही होते हैं और प्रत्येक दशा में देखने पर वे एक ही समान पिण्डी-कार (Massive) होती हैं और उनमें तह नहीं होती।

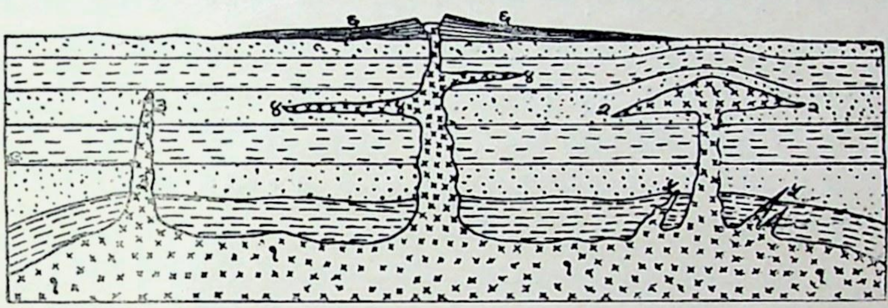
परिवर्तित शिलाएँ आग्नेय या जलज, किसी भी प्रकार की शिलाओं पर गर्मी या दबाव से अथवा दोनों के प्रभाव से बनती हैं। इनमें पूर्व-स्थित शिलाओं के गुण कुछ मात्रा में अक्सर शेष रह जाते हैं। जो शिलाएँ गर्मी से पिघल कर रुपान्तरित होती हैं वे रवादार होती हैं और जिन पर दबाव अधिक पड़ा होता है उनके अवयव एक विशेष दशा में लम्बे हो जाते हैं और उन पत्थरों में टेढ़ी मेढ़ी सिकुड़न, तड़क अथवा विशेष प्रकार की तह सी पड़ जाती है।

पत्थरों को पहिचानने में उनके खनिजात्मक अवयवों के क्रिस्टल या कणों का निर्माण, आकार तथा उनका परस्पर सम्बन्ध बहुत सहायक होता है। इसके अतिरिक्त

पत्थरों की कठोरता तथा नमक के तेज़ाब से कुछ पत्थरों पर कार्बोनिक एसिड गैस के बुद-बुदे उठना भी उनको पहिचानने में सहायक होते हैं।

(१) आग्नेय शिलाएँ

आग्नेय शिलाएँ रासायनिक दृष्टि से दो प्रकार की होती हैं। एक एसिड (Acid) जिन में सिलीका, एल्यूमीना तथा खार का अंश अधिक होता है अर्थात् उन में उपरोक्त अवयवों वाली खनिजों का मुख्यतः स्फटिक और फेल्स्पार का बाहुल्य रहता है। वे शिलाएँ प्रायः हल्के रंग की होती हैं। दूसरी बेसिक (Basic) शिलाएँ, जिन में लोहे, मेग्नेशिया तथा चूने का अंश अधिक होता है, उन में आगाइट, हार्नब्लेण्ड, आलीवीन इत्यादि खनिज होती हैं और वे प्रायः काले रंग की होती हैं। इन दो किस्मों के बीच की भी कुछ शिलाएँ होती हैं जिन में न तो सिलीका अधिक होता है और न लोहे व मेग्नेशिया के अंश का ही बाहुल्य होता है।



१ = बेथोलिथ, २ = लेकोलिथ, ३ = डाइक, ४ = सिल, ६, ज्वालामुखी
पातालीय, अर्ध पातालीय तथा ज्वालामुखीय शिलाओं की स्थिति

आग्नेय शिलाओं के उत्पत्ति-स्थान के अनुसार उनको तीन प्रकार से विभाजित किया जाता है—पातालीय (Plutonic), अर्ध-पातालीय (Hypabyssal) तथा ज्वालामुखी (Volcanic)। पातालीय शिलाएँ किसी समय पृथ्वीतल से बहुत नीचे आग्नेय पिण्ड के ठंडे होने से बनी थीं। आग्नेय पिण्ड, जो द्रव दशा में पृथ्वी के अन्त-स्तल से उठकर भूपटल में नीचे रह जाता है उस से प्रायः दो आकार के पिंड बनते हैं—एक लेकोलिथ (Laccolyth) और दूसरा बेथोलिथ (Batholyth)। लेकोलिथ गुम्बद सा होता है और उसकी जड़ में भूपटल की शिला रह जाती हैं। परन्तु बेथोलिथ भूपटल के नीचे आग्नेय पिंड का एक अति लम्बा पहाड़ सा होता है। बेसिक पातालीय शिलाएँ प्रायः लेकोलिथ के रूप में द्रव पिंड के ठोस होने से बनी हैं और एसिड पातालीय शिलाएँ बेथोलिथ के रूप में। अपने बड़े आकार या भूतल से बहुत नीचे होने के कारण, आग्नेय शिलाओं को जन्म देने वाला पिघले हुए द्रव-पदार्थ का पिंड बहुत धीरे धीरे ठंडा पड़ता है और उसमें जो गैस तथा वाष्प पदार्थ होते हैं, वे ऊपर के दबाव के कारण बहुत समय तक उस में घुले हुए रह सकते हैं, जिससे ऐसा पदार्थ बहुत कालतक द्रव दशा में रह सकता

है। इन कारणों से इस प्रकार के द्रव पदार्थ के ठोस होने पर जो शिलाएं बनती हैं उनकी खनिजों के क्रिस्टल बड़े बड़े आकार के और प्रायः सम—रवादार (Even-granular) होते हैं। यही कारण है कि पातालीय शिलाओं के खनिजात्मक अवयव हम सरलता से पहचान सकते हैं। लेकोलिथ अथवा बेथोलिथ के ऊपर के भूपटल के भाग के (जलवायु इत्यादि के प्रभाव से) धुल जाने से आज कल पातालीय शिलाएँ पृथ्वीतल पर दृष्टि गोचर हो रही हैं।

पातालीय शिलाओं में निम्नलिखित पाँच शिलाएँ मुख्य हैं :—

(१) **ग्रेनाइट** (Granite) में स्फटिक और फेलस्पार (मुख्यत: आर्थोक्लेज़ या माइक्रोक्लीन, खनिजों का बाहुल्य होता है। इनके अतिरिक्त काली खनिजों में से काला अबरक अथवा हार्नब्लेण्ड रहती हैं परन्तु इनकी मात्रा बहुत कम होती है। ग्रेनाइट का रंग सफेद मटियाला, सफेद गुलाबी अथवा लाल होता है। गुलाबी या लाल रंग का कारण शिला में पोटाश फेलस्पार का बाहुल्य है। खनिजों के रवा बड़े और सम आकार के होते हैं। ग्रेनाइट बनने में, द्रव पदार्थ से पहले काली खनिजों के रवा पृथक होते हैं, फिर फेलस्पार और अन्त में स्फटिक। स्फटिक के रवा अच्छी तरह नहीं बनते, कारण कि इस खनिज को जो स्थान अन्य खनिजों से बचता है उसी में बनना पड़ता है। बड़े बड़े पर्वतों के बीच में यह शिला बहुत मिलती है। पातालीय शिलाओं में ग्रेनाइट ही अधिक मिलता है। इस शिला का आपेक्षिक घनत्व २.६३ से २.७५ तक होता है। यह शिला प्रायः भारत के प्रत्येक प्रान्त में मिलती है।

(२) **साइनाइट** (Syenite) शिला ग्रेनाइट के ही समान होती है परन्तु इस में स्फटिक या तो बिल्कुल नहीं रहता या बहुत कम मात्रा में रहता है। स्फटिक-हीन साइनाइट शिलाओं में कभी कभी नेफलीन खनिज भी मिला करती है। यह शिला भूपटल में बहुत कम स्थानों में बनी है। साइनाइट शिलाएँ किशनगढ़ रियासत, गिरनार पर्वत अथवा मद्रास प्रान्त में मिलती हैं।

(३) **डाओराइट** (Diorite) में प्रायः प्लेजिओक्लेज़ फेलस्पार और हार्नब्लेण्ड का बाहुल्य होता है। और उसका रंग काला सा होता है। यह शिला काली खनिजों की अधिकता के कारण ग्रेनाइट से भारी होती है। इसका आपेक्षिक घनत्व २.८ २.९ तक होता है। डाओराइट एसिड और बेसिक शिलाओं के बीच की श्रेणी में समझी जाती है। यह शिला भी गिरनार पर्वत में बहुत मिलती है।

(४) **गैब्रो** (Gabbro) एक बेसिक मोटे रवादार शिला है। इस में प्रायः आगाइट और चूने-दार प्लेजिओक्लेज़ का अंश अधिक रहता है। इसका रंग काला स्याह रहता है। जिस गैब्रो में आलीवीन खनिज हो कुछ हरा सा काला होता है। गैब्रो का आपेक्षिक घनत्व २.९ से ३.० तक है। यह शिला बिलूचिस्तान, गिरनार पर्वत तथा मद्रास प्रान्त और मैसूर राज्य में पाई जाती है।

(५) **पेरिडोटाइट** (Peridotite) बहुत ही बेशिक शिला है। इस में प्रायः लोहेदार और मेग्नेशियादार खनिजें—आलीवीन और आगाइट—ही रहती हैं। केवल आलीवीनदार शिला को डूनाइट (Dunite) कहते हैं और यह शिला प्रायः ज़हर मोहरा

(Serpentine) नामक शिला में रूपान्तरित हो जाती है। पेरीडोटाइट का रंग काला अथवा हरा होता है और आपेक्षिक घनत्व ३.१७ से ३.३ तक है। किसी किसी पेरीडोटाइट का (उदाहरणतः भारतीय कोयले के कई क्षेत्रों में) काला अबरक भी एक मुख्य अवयव होता है। क्रिमोयम धातु को खनिज, हीरा तथा प्लेटीनम धातु प्रायः पेरीडोटाइट शिला के साथ ही मिलती हैं। बिलूचिस्तान, मैसूर, मद्रास, सिंघभूमि इत्यादि में इस प्रकार की शिला मिलती है।

अर्ध-पातालीय शिलाएँ भूपटल की दरारों में अथवा जलज शिलाओं के प्रस्तरों के बीच में बनती हैं। इन शिलाओं को जन्म देने वाला द्रव पदार्थ जब ज्यादातर सीधी दरारों में (जो पृथ्वीतल तक नहीं आतीं) भरकर जम जाता है तो उस दीवार-रूपी आकार के आग्नेय पिण्ड को डाइक (Dyke) कहते हैं। यदि वह द्रव-पदार्थ पूर्व-स्थित शिलाओं की तहों को आर पार न करके उनके भीतर ही जम जाता है तो उसे सिल (Sill) कहते हैं। कालान्तर में डाइक और सिल पृथ्वीतल पर, उनके ऊपर की शिलाओं के धुल जाने से निकल आती हैं।

उपरोक्त उत्पत्ति से विदित होता है कि अर्ध पातालीय शिलाएँ पातालीय शिलाओं से पतले पिण्डों में होने के कारण द्रव-पदार्थ से जल्दी बन जाती हैं, जिस के कारण उन की खनिजों के रवा उतने बड़े आकार के प्रायः नहीं होते। अर्ध पातालीय शिलाएँ सम-रवादार तथा विषम-रवादार (Inequigranular) होती हैं। दूसरे प्रकार के खनिजात्मक निर्माण को पारफरिटिक (Porphyritic) कहते हैं। इस में शिला की सब खनिजों के रवा द्रव पदार्थ के शीघ्र ठंडे होने से साधारणतः छोटे होते हैं परन्तु उनके बीच में कुछ खनिजों के रवा बड़े आकार के होते हैं। कदाचित ये क्रिस्टल द्रव पदार्थ में अधिक नीचे से पहले ही बनकर तैरते हुए आये थे। ऐसी शिलाओं में बड़े क्रिस्टलों को तो वैसे ही पहचान सकते हैं परन्तु छोटे रवों को केवल खुर्द-बीन से ही पहचान सकते हैं। इन का खनिजात्मक संगठन पातालीय शिलाओं के ही समान होता है और उन्हीं के नाम के आगे पारफरी (Porphyry) शब्द जोड़ने से नाम बन जाता है। उदाहरणतः ग्रेनाइट पारफरी, डाओराइट-पारफरी इत्यादि।

अर्ध पातालीय सम-रवादार शिलाओं में तीन मुख्य हैं—

(१) एप्लाइट (Aplite) बहुत बारीक रवादार ग्रेनाइट है जो प्रायः डाइक के रूप में मिलता है। यह प्रायः लाल रंग का होता है।

(२) पेग्मेटाइट (Pegmatite) में साधारणतः ग्रेनाइट के समान ही फेलस्पार तथा स्फटिक होता है और यह एप्लाइट के समान डाइक के रूप में मिलती है परन्तु इस में जो खनिजें मिलती हैं उन के क्रिस्टल का आकार अति अधिक बड़ा होता है। सफेद अबरक के बड़े बड़े परत पेग्मेटाइट में अक्सर मिलते हैं। इसके अतिरिक्त टूर्मेलीन, बैरिल, गार्नेट इत्यादि अनेक खनिजों के क्रिस्टल मिलते हैं। पेग्मेटाइट की उत्पत्ति के विषय में यह विचार है कि ग्रेनाइट बनाने वाले द्रव पदार्थ के ठोस होने पर अन्त समय में उससे वाष्पीय पदार्थों से निकल कर ऊपर दरारों में बहुत धीरे धीरे ठण्डे पड़ कर जमने

से पेग्मेटाइट बनी है। विहार-उड़ीसा, मद्रास, और राजपूताने में अनेक स्थानों पर उत्तम अबरकदार पेग्मेटाइट मिलती है।

(३) **डालेराइट** (Dolerite) के खनिजात्मक अवयव गैब्रो नामक पातालीय शिला के ही होते हैं परन्तु इस शिला के रवा कुछ छोटे आकार के होते हैं। इसका रंग काला होता है परन्तु कहीं कहीं परिवर्तित होकर हरा भी हो जाता है। डालेराइट की अनेक डाइक भारत में कई कोयले के क्षेत्रों में पाई जाती हैं। ये डाइक रानीगंज और झरिया क्षेत्रों में तो मीलों लम्बी मिलती हैं। अन्य प्रान्तों में भी इस शिला की डाइक बहुत मिलती हैं।

ज्वालामुखी शिलाएँ या तो ज्वालामुखी पहाड़ के मुंह से या पृथ्वीतल की दरारों के मुँह से निकले हुए 'लावा' नामक द्रव-पदार्थ के ठोस बनने से बनती हैं। जो ज्वालामुखी अन्दर से बम्ब के गोले के समान पत्थर के छोटे बड़े टुकड़े अथवा राख बाहर फेंकता है, वे भी एकत्रित होकर एक प्रकार का ज्वालामुखीय पत्थर बनाते हैं। जिस को ज्वालामुखीय टफ (Tuff) कहते हैं। पृथ्वीतल पर आकर द्रव पदार्थ बहुत जल्दी ठोस हो जाता है जिससे उसके खनिजात्मक अवयवों को क्रिस्टल बनाने का काफी समय नहीं मिलता, इस कारण ज्वालामुखीय शिलाएँ प्रायः बहुत बारीक रवावाली होती हैं। हाँ, यदि उस द्रव पदार्थ में कुछ खनिजों के क्रिस्टल पृथ्वीतल पर आने से पहले ही बनकर तैर रहे हों तो उस शिला में ये बड़े क्रिस्टल पारफरी के समान छोटे रवाओं में बने हुए मिलते हैं। ऊपर आने पर कभी कभी द्रव पदार्थ की तह इतनी जल्दी ठंडी हो जाती है कि उस में खनिज के किसी तरह के रवा नहीं बनते अर्थात् उस तह की शिला रवा-हीन (Amorphous) होती है। ऐसी शिला को ज्वालामुखीय कांच (Volcanic glass) कहते हैं। यदि किसी शिला में कुछ खनिजों के रवा हों और कुछ कांच हो तो उस को अर्ध-रवादार (Hemi-Crystalline) शिला कहते हैं। लावा निकलने पर ज्यों ज्यों वह ठंडा पड़ता जाता है उस में घुले हुए वाष्प पदार्थ, जिन में जल वाष्प सब से अधिक होता है, उसकी सतह से निकलते रहते हैं। यदि लावा की सतह कुछ जम गई हो तो वे प्रायः अधिक ज़ोर से निकलते हैं और उस लावा में सूराख़ बना देते हैं। इस प्रकार से बने हुए ज्वालामुखीय पत्थर झामा (झावा) के समान छेद वाले होते हैं। ज्वालामुखीय शिलाओं में चार-शिलाएँ मुख्य हैं :—

(१) **आबसीडियन** (Obsidian) ज्वालामुखीय काँच होता है, जिसके रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि वह प्रायः ग्रेनाइट बनाने वाले लावा का रवाहीन रूप है। यह कांच के समान ही चमकदार और टूटने वाला होता है। यह शिला काठिया-वाड़ की कुछ पहाडियों में मिलती है।

(२) **प्यूमिस** (Pumice) झामा-रूपी छिद्रदार बड़ी हल्की शिला होती है। इस की भी उत्पत्ति प्रायः ग्रेनाइट बनाने वाले द्रवपदार्थ के पृथ्वीतल पर यकायक ठंडे होने और उसमें से जल वाष्प के निकलने से हुई है। बड़ौदा के समीप पांवागढ़ पर्वत पर प्यूमिस मिलती है।

(३) **राम्रोलाइट** (Rhyolite) बहुत बारीक रवादार एसिड शिला है। इस के खनिजात्मक अवयव तथा रासायनिक संगठन ग्रेनाइट या एप्लाइट के ही समान है। पारफरिटिक राओलाइट में स्फटिक और फेलस्पार के छोटे छोटे क्रिस्टल सरलता पूर्वक पहचान लिए जाते हैं। इस का रंग प्रायः मटियाला सफेद, गुलाबी या लाल होता है। ब्रह्मदेश, राजपूताना तथा काठियावाड़ में इस प्रकार की शिला मिलती है।

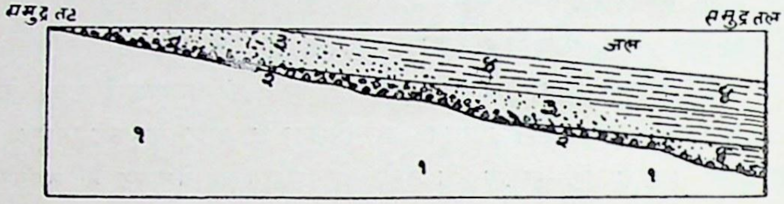
(४) **बेसाल्ट** (Basalt) एक बेसिक शिला है। इसका रंग प्रायः काला (कभी कभी भूरा या हरा भी) होता है। खुर्दबीन से देखने से इस में आगाइट प्लेजिओक्लेज़ फेल्स्पार और कुछ मेग्नेटाइट तथा कभी कभी आलीवीन मिला करती हैं। इस प्रकार इस का खनिजात्मक तथा रासायनिक संगठन गैब्रो और डालेराइट के समान ही है। पातालीय शिलाओं में जिस प्रकार ग्रेनाइट का ही पृथ्वी पर बाहुल्य है उसी के विपरीत ज्वालामुखीय शिलाओं में राओलाइट बहुत कम मिलता है और बेसाल्ट बहुत अधिक। यह अनुमान किया गया है कि भूपटल के नीचे हर स्थान पर बेसाल्ट के समान ही ठोस या थोड़ा पिघला हुआ पदार्थ है, जिस पर भूपटल एक प्रकार से तैर रहा है द्वितीय कल्प के अन्त अथवा तृतीय कल्प के आदि में सारे दक्षिणीय भारत में अनेक दरारों में होकर धीरे धीरे पृथ्वी के अन्तस्तल से इतना बेसाल्ट बनाने वाला लावा निकला था कि उसने क़रीब २ लाख वर्ग मील भूतल का ढक दिया होगा और कहीं कहीं उसकी मोटाई १० हज़ार फ़ुट तक पहुँच गई होगी। अब भी सारे दक्षिणीय भारत में (उदाहरणतः काठियावाड़, गुजरात, बम्बई, मध्य भारत तथा मध्यप्रान्त) भूतल पर बेसाल्ट शिला के रूप में इसी लावा का बाहुल्य है। हाँ, बीच बीच के कई स्थानों से इसकी तहें कालान्तर में धुल गई हैं जिससे उस समय से पुराने पत्थल भूतल पर दृष्टिगोचर होते हैं। जहाँ पर वाष्पों के निकलने से छिद्रदार बेसाल्ट बना है उसके बड़े बड़े सूराखों में बाद को अन्य खनिजें कई क़िस्म के उपयोगी स्फटिक, अक़ीक, केल्साइट इत्यादि बन गई हैं। इनमें एक खनिज ज़िओलाइट (Zeolite) उल्लेखनीय है जो प्रायः सफेद मुलायम और लम्बे सुई रूपी आकार के क्रिस्टल में मिलता है।

(४) ज्वालामुखीय टफ (Tuff) पत्थरों के टुकड़े राख इत्यादि के एकत्रित होकर किसी प्रकार से जुड़ जाने से बनता है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। जलज शिलाओं के कण प्रायः गोल होते हैं परन्तु ज्वालामुखीय टफ के कण नोकदार होते हैं।

(२) जलज शिलाएँ

जलज शिलाएँ मुख्यतः दो प्रकार से बनती हैं एक तो पूर्व-स्थित शिलाओं के टुकड़ों को नदी, वायु अथवा हिम द्वारा ले जाकर जलाशयों में उनके एकत्रित होने से, और दूसरे जल में घुले हुए रासायनिक सम्मेलनों के पृथक होने से। प्रथम प्रकार की शिलाओं के बनने में पत्थरों के टुकड़ों का उनके आकार तथा भारीपन के अनुसार कुछ पृथक्करण हो जाता है अर्थात् भारी या बड़े बड़े टुकड़े एक स्थान पर या एक तह में एकत्रित होते हैं और हलके या छोटे कण दूसरे स्थान या दूसरी तह में। यही कारण है कि

इस प्रकार की शिलाएँ प्राय: तहदार होती हैं। यद्यपि पहले पहल इन शिलाओं को बनाने वाले टुकड़े या कण पोले (Unconsolidated) होते हैं परन्तु धीरे धीरे उनके बीच का स्थान किसी बालू, चूना, मिट्टी अथवा लोहेदार पदार्थ से भर जाता है जो उनको सीमेन्ट के समान आपस में जकड़ देता है। तत्पश्चात् कालान्तर में जलाशयों के पेंदों के ऊपर उठने पर जलज शिलाएँ और ठोस हो जाती हैं और क्षितिज अथवा झुकी हुई तहों के रूप में मिलती हैं। इस प्रकार की शिलाओं का वर्गीकरण उनके कणों के आकार के अनुसार होता है।



१—पूर्वस्थित शिलाएँ, २—काङ्गलोमरेट, ३—बालूदार पत्थर, ४—मिट्टीदार पत्थर
जलज शिलाओं की उत्पत्ति

दूसरी प्रकार की जलज शिलाएँ समुद्र या झील के जल में घुले हुए पदार्थों के, रासायनिक क्रियाओं अथवा जल में रहने वाले प्राणियों द्वारा, एकत्रित होने से बनती हैं। इन शिलाओं का वर्गीकरण उनके खनिजात्मक अवयवों के अनुसार किया जाता है। ये शिलाएँ भी तहदार होती हैं परन्तु इनमें प्राय: एक ही खनिज के कण होते हैं। इन सब शिलाओं में मृतक जीवों के चिन्ह अक्सर मिला करते हैं। उपरोक्त दो रीतियों के अतिरिक्त कुछ शिलाएँ पूर्व स्थित शिलाओं के जल वायु द्वारा केवल परिवर्तन से भी बन जाती हैं और वे प्राय: अपने जन्म देने वाली शिलाओं के ही ऊपर मिलती हैं।

जलज शिलाओं में निम्नलिखित शिलाएँ मुख्य हैं :—

(१) काङ्गलोमरेट (Conglomerate) में किसी भी सख्त पत्थर के बड़े बड़े टुकड़े होते हैं और उनके बीच में बालू तथा चूना, लोहे या मिट्टीदार सीमेन्ट होता है जो उन टुकड़ों को जकड़े रहता है। काङ्गलोमरेट के टुकड़े नदी के बहते हुए जल में घिसने के कारण प्राय: गोल होते हैं। इस शिला का पाया जाना इस बात का द्योतक होता है कि उस स्थान के करीब ही जलाशय का किनारा था या वह स्थान किसी ढालू पहाड़ के नीचे था जहाँ नदियों का बहाव एक दम रुक सा जाता होगा और वे उन सब टुकड़ों को वहीं डाल गई होंगी। यदि ये बड़े बड़े टुकड़े गोल न हों और नुकीले हों तो उस पत्थर को ब्रेक्सिया (breccia) कहते हैं। इस शिला के टुकड़ों को घिस कर गोल होने का अवसर नहीं मिलता अर्थात् अपनी जन्म दाता (पूर्व-स्थित) शिलाओं के पास ही ये एकत्रित हो जाते हैं। हिमालय पर्वत के दक्षिणी भाग में यह शिला बहुत है।

(२) (बलुआ) पत्थर (Sandstone) प्राय: बालू के कणों का बना होता है। ये कण बालू मिट्टी या चूने अथवा लोहेदार बारीक खनिज पदार्थ के सीमेन्ट से

परस्पर सटे रहते हैं। यह सीमेन्ट खुर्दबीन से बड़ी सरलता से पहिचाना जा सकता है। बलुआ पत्थर का लाल रंग लोहे के सीमेन्ट के ही कारण होता है। मुग़ल काल के बहुत से क़िले प्रायः इसी प्रकार के लाल बलुआ पत्थर के ही बने हैं बलुआ पत्थर की उपयोगिता उसके सीमेन्ट बनाने वाले खनिज पदार्थ पर ही निर्भर है। चूने-दार सीमेन्ट वाले पत्थर कमज़ोर होंगे वे अधिक मजबूत और टिकाऊ होंगे। मोटे कण वाले बलुआ पत्थर और काङ्गलोमरेट में तथा बहुत छोटे कण वाले बलुआ पत्थर और मिट्टी की शिला में अधिक अन्तर नहीं दिखाई देता। विन्ध्याचल पर्वत में यह बहुत है।

(३) मिट्टीदारशिला (Shale) में मिट्टी का अंश बहुत अधिक होता है। इस के कण बहुत ही छोटे होते हैं और साधारणतया दिखाई भी नहीं देते। इस का रंग अधिकतर मटियाला होता है परन्तु उसमें गेरू का अंश होने से लाल अथवा कार्बन अंश होने से काला रंग भी हो सकता है। मिट्टी की कुछ शिलाएँ हरे रंग की भी होती हैं जिसका कारण उनमें हरी क्लोराइट जैसी खनिजें होती हैं। मिट्टीदार-शिलाएँ बहुत मुलायम होती हैं और प्रायः चिकनी होती हैं। मिट्टी को शिलाएँ पतली पतली तह में सरलता से टूट जातो हैं। गीली होने पर इन शिलाओं में से मिट्टी की गन्ध आती है जो उनके ऊपर सांस लेकर तुरन्त नाक के पास ले जाने पर भी आ सकती है। मिट्टीदार और बालूदार शिलाओं में मुख्यतः कणों के आकार का अन्तर होता है। मिट्टीदार शिलाओं के कणों का खुर्दबीन से भी पहिचानना कठिन होता है। कोयले के क्षेत्रों में इस प्रकार की शिलाएँ बहुत हैं।

(४) चूनेदार जलज शिलाएँ (Limestone) या तो जल रासायनिक सम्मेलनों के अवक्षेपन से बनती हैं अथवा अत्यन्त सूक्ष्म जल में रहने वाले मृत प्राणियों के खोल (shell) या भागों के एकत्रित होने से। कहीं कहीं सोते या झरनों (Springs) के जल से भी उनके मुख पर केल्साइट नामक खनिज का अवक्षेपन होकर चूनेदार पत्थर बनता है। इन शिलाओं का मुख्य अवयव केल्साइट खनिज होती है और इसी कारण नमक के हल्के या ठंडे तेजाब की बूंद से इनकी सतह से बुदबुदे उठने लगते हैं। चूनेदार जलज शिलाओं के कण प्रायः बहुत बारीक होते हैं। परन्तु कुछ मोटे-कण वाली भी होती हैं। इन शिलाओं का रंग प्रायः मटियाला काला होता है परन्तु बाहर की सतह जलवायु के प्रभाव से प्रायः पीली सी रहती है। हल्की और पीली सी किस्म जिसमें समुद्रीय सूक्ष्म जीवों के चिन्हों का बाहुल्य होता है **खड़िया** (Chalk) नामक शिला कहलाती है। यदि किसी चूनेदार पत्थर में केल्साइट के साथ मिट्टी का भी कुछ अंश हो तो उसे **मार्ल** (marl) कहते हैं। विन्ध्याचल पर्वत में पत्थर बहुत हैं।

(५) डोलोमाइट (Dolomite) चूनेदार शिलाओं के समान ही होता है परन्तु उसमें केल्साइट के स्थान पर डोलोमाइट खनिज होती है। इस कारण इससे ठंडे तेज़ाब से अथवा हलके तेज़ाब से बुदबुदे नहीं उठते। यह जल में से चूना और मेग्नेशिया के कार्बोनेट के रासायनिक अवक्षेपन से अथवा समुद्रीय प्राणियों द्वारा, जलाशयों के पेंदे में एकत्रित हो जाता है। उन जलाशयों के सूख जाने से अथवा उनके पेंदों के ऊपर उठ आने पर इसकी तहें

पृथ्वीतल पर निकल आती हैं। पंजाब के साल्टरेंज तथा हिमालय पर्वत में यह शिला मिलती है।

(६) हरसोठ (Gypsum) का समुद्रीय जल के धीरे धीरे सूखने पर उससे अवक्षेपन होता है। इसकी तह के साथ नमक की तहें भी अक्सर पाई जाती हैं। इन दोनों शिलाओं का रंग प्रायः लाल सा होता है क्योंकि इन में थोड़ा बहुत लाल या पीले गेरू का अंश रहता है। पंजाब के साल्टरेंज में यह शिला बहुत है।

(७) कोयला (Coal) का उत्पत्ति जलाशयों अथवा दलदलों में बनस्पतियों के एकत्रित होकर धीरे धीरे नीचे दब जाने से हुई है। लकड़ी, उसके और कोयले के बीच का 'पीट' नामक पदार्थ, और भिन्न भिन्न किस्म के कोयलों में जो परस्पर सम्बन्ध है और किस प्रकार कोयला बनता है इस विषय में इम लेखमाला में पहले ही लिखा जा चुका है।

(८) लेटेराइट (Laterite) लाल या भूरे रंग की छिद्रदार मिट्टी सी ठोस शिला होती है जो भारत जैसे गर्म देशों में एल्यूमीनम और लोहेदार शिलाओं के जल और वायु के द्वारा परिवर्तन से बनती है। इसमें मुख्यतः दो खनिजें होती हैं, एक पीला गेरू और दूसरी बाक्साइट (एल्यूमीनम, आक्सीजन और हाइड्रोजन का सम्मेलन) बाक्साइट देखने में मिट्टी के ही समान होती है परन्तु उसके रासायनिक सङ्गठन में बालू का अंश बिलकुल नहीं होता। गेरू का परिमाण बहुत कम हो जाने पर लेटेराइट शिला बाक्साइट खनिज हो जाती है जिससे एल्यूमीनम धातु निकाली जाती है। दक्षिणीय भारत में पृथ्वीतल पर या पहाड़ों के ऊपर लेटेराइट, नीचे के बेसाल्ट जैसी शिलाओं से बनी हुई, पाई जाती है।

इस शिला के अतिरिक्त पथरीले स्थानों पर जो पत्थरों के ऊपर कँकड़ीली या बालूदार काली, लाल या पीली मिट्टी (Soil) की पतली तह होती है उसकी भी गणना इसी किस्म की शिलाओं में की जाती है। आधुनिक नदियों की घाटियों के तलछट अर्थात् कछार (alluvium) भी जलज शिलाएँ मानी जाती है।

(३) परिवर्तित शिलाएँ

पूर्व-स्थित शिलाएँ पृथ्वीतल के नीचे गर्मी तथा दबाव से भिन्न भिन्न मात्रा में परिवर्तित होती हैं। यदि तापक्रम इतना अधिक हुआ कि कुल की कुल शिला पिघल जाय तो उसके सब अवयव फिर से उन्हीं खनिजों के रूप में अथवा अन्य नई खनिजों के रूप में भी बन सकते हैं। अधिक दबाव के कारण शिलाओं में लम्बे आकार या परतों वाली खनिजें एक विशेष दिशा में एकत्रित हो जाती हैं। उदाहरणतः यदि किसी शिला में अबरक वर्तमान हो तो उस अबरक के परत दबाव की दिशा से लम्बी-दिशा में एकत्रित हो जायँगे जिससे परिवर्तित शिला प्रायः उस दिशा में सरलता से टूटने लगेगी। साधारणतः गर्मी और दबाव दोनों क्रियाओं से साथ साथ ही शिलाओं का परिवर्तन होता है जिससे उनमें कुछ तो नई खनिजें उत्पन्न हो जाती हैं। या पूर्व-स्थित खनिजों का आकार बड़ा हो जाता है और कुछ दबाव के चिन्ह उदाहरणतः मोड़, सिकुड़न संकुचन तथा तड़क इत्यादि अवश्य दृष्टि गोचर होते हैं। परिवर्तित शिलाओं में निम्नलिखित शिलाएँ मुख्य हैं :—

(१) नाइस (Gneiss) में ग्रेनाइट शिला के समान स्फटिक, फेलस्पार और काला अबरक या हार्न ब्लेण्ड खनिजें ही होती हैं। परन्तु इस शिला में काली और गुलाबी सफेद रंग की खनिजें टेढ़ी मेढ़ी मोटी अधूरी रेखाओं के समान मिली हुई रहती हैं। दबाव के कारण फेलस्पार या स्फटिक के क्रिस्टल तकुआ के आकार के भी हो जाते हैं।



दबाव से परिवर्तित शिलाओं की खनिजों का रूप।

उनकी लम्बाई देखकर यह पता लगाया जा सकता है कि शिलाओं पर दबाव किस ओर से पड़ा था क्योंकि यह लम्बाई दबाव से लम्ब-दिशा में हुई होगी। नाइस प्रायः मोटे रवा-दार होती है। जो नाइस ग्रेनाइट के परिवर्तन से बनती हैं उनको ग्रेनाइट-नाइस कहते हैं। बिहार, मध्यप्रान्त, राजपूताना तथा मद्रास में यह शिला बड़ा है।

(२) शिष्ट (Schist) में फेलस्पार का प्रायः अभाव सा रहता है और उनके रवा अधिकतः छोटे होते हैं। शिष्ट में परतों वाली खनिजों (जैसे अबरक क्लोराइट अथवा लम्बे क्रिस्टल वाली खनिजों जैसे हार्नब्लेण्ड तथा उसकी किस्में) का बाहुल्य होता है। शिष्ठ में नाइस से अधिक दबाव का प्रभाव होता है। इसी कारण से इसके पतले पतले तह के समान टुकड़े सरलता से हो जाते हैं। सफेद अबरकदार शिष्ट में अबरक के परतों का बाहुल्य विशेष विशेष तलों (planes) में होता है जिनके समानान्तर वह सरलता से टूट जाती है। इस प्रकार की शिष्ट में स्फटिक के अतिरिक्त प्रायः तामरा (Garnet) भी रहता है। बिहार, राजपूताना, मध्यप्रान्त मद्रास इत्यादि प्रान्तों में यह शिला बहुत मिलती है।

(४) स्लेट (Slate) में साधारणतः कोई भी खनिज दृष्टि गोचर नहीं होती। यह मिट्टीदार शिला (Shale) के दाब से परिवर्तित होने से बनती हैं जिसके कारण इसमें पतले पतले समतल वाले परतों में टूटने का गुण उत्पन्न हो जाता है। स्लेट के टूटने के तलों में और पूर्व-स्थित मिट्टीदार शिला की तहों के तलों में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता। स्लेट अधिक परिवर्तन से फाइलाइट और फाइलाइट के और अधिक परिवर्तन से शिष्ट बन जाती है। स्लेट में कुछ चमक रहती है। परन्तु फाइलाइट से कम मिट्टीदार जलज शिला (shale) न तो स्लेट की तरह चमकदार होती है, न वह इतनी सख्त होती है और उसमें इस प्रकार के समतल टुकड़ों में टूटने की भी इतनी प्रबल शक्ति नहीं होती। स्लेट हिमालय पर्वत, बिहार तथा राजपूताना में अधिक मिलती है।

(५) परिवर्तित बालूदार शिला (Quartzite) जलज बालूदार शिला से अधिक ठोस और कठोर होती है। इसमें बालू के कणों के बीच का सीमेन्ट भी स्फटिक ही होता है अर्थात् यह शिला अधिकतर स्फटिक की ही होती है। यदि पूर्व-स्थित बालूदार पत्थर स्वच्छ स्फटिकदार न होकर मिट्टी या चूनेदार हो तो उससे बनी परिवर्तित शिला में अन्य कई खनिजें भी हो सकती हैं। इस शिला के कण पृथक पृथक नहीं दिखाई देते और उनमें काँच की सी कुछ कुछ चमक होती है। राजपूताना, बिहार, मध्यप्रान्त, मद्रास इत्यादि प्रान्तों में यह शिला अधिक मिलती हैं।

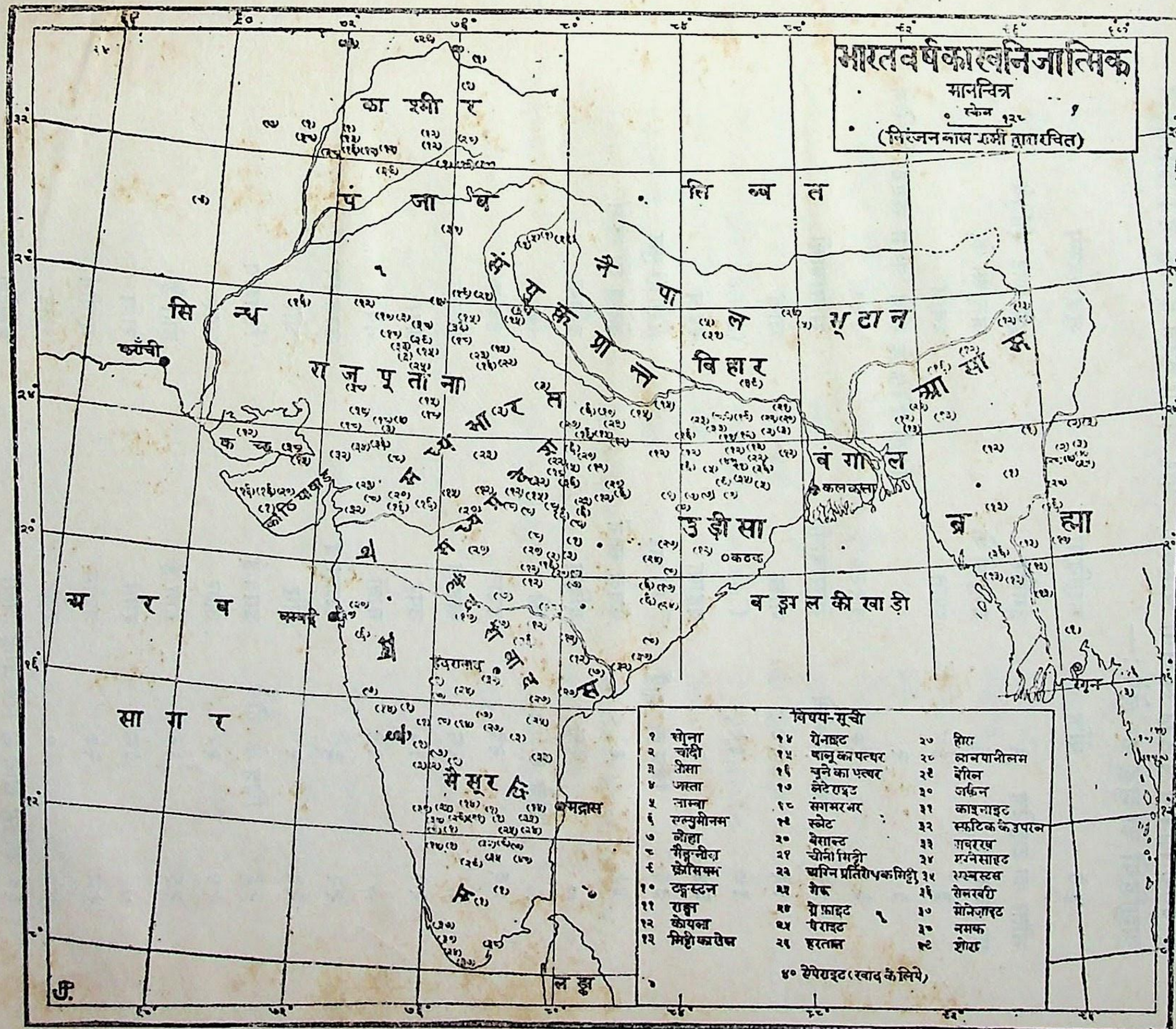
(६) संगमरमर (Marble) चूने के पत्थर के परिवर्तन से उसके फिर से रवा बनने से उत्पन्न होता है। स्वच्छ संगमरमर सफेद होता है और उसमें केवल केल्साइट (Calcite) खनिज के रवा (छोटे या बड़े) होते हैं। किसी किसी संगमरमर में डोलोमाइट के रवा भी होते हैं। मैले चूने के पत्थर से जो संगमरमर बनता है। उसमें अन्य खनिजें (आगाइट तथा गार्नेट की किस्में इत्यादि) भी बहुत होती हैं। संगमरमर गुलाबी, शरबती, हरे, पीले तथा काले रंग के भी होते हैं। जोधपुर रियासत में 'मकराना' में कई रंग के संगमरमर मिलते हैं जो ताजमहल में भी लगाये गये थे। सब संगमरमरों में से नमक के ढंडे या गर्म तेज़ाब से बुदबुदे निकलने लगते हैं। साधारणतः चूनेदार जलज शिलाओं में अवयव नहीं दिखते। परन्तु संगमरमर के रवा स्पष्ट दिखाई देते हैं। संगमरमर पर चाकू से खुरचने का चिन्ह पड़ जाता है क्योंकि इसकी कठोरता कम होती है। घिसने पर संगमरमर, मुख्यतः बारीक रवा वाले, बहुत चमकदार और चिकने हो जाते हैं।

(७) एम्फीबोलाइट (Amphibolite) काली या हरी शिला होती है जिसके खनिजात्मिक अवयव डाओराइट शिला के समान (हार्नब्लेण्ड और प्लेजिओक्लेज फेलस्पार) होते हैं परन्तु इस शिला में स्फटिक भी होता है। इस शिला की उत्पत्ति आग्नेय शिला या जलज शिलाओं से होती है। गैबरो तथा डोलेराइट जैसी बेसिक आग्नेय शिलाओं के परिवर्तन में आगाइट का हार्नब्लेण्ड में रूपान्तर हो जाता है। इस प्रकार से बने इम्फीबोलाइट को **एपी-डाओराइट** (Epidiorite) भी कहते हैं। यदि एम्फीबोलाइट में, हार्नब्लेण्ड खनिज के क्रिस्टल एक दिशा में एकत्रित हो जाने के कारण, शिष्ट के समान तह सी दिखाई दे तो वह शिला **हार्नब्लेण्ड-शिष्ट** (Hornblend-schist) होती है। यह शिला बिहार, मद्रास, मध्यप्रान्त, राजपूताना इत्यादि में मिलती है।

इन पृष्ठों में संक्षेप में हमने भूपटल की मुख्य शिलाओं का—जो संख्या में तीस से भी कम हैं—दिग्दर्शन मात्र कराया है। क्या "भूगोल" के अध्यापकों का यह कर्तव्य नहीं है कि वे अपने विद्यार्थियों को इन शिलाओं तथा उनको बनाने वाली केवल बीस खनिजों से परिचय करा दें। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस ओर भूगोल-शास्त्रियों का अभी तक ध्यान गया ही नहीं है। यदि किसी स्कूल के अधिकारीगण अपने यहाँ इन शिलाओं तथा खनिजों का एक संग्रह रखना चाहें तो लेखक उनको सहर्ष परामर्श देने को तय्यार हैं।

———

भारतवर्ष की खनिजात्मक सम्पत्ति



शुद्धिपत्र

लेखक तथा प्रकाशक की असावधानी से पुस्तक में कई अशुद्धियाँ रह गई हैं उनके लिये वे पाठकों से क्षमा चाहते हैं और आशा करते हैं कि वे निम्नलिखित अशुद्धियों को शुद्ध कर लेंगे :—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धियां	शुद्ध स्वरूप
भीतर का टाइटिल	३	इंगलैंड	इसे काट दीजिये
प्रस्तावना २	६	जन्तुओं के	जन्तुओं के,
३	१८	ध्यान	ध्यान
१	२		पहिली पंक्ति के नीचे 'प्रथम खण्ड' लिखिये
३	२०	१२६०	१२६°
१२	चित्र के नीचे	गोसाबानी	मोसाबानी
१३	२४	गोल	घोल
१७	१५	Cok	Coke
३४	२	बहावा	बहाव
३६	चित्र के दाएँ	700 फुट	7000 फुट
४५	६	केवल खानें	केवल दो खानें
,,	३२	दछिण	दक्षिण
,,	नीचे से २	की	कि
४६	२३	डडोत	डंडोत
,,	२८	खउड़ा	खेउड़ा
५१	१०	उपर	ऊपर
,,	१२	नावों	नयों
५२	३	उज्जामय	उज्जमय
५३	२	और	ओर
५३	चित्र के नीचे	डगवाई	डिगबाय
५४	२	ऊप्रर	ऊपर
५६	१०	होते हैं।	होते हैं,
,,	१८	राति	रात्रि
५८	२७	प्रचीन	प्राचीन
,,	३०	रलेट	स्लेट
६०	अंतिम खाने में सब जगह	ब्रह्मा	ब्रह्मदेश
६३	बिहार के कारखानों में रोहतास इंडस्ट्रीज़ लि० का दालमियां नगर का कारखाना प्रसिद्ध है		
६४	११	भस्न	भस्म
६५	अन्तिमपंक्ति	कुमारधूनी	कुमारधूबी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धियां	शुद्ध स्वरुप
६७	१	पदाथ	पदार्थ
६९	१६	क्लिोराइट	क्लिोराइड
७०	१	१९२३ ई०	१९३३ ई०
,,	२०	रहा	गया
७४	१५	हरे	हीरे
७५	१	हीरे	हीरे का
७८	१३	पत्थर	पत्थर में
८०	१२	पायूर	पडयूर
,,	१७	कभी	कहीं
८६ ऊपर से २, नीचे से ४		Philogopite	Phlogopite
,,	२३	अन्य	अग्नि
८८	४	जा सकती	की जा सकती
८८	नीचे से ६	Pegmetite	Pegmatite
९४	नीचे से २	तैल	तेल
९६ सूची के प्रथम खाने में		नैलेर	नैलोर
९८	चित्र के नीचे	का एक दृश्य	की खेउड़ा की खान का दृश्य
१००	१०	। पता नहीं है	पता नहीं है ।
१०६	अन्तिम	सिभाग अकीज़न	भाग आक्सीजन
१०७	२६	(४)	(३अ)
१०८ चित्र के नीचे के अंक		1,2,3,4,5,6	2,4,6,8,10,12
१०९	२३	क्योंकि यह	। क्योंकि
,,	२६	लिखे हुए फासलों	लिये हुए फासलों
११०	चित्रों के नं०	३,४,५,६,७,८	४,१४,१३,११,८,१५
,,	,,	९	नमक
१११	९	nephelene	nepheline
,,	९	सोढा	सोडा
१११	नीचे से ५	(Sio)	(Sio3)
,,	नीचे से १३	गुने	तक
११२	१२	आगाइटदार मिलती है	इसे १३वीं पंक्ति के अंत में पढ़ें
११४	नीचे से १३	Veine	Veins
११४	,, ,, ४	Ca So2	CaSo4
११५	नीचे से ८	पदाथ	पदार्थ
११७	नीचे से ८	Laccolyth	Laccolith

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धियां	शुद्धस्वरुप
११८	६	,	)
,,	२२	पवत	पर्वत
,,	नीचे से ३	बेशिक	बेसिक
१२०	नीचे से ६	चार	पांच
१२१	नीचे से १५	पत्थल	पत्थर
,,	नीचे से १०	(४)	(५)
१२२	नीचे से २	(बलुआ)	बलुआ
१२३	५	टिकाऊ	टिकाऊ न
,,	१६	जल	जल में
,,	नीचे से ६	पत्थर	चूनेदार पत्थर
१२४	६	का उत्पत्ति	की उत्पत्ति
,,	१४	नाकसाइट	बाक्साइट
१२५	६	शिला बड़ा है	शिला बहुत मिलती है
,,	नीचे से ४	कम	कम ।
१२६	नीचे से ८	Hornblend	Hornblende

शब्द -
उदजनित भस्म - Hydrated oxide

Printed by Sheopal at the Bhugol Press, 306, Jamuna Road, Allahabad.

mbin-
eful.
s de-
were

geal
ll

d as
ncy.
”
d.
ratio
n.

es)